भारतलाल पाठक



गिजुभाई का शिक्षा में योगदान

अनुवादक की ओर से

गिजुभाई एकमात्र भारतीय बाल शिक्षाविद् थे। न उनके पहले कोई बाल शिक्षाविद् नज़र आता है, न उनके पश्चात्। बालकों के बारे में इतनी गहराई से, इतनी पीड़ा और तर्कबुद्धि से सोचने वाले सिर्फ वही थे।

गुजराती भाषा में लिखी उनकी पुस्तकों ने मुझे बहुत प्रभावित किया था। मैं उन पर लिखने का इरादा कर रहा था तभी भावनगर के भाई भारत लाल पाठक की यह पुस्तक मेरे पढ़ने में आई। पूरी पुस्तक एक बैठक में पढ़ गया। बाद में प्रारंभिक पृष्ठ पढ़े तो ज्ञात हुआ कि वह एम०एड्० का शोध निबन्ध था। कदाचित् यह पहला शोध निबन्ध मेरे पढ़ने में आया कि जो इन दिनों लिखे जाने वाले शोध निबंधों से भिन्न कोटि का था। गिजुभाई के कर्तृत्व का इतना विशद विवेचन, इतना सुगठित, सम्पूर्ण और प्रांजल लेखन शोध-प्रबन्धों में भी मिल जाय तो सौभाग्य मानना चाहिए। इस ग्रंथ में श्री भारत-भाई का गहन अध्ययन तथा श्रम भी दृष्टव्य है तथा उस महान शिक्षाकार के प्रति श्रद्धा भाव भी।

इस पुस्तक को मैंने अपनी अल्प बुद्धि से प्रत्येक शिक्षा-प्रेमी, बाल स्नेही, शिक्षक, माता-पिता तथा शैक्षिक-आयोजकों, प्रशासकों के लिए पठनीय समझा है। और इसीलिए उन तक हिन्दी अनुवाद पहुँचाने को उद्यत हुआ हूं।

इसके प्रकाशन तथा विमोचन के लिए गिजुभाई के जन्म-दिवस 15 नवम्बर 1983, याने 98वीं जन्मतिथि से बढ़ कर पावन अवसर हमारे लिए कोई और नहीं हो सकता। आत्मीय श्री कृष्ण जनसेवी ने इसे प्रकाशित करके उस महान बाल शिक्षाविद् के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है।

—रामनरेश सोनी

भारतलाल प्रे० पाठक

जन्म : 24 मई, 1932, भावनगर। शिक्षा : एम०ए० एम० एड्०। पढ़ाई के विषय : गुजराती भाषा व साहित्य, संस्कृत साहित्य तथा शिक्षा शास्त्र। कार्य-क्षेत्र : सन् 1955 से भावनगन की "घरशाळा" संस्था के प्राथमिक शिक्षण अध्यापन मंदिर में अध्यापक। रुचि क्षेत्र : गुजराती भाषा व साहित्य। संस्कृत साहित्य; बंगला तथा मराठी भाषा का साहित्य। इन भाषाओं से श्रेष्ठ कथाओं एवं बाल साहित्य का गुजराती में अनुवाद। सन् 1960 में श्रीमती हंसाबेन पंड्या से विवाह।

प्रकाशक : सुरजीत प्रकाशन,
व्यापारियों का मोहल्ला, यूनानी चिकित्सालय के सामने,
बीकानेर 334001 (राज०)

मूल्य : पैंतालिस रुपये मात्र।

लेखक : भारत लाल पाठक

अनुवाद : रामनरेश सोनी

संस्करण : प्रथम, 15 नवम्बर, 1983

मुद्रक : अंकित कम्पोजिंग एजेन्सी द्वारा आकाश प्रिंटर्स, शाहदरा
दिल्ली-32 में मुद्रित

पुस्तक बन्ध : शाहदरा बुक बाइंडिंग हाउस, दिल्ली-110032

अभिनंदन

स्वर्गीय गिजुभाई के जीवन तथा कार्यों के सम्बन्ध में श्री भारतलाल पाठक के इस प्रबन्ध का मैं अभिनंनद करता हूं। गिजुभाई ने अपने छोटे-से आयुष्य काल में गुजरात की शिक्षा के क्षेत्र में जो उल्लेखनीय कार्य किये थे उनके बारे में सतत लेखन तथा चिंतन होता रहे, यह आवश्यक है।

कारण, गिजुभाई एक व्यावहारिक स्वप्न-दृष्टा थे। बालकों की शिक्षा को उन्होंने मात्र बालकों की ही शिक्षा के रूढ एवं संक्षिप्त अर्थ में अंगीकार नहीं किया था अपितु बाल-शिक्षा को उन्होंने सामाजिक पुनर्रचना के माध्यम के रूप में ग्रहण करना गुजरात के शिक्षकों को सिखाया था।

इसी भांति मेरिया मोंटेसरी के दार्शनिक विचारों तथा कार्यक्रम को उन्होंने यहाँ की सांस्कृतिक परंपरा के द्वारा किस प्रकार से सम्बद्ध किया था तथा उनके बोधक उपकरणों एवं बाल-मानसशास्त्र पर कैसी-कैसी और कहाँ-कहाँ कलमें लगाई थीं, वह सब सतत बताते रहने की आवश्यकता है।

कोई डरे नहीं, कोई डराये नहीं, सबों के साथ सहयोगपूर्वक कामों में रचा-पचा रहे, यदि ऐसे नागरिकों का निर्माण करना है, (और इसे किये बगैर न तो रामराज्य सम्भव है और न ही लोकतांत्रिक समाजवाद) तो गिजुभाई ने बाल-शिक्षा की जो रूपरेखा हमारे लिए खींची थी उसे अमल में लाना ही पड़ेगा। अलबत्ता, हमारे योजनाकारों ने इस बात की महत्ता को अभी देखा-समझा नहीं है। बांध और सड़कें बनाने की सनक में मानव के निर्माण की बात को एक तरफ पटक दिया गया है।

शिक्षा का प्रसार हो रहा है, पर वह प्रसार है कैसा इस दिशा में कोई ठोस काम नहीं हो रहा है। शिक्षा का यह फैलाव व्यक्ति का निर्माण नहीं कर रहा, वरन उसे तोड़ रहा है। परिणामस्वरूप अराजकता, अधिकारों की मांग, कर्तव्य की उपेक्षा सहयोग का अभाव, स्वेच्छाचारिता तथा संकीर्ण विचारों का चलन बढ़ रहा है।

बालमन्दिर की शिक्षा बिना किसी भेदभाव के, मनुष्य को मनुष्य के साथ प्रकृति, पशु-पक्षियों के साथ जोड़ने की कैसी अद्वितीय विधि है ये सब बातें गिजुभाई ने प्रसंगोपात्त अद्भुत रीति से हमारे सामने स्पष्ट की है। उन सबका पठन-पाठन शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालयों तथा महाविद्यालयों की गरज पूरा करने योग्य है।

भारतभाई ने अत्यन्त सरल, सरस एवं सुवाच्य शैली में गिजुभाई के कृतित्व की महत्ता समझाने का जो यह प्रयास किया है, इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

वस्तुत: यदि कोई गिजुभाई के महत्वपूर्ण लेखों की सस्ती, तथा पठनीय आवृत्तियां प्रकाशित करेगा तो गुजरात के शिक्षा-जगत पर बड़ा उपकार होगा।

लोकभारती—सणोसरा,
19—6—78

मनुभाई पंचोली "दर्शक"

निवेदन

मेरे पिताश्री सन् 1920 से ही श्री दक्षिणामूर्ति संस्था के कार्यों एवं विचारों से आकर्षित रहे हैं और इसीलिए वे इस संस्था का सम्पूर्ण साहित्य तथा बाल शिक्षण पद्धति विषयक उपकरण हमारे घर में खरीद लाये। मुझे याद है कि बाल-साहित्य तथा किशोर साहित्य को उस काल में पढ़ते-पढ़ते मुझे ऐसा अकथनीय आनन्द मिला था कि मन ही मन आज भी श्री नानाभाई भट्ट, गिजुभाई तथा उनके सहकर्मियों के प्रति मेरे हृदय में श्रद्धा भाव उमड़ आता है। मुझे याद है कि "टारजन", "महाभारत के पात्र" तथा "बुद्धा काका" आदि पुस्तकें न जाने मैंने कितनी ही बार पढ़ी होंगी। इनकी कहानियाँ कितनी-कितनी बार आंखों के आगे से निकली होंगी। मेरे पिता ने हम सब बच्चों का जो लालन-पालन किया था उसके पीछे गिजुभाई तथा दक्षिणामूर्ति के समग्र विचारों का पर्याप्त प्रभाव रहा था।

उस बात को कितने ही वर्ष बीत गए। कालांतर में मैं शिक्षक बना। कॉलेज से स्नातक बन कर नया-नया आया। काम की कोई सूझ नहीं थी। बहुत बेचैनी थी। एक दिन "दिवास्वप्न" हाथ लगा। एकाएक ही हाथ में आया था। दो चार वाक्य पढ़े ही थे फिर तो क्या मजाल कि पुस्तक हाथ से छूट जाय। एक ही बैठक में पूरा हो गया। उससे मुझे शिक्षण-कार्य में एक मार्ग दिखाई देने लगा। शिक्षण-विधि को लेकर तथा विद्यार्थी-वर्ग के प्रति व्यवहार को लेकर सचमुच एक नया ही मार्ग हाथ लगा।

हमारी संस्था के पास ही एक बालमंदिर था। जब भी कभी समय मिलता था मैं उसे देखने चला जाता। नन्हे-मुन्ने बच्चों को जरा भी आवाज किये बगैर गणित की पढ़ाई करते अथवा छोटी-बड़ी अन्य प्रवृत्तियों में कुशलतापूर्वक काम करते देखकर मैं भौचक्का रह जाता। कहां तो शोर-शराबे और हल्ले-गुल्ले वाली शालाएं और कहां ये अपनी मस्ती में आनन्दपूर्वक काम करते बालक! गिजुभाई के प्रति श्रद्धाभाव इस तीसरे चरण पर और भी बढ़ गया।

बालमंदिर में प्रति बुधवार को नाटक खेले जाते थे। मैं भी कभी-कभार देखने चला जाता। नाटक देखकर सचमुच मैं आश्चर्यचकित रह जाता। एकाध अध्यापक और दो चार बालक मिलकर "सात पूंछों वाला चूहा" "राजा सूंपड़-कन्नो" अथवा "ससाभाई सांकळिया" नाटक खेलते थे और सारे के सारे बालक उन्हें देखकर आनन्द-सागर में निमज्जित हो जाते।

बस गिजुभाई के प्रति श्रद्धा से मेरा हृदय छलक उठा। बाद में ज्यों ज्यों मैं उनके विचारों एवं कार्यों को समझता गया त्यों त्यों उनके प्रति मेरा श्रद्धाभाव अनवरत बढ़ता ही गया। श्री दक्षिणामूर्ति संस्था की ही अंग स्वरूप श्री घरशाला संस्था में मुझे वर्षों तक काम करने का अवसर मिला था। इससे गिजुभाई के विचारों और कार्यों को बहुत नजदीक से देखने-समझने का मुझे लाभ मिला।

यही सब कारण हैं कि एम. एड. के शोध-निबन्ध के लिए विषय-चयन की जब बात आई तो मेरा मन स्व. गिजुभाई की तरफ झुका। श्रद्धेय प्रिंसिपल डॉ. के. जी. देसाई ने मुझे प्रोत्साहन दिया तथा मेरे विषय का बहुत ही सुन्दर तथा विवेकपूर्ण स्वरूप निर्धारित करने में अपना मार्गदर्शन प्रदान किया।

कार्य पद्धति

विषय का स्वरूप सामान्यतया निबन्धात्मक (Essay Type) है, लेकिन इसमें थोड़ा बहुत साक्षात्कार पद्धति (Interview method) का भी उपयोग किया गया है।

पहले तो मैंने गिजुभाई के जीवन और कार्यों का बिवरण एकत्रित किया, फिर उनके द्वारा लिखा गया तथा उनके सहकर्मियों द्वारा प्रणीत साहित्य पढ़ गया। तदुपरांत शिक्षण एवं अभिभावकों के लिए लिखी गयी गिजुभाई की पुस्तकें पढ़ी। भावनगर तथा अहमदाबाद के बालमन्दिर का साक्षात्कार लिया, क्योंकि गिजुभाई के शिक्षा विषयक विचारों एवं कार्यों को समझने, ज्ञात करने की दृष्टि से यह बहुत जरूरी था। बालवाड़ी-आँगणवाड़ी का स्वरूप स्पष्टतया समझने के लिए मढी-बेड़छी की बालवाड़ियों और आँगणवाड़ियों का भी अवलोकन किया।

इसके उपरांत गिजुभाई के विचारों को समझने के लिए डॉ० मोंटेसरी, ए. एस. नील, नानाभाई भट्ट, काका कालेलकर, किशोरलाल मश्रुवाला, मनुभाई पंचोली 'दर्शक' मूलशंकर मो० भट्ट आदि विद्वानों की संदर्भ पुस्तकें भी पढ़ी। गिजुभाई के साथियों, शिष्यों, स्नेहीजनों अथवा अन्य लोगों की उन समस्त पुस्तकों का भी उपयोग किया, जिनमें गिजुभाई के बाबत लेख लिखे गए थे।

इसके साथ ही साथ बीस-बाईस व्यक्तियों से रूबरू साक्षात्कार भी लिया। ये वे व्यक्तित्व थे जो वर्षों तक गिजुभाई के सम्पर्क में रहे थे। एक महान व्यक्तित्व तथा उसके कृतित्व की साक्ष्य-स्वरूप उनके सहकर्मियों से चर्चा करके सामग्री संयोजित करना बहुत जरूरी था। साक्षात्कार में मैंने इस बात पर खास तौर से ध्यान रखा था कि गिजुभाई के साथ उन लोगों के जो विविध प्रकार के विचार संकलित संगृहीत है, उन्हें निकलवाया जाय। मित्रों, साथियों, सहकर्मियों, परिजनों, बालमंदिर के शिष्यों, अध्यापन मंदिर के शिष्यों, शिक्षकों, साहित्यकारों —सभी क्षेत्रों के उल्लेखनीय विचारों को इकट्ठा करना था। और मुझे सभी लोगों के साक्षात्कारों ने गिजुभाई के विविध पक्षों का परिचय दिया तथा एक समग्र चित्र उभारने में पर्याप्त सहयोग दिया।

पूज्या ताराबेन मोडक तथा पूज्य नामलेभाई से पत्राचार द्वारा साक्षात्कार लेना पड़ा था, कारण यह कि वे बहुत दूर रहते थे और इसलिए बहुत इच्छा के बावजूद उनसे रूबरू साक्षात्कार लेना संभव न हो सका था।

गिजुभाई के पूर्ववर्तियों में इंग्लैंड के ए. एस, नील अभी मौजूद थे। उनसे भी मैंने पत्राचार करके इधर के नवीनतम विचार जानने की इच्छा व्यक्त की थी लेकिन अस्सी वर्ष की उम्र में उनके डॉक्टर ने उनसे पत्र-व्यवहार करने की मनाही कर दी थी अतः उनके सचिव का पत्र आया : मुझे आपको सूचना देते हुए खेद है कि श्री नील आपके प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकेंगे। गत सप्ताह वे 80 वर्ष के हुए हैं और डॉक्टर ने उन्हें आराम करने तथा पत्राचार न करने का आदेश दिया हैं। (I am sorry but Mr. Neil cannot reply to your questions. He was 80 last week and his doctor has ordered him to take a rest from work and correspondence.

श्रीयुत नील को इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने स्वयं अगले रोज मुझे पत्र लिखा और अपनी अस्वस्थता की वजह से अक्षमता व्यक्त की : "उत्तर देने में विलम्ब के लिए क्षमा कीजिए। वैसे मैं आपके प्रश्नों के उत्तर दे भी नहीं सकता। असहयोग के लिए क्षमा चाहता हूं। अस्सी वर्ष की उम्र में वह ऊर्जा कहां रह पाती है जो व्यक्ति के पास कभी हुआ करती हैं।" (I apologise for delay in answering. But I cannot give you answers to your questions. Sorry to be so unhelpful, but a man of 80 hasn't the energy he once had."

प्रबन्ध के खण्ड

प्रबन्ध में मैंने निम्न पांच पक्ष लेना समीचीन समझा। मेरी दृष्टि से गिजुभाई के शिक्षण सम्बन्धी योगदान को समझने और उसका मूल्यांकन करने की दृष्टि से ये मुद्दे पर्याप्त हैं।

(अ) गिजुभाई के जीवन की रूपरेखा।

(आ) गिजुभाई के पूर्ववर्ती शिक्षाविद—याने जो विचारधारा गिजुभाई ने प्रतिपादित की थी, वहां तक पहुंचने में विकास के चरण कौन-कौन से रहे होंगे।

(इ) उस अवधि का भारतीय शिक्षा-परिदृश्य, (युरोप, भारत तथा गुजरात) जिस वातावरण में गिजुभाई ने अपना कार्य प्रारम्भ किया था, वह परिदृश्य।

(ई) गिजुभाई का योगदान : छह प्रकार से विविधतापूर्ण योगदान।

(उ) गिजुभाई के योगदान का मूल्यांकन।

मैंने उनके योगदान को छह खण्डों में विभाजित करना उचित समझा था—(i) बाल शिक्षा का दार्शनिक पक्ष (ii) बाल शिक्षक के रूप में (iii) बाल शिक्षा के प्रसारकर्त्ता के रूप में (iv) बाल-साहित्य के सर्जक साहित्यकार के रूप में (v) राष्ट्रीय शिक्षक के रूप में (vi) जीवंत व्यक्तित्व के रूप में।

इस वक्त तो मैं अपने प्रबन्ध की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए इतने में ही समेट रहा हूं लेकिन अध्ययन करते समय मुझे बराबर लगता रहा कि इस क्षेत्र में बहुत गहराई से अध्ययन करके अधिक विस्तार के साथ शोध-कार्य किया जा सकता है। इससे बाल-शिक्षा के विशद एवं गहन अध्ययन-मनन में पर्याप्त सहायता मिल सकेगी, परन्तु आज तो 'अलं अतेन्'।

इस शोध कार्य के द्वारा मेरा मुख्य प्रयोजन यही रहा समझिये कि गांधी युग के हमारे बाल-शिक्षा-विधायक गिजुभाई के कार्यों की तरफ हमारे शिक्षित समाज का अधिक से अधिक ध्यान जाये और वे अधिक स्पष्टता के लिए प्रयत्नशील रहें। इससे पहले कि कोई युरोपीय विद्वान गिजुभाई के कार्यों एवं विचारों की आगे बढ़ कर हमको जानकारी प्रदान करे और हम भक्तिभावना से मात्र देखते रहें, आइये हम पहल करके उन्हें जानें और समझें—यही भावना मेरे हृदय में विद्यमान रही है। गिजुभाई के अधूरे सपनों को पूरा करने के लिए यदि इससे किसी को प्रेरणा मिलती है, तो मैं अपने इस प्रयास को अत्यन्त धन्य समझूंगा।

बहरहाल तो तुलसी के श्लोक की यह पंक्ति आंखों के सामने उभर रही है :

"स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा"

—भारतलाल पाठक

●

आभार

रामायण में एक प्रसंग है। राम ने सीता को छुड़ाने के लिए लंका पर धावा बोला था। नल तथा नील के नेतृत्व में सम्पूर्ण वानरसेना समुद्र को पाट कर सेतु बन्धन में लगी हुई थी। जिन-जिन देवताओं ने भी सुना उन सबों ने आकाश से पुष्प-वर्षा की। छोटी सी गिलहरी ने भी यह बात सुनी। वह सागर के तट पर गई और काम में जुट गई। समुद्र के पानी में पूँछ को डुबोती और गीली पूँछ में रेत लपेटती। जरा-सी रेत पूँछ के चिपक जाती तो उसे जाकर समुद के पानी में डाल आती। सीता को मुक्त करने के कार्य में वह भी साथ देना चाहती थी। राम की अपेक्षा राम के कार्य की यह महत्ता थी!

गिजुभाई पर महा-निबन्ध तैयार करने का निर्णय लेने पर मुझे भी ऐसा ही कुछ अनुभव होने लगा। और मुझे गिजुभाई के प्रति सभी लोगों के प्रेम व आदर भाव का दर्शन हुआ। सबों को प्रतीत हुआ कि यह एक करणीय कार्य था। अतः सबों ने अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया। सबों की शुभकामनाओं तथा सहयोग द्वारा ही मेरा यह काम समय रहते पूरा हो सका।

इस निबन्ध को तैयार कराने में अपना बहुमूल्य समय देकर मार्गदर्शन देने के लिए अपने मार्गदर्शक प्राध्यापक श्री सी. ए. आकरूवाला का हार्दिक आभार मानता हूं।

जिन पूजनीय व्यक्तियों से मैंने इस निबन्ध के लिए साक्षात्कार लिया था, उन्होंने जरा भी उकताये बगैर उल्लसित भाव से मुझे सहयोग प्रदान किया था, एतदर्थ उन सबों का अन्तःकरण से आभार! उनके स्नेह तथा अनुराग को कभी भी विस्मृत नहीं कर सकूंगा।

श्री घरशाला संस्था, श्री दक्षिणामूर्ति संस्था, श्री गांधी स्मृति पुस्तकालय तथा श्री ए.जी. टीचर्स कॉलेज का भी मैं आभार मानता हूं कि इन्होंने अपने पुस्तकालय के द्वार मेरे लिए खुले रखे थे। जब जिस पुस्तक की आवश्यकता पड़ी तत्काल लाकर दी और मेरे काम में मदद की। इसके अतिरिक्त पूजनीय श्री गिरीशभाई, पूजनीय श्री चन्दुभाई, पूजनीय श्री नरेन्द्रभाई ने अपनी निजी पुस्तकें मुझे लम्बी अवधि तक उपयोग करने के लिए प्रदान की, इसके लिए इन सबों का हार्दिक आभार!

अपने इस काम के दौरान एक बात मैंने निरन्तर अनुभव की कि गिजुभाई संबन्धी शोध कार्य की बहुत आवश्यकता है, कदाचित यह बात उनके कर्तृत्व की महत्ता को ही सिद्ध करती है। किसी-किसी ने तो युनिवर्सिटी की स्वीकृति लेकर मेरा यह निबन्ध प्रकाशित करने की इच्छा व्यक्त की थी।

अपने विद्यार्थियों, मित्रों व साथियों के सहयोग के प्रति भी आभार व्यक्त करना आवश्यक समझता हूँ।

जिन जिन पुस्तकों से मैंने इस निबन्ध के लिए सामग्री ली हैं, उनके उद्धरण अंकित किये है उनके लेखकों के प्रति भी यहां आभार व्यक्त करता हूँ। इसके अतिरिक्त कुछ बालमन्दिरों ने मुझे अपनी संस्थाएँ देखने का भी अवसर प्रदान किया था, अतः उनका भी आभार।

निर्विघ्न कार्य सम्पादन के लिए भगवान का एहसान तो निश्चय ही मानना चाहिए।

—भारतलाल पाठक

गुजराती में प्रथम आवृत्ति के समय

रचनाकार की ओर से

आज से डेढ़ दशक पूर्व जब यह शोध निबन्ध मैंने तैयार किया था तब अनेकानेक मित्रों की अपेक्षा थी कि यह प्रकाशित होकर सर्व साधारण के हाथों शीघ्र पहुँचे। आर. आर. शेठनी कम्पनी के समर्थ प्रकाशक स्नेही श्री भगतभाई आज जब इसे प्रकाशित कर रहे हैं तो उनके प्रति मेरा ऋण कई गुना बढ़ जाता है। इनके परिवार के साथ एक लम्बे समय से निजी घरेलू रिश्ता रहा है और इस रूप में स्नेह का यह सम्बन्ध अधिक प्रगाढ़ बन गया है।

इस शोध-निबन्ध को आद्यंत पढ़कर इसका "अभिनंदन" लिखने के लिए पूज्य श्री मनुभाई पंचोली "दर्शक" का जितना आभार करूं उतना कम होगा क्योंकि अपनी अस्वस्थता तथा अति महत्व के कार्यों में अपनी व्यस्तता के बावजूद उन्होंने मेरे लिए समय निकाला। इससे मुझे बहुत बल मिला है।

शिक्षण-कार्य के शैशव काल में मुझे चलना सिखाने के लिए "चालण गाड़ी" थमाने वाले मेरे पूज्य गुरुजन तथा मार्गदर्शक श्री चन्दुभाई भट्ट की याद फिर से ताजा हो आई है। इस पुस्तक के प्रकाशन के अवसर पर यदि वे जीवित होते तो कितने आनंदित होते वे! बच्चे की अस्पष्ट सी टूटी-फूटी भाषा में गिजुभाई के महान कार्य को समाहित करने के लिए लिखा गया अंजलि स्वरूप यह निबन्ध उन्हें अर्पित करते हुए मैं आज धन्यता अनुभव कर रहा हूँ।

—भारतलाल प्रे. पाठक

भादेवाणीनी शेरी

भावनगर

बुद्ध जयन्ती 1978

"गिजुभाई नो केळवणी मां प्रदान" ग्रंथ का हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित होने के अवसर पर

दो शब्द

यशस्वी बाल शिक्षाविद श्री गिजुभाई के जीवन एवं कार्यों की परिचायक अपनी इस पुस्तक के हिन्दी अनुवाद का मैं हृदय से स्वागत व अभिनन्दन करता हूँ।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने युनेस्को की सभा के समक्ष अपने प्रथम व्याख्यान में कहा था कि "युद्ध और विनाश की बातें पहले-पहल मनुष्य के मन में प्रकट होती हैं और तब वे वास्तविक रूप ग्रहण करती हैं। मानव जाति को यदि युद्ध तथा संहार से बचना है तो उसके मन को बदलना पड़ेगा।" गिजुभाई इस बात को अच्छी तरह से जानते-समझते थे और इसीलिए उन्होंने बाल-शिक्षण के माध्यम से नये समाज की रचना के लिए जीवन-पर्यन्त पुरुषार्थ किया।

बालशिक्षण तथा बाल मनोविज्ञान के अध्ययन से हम जान गए हैं कि वस्तुतः बाल-शिक्षा शांति-स्थापना का ही कार्य है। शांति-स्थापित करने का कार्य सिर्फ आइजनहोवर, ख्रुश्चेव अथवा विनोबा जी ही नहीं करते, अपितु आदिवासी लोगों के झोंपड़ों के मध्य बालवाड़ी चलाने वाली एक ग्राम-सेविका भी करती है। अपनी देखरेख में छोड़े गए बालकों में आक्रामक- वृत्ति के बीज कहीं रह न जाएं, ऐसी युक्ति से वह काम करती है। उसका नाम व चित्र अखबारों में छपता नहीं, मगर इससे उसके काम की महत्ता कम नहीं हो जाती। वृक्ष की जड़ें हमेशा अंधेरे में ही रहती हैं, पर वृक्ष को पोषण वही प्रदान करती हैं और वही आधार बनती हैं।

कोई व्यक्ति किसी से भयत्रस्त न हो और न ही किसी अन्य को डराये। सभी लोग मिल-जुलकर काम में संलग्न रहें। ऐसे उत्तम नागरिक निर्मित करने के लिए गिजुभाई ने वर्षों तक तपश्चर्या की और परिणामतः एक सांगोपांग, व्यवस्थित बाल-शिक्षण पद्धति तैयार की, जिसके आधार पर बाल-शिक्षण देने का काम उन्होंने जीवन भर किया। ऐसे मौलिक शिक्षा दृष्टि के धनी गिजुभाई के युगांतरकारी कार्य तथा उनके लेखन पर बराबर चिंतन-मनन चलता रहे, ऐसी मेरी कामना है।

श्री गिजुभाई द्वारा लिखा गया साहित्य तथा स्वयं उनके सम्बन्ध में लिखा गया साहित्य अधिकांशतया गुजराती भाषा में प्रकाशित-मुद्रित है। इससे गुजरात के निवासियों को उनका विशेष परिचय मिला और परिणामस्वरूप

उनके कार्यों का लाभ भी मिला। गुजरात से बाहर के लोगों को उनका परिचय भी कम मिला और स्पष्ट है कि लाभ भी कम मिला। भावनगर से बहुत दूर धुर रेगिस्तान में भाई श्री रामनरेश सोनी ने पठनीय एवं प्रवाहमयी शैली में गिजुभाई के जीवन तथा कार्यों का परिचय हिन्दी भाषा पाठक वर्ग के लिए प्रस्तुत किया है, इससे मुझे विश्वास है कि गिजुभाई के विचार दूर-दूर तक फैलेंगे।

गिजुभाई ने शिक्षा की सैकड़ों पुस्तकें गुजराती भाषा में लिखी हैं बालकों, शिक्षकों, अभिभावकों तथा शिक्षा प्रेमियों के लिए। मैं आश्वस्त हूं कि श्री सोनी हिन्दी भाषी पाठकों तक उन सभी पुस्तकों का अनुवाद करके पहुंचाने का श्रम करेंगे, जो अब तक हिन्दी में नहीं आई हैं।

15 नवम्बर, 1983 —भारतलाल प्रे० पाठक

अनुक्रमणिका

1

गिजुभाई का संक्षिप्त जीवन वृत्त

प्रतिपल मैं नन्हें बालकों में बसने वाली महान आत्मा के दर्शन करता हूं । यह दर्शन मेरे भीतर एक प्रेरणा जगा रहा है कि बालकों के अधिकारों की स्थापना करने के लिए ही मैं जीऊं और यही काम करते-करते मर मिटूं ।

—गिजुभाई

शांत नीरव रात । ढलती रात के तारे निरभ्र आकाश में टिमटिमा रहे हैं ।

साढ़े तीन बजे हैं लगभग । चारों तरफ खामोशी है । पशु-पक्षी सोये हैं । गुलाबी हवा में चौकीदार की भी आंख लग गई है शायद । ऐसे समय बाल मन्दिर के एक छोटे से मकान में दीपक जल रहा है । घर के सभी लोग गहरी नींद में सो रहे हैं । जाग रहा है एक कर्मयोगी । एक चौड़ी टेबिल पर पत्रिकाएं, पुस्तकें, लिखे हुए कागजों के ढेर आदि पड़े हैं । लेखनी सरपट दौड़ रही है ।

ठक्...ठक्...ठक् ।

'कौन ?' चलती हुई लेखनी प्रश्न पूछती है ।

'यह तो मैं ।'

'कौन, रामभाई ?...समय हो गया ?'

'ना...भाई । अभी तो साढ़े तीन बजे हैं ।'

'अच्छा, तो फिर भीतर आ जाओ । यह एक अध्याय पूरा कर लूं ।'

'कब से लिख रहे हैं ?'

'घंटा भर हुआ होगा । जाग गया था तो लिखने बैठ गया ।'

और तब गुरु-शिष्य की गाड़ी चली ।[1]

ये गुरु थे हमारे गिजुभाई ।

The Candle was burning at both the ends.

कौन थे ये गिजुभाई ? और क्या आशय है मोमबती के दोनों छोरों से जलने का । इस सन्दर्भ में आइये हम गिजुभाई की जीवनी की यह रूपरेखा ध्यान से पढ़ें, आशय स्वत: स्पष्ट हो जाएगा ।

---

1. स्मरणांजलि : रामनारायण पाठक (कुछ परिवर्तन के साथ)

सौराष्ट्र का पूर्वी अंचल । प्राचीन वल्लभीपुर के खंडहरों के पास छेला नदी के किनारे पर बळा नाम गांव । सिद्धराज ने इसे बसाया था । औदित्य ब्राह्मणों का निवास स्थान । मेहता, तिवाड़ी और बधेका जातियां उनमें प्रमुख हैं ।

ब्राह्मणों के मुहल्ले में एक गली है भाटोपा । इसी गली में वकील साहब भगवानदास जी बधेका के घर एक बालक जन्मा—15 नवम्बर 1885 के दिन । माता काशीबा के धार्मिक संस्कार बालक को मिले । वह पीपल में जल सींचता तथा भगवान शंकर के चरणों में शीश नवाता ।

हम-उम्र बालकों के साथ खेलते तथा प्रकृति के प्रांगण में अठखेलियां करते-करते यह बालक बड़ा हुआ ।

पाँच वर्ष की आयु में सरस्वती-पूजन के साथ उसे पढ़ने के लिये शाला में भेजा गया । वल्लभीपुर की प्राथमिक शाला, और आज से नब्बे-पचानवे वर्ष पहले का वह काल ! शालाओं में मारमीट, डाँट-डपट और भय का साम्राज्य । नन्हें बालकों के कोमल चित्त पर न जाने कैसे-कैसे प्रभाव पड़े होंगे । बालक गिजुभाई ने वह सब देखा और आगे चलकर प्राथमिक शालाओं के दृश्यों को अपने शब्दों में बांधा । उस काल की प्राथमिक शालाओं की दुर्दशा तथा बच्चों के प्रति दुर्व्यवहार के हृदय द्रावक चित्र उन्होंने उकेरे हैं । बचपन के वे दृश्य इतने गहरे रंग में चित्रित हैं कि उनका प्रभाव मिटाने के लिए उन्हें आगे चल कर अपने शिष्यों से दो टूक वाणी में कहना पड़ा :

> **मेरे छात्रों को मेरा आदेश है कि घोड़ों के अस्तबल जैसी इन धूल भरी शालाओं को जमींदोज कर दो । मारपीट और भय दिखाने वाले इन बाल कतलखानों की नीवों को बारूद भर कर उड़ा दो । इन्हें नेस्तनाबूद कर दो ।**

बाल गिजुभाई पढ़ने में अत्यन्त तेजस्वी थे । आग्रही, दृढ़ निश्चयी तथा साहसी इनका स्वभाव था । भाई-बंधुओं के साथ घूमने-फिरने, प्राचीन खंडहरों को देखने तथा छोटे-बड़े साहसिक काम करने में इनकी रुचि थी । ये इनकी इतर प्रवृत्तियां थीं । 'मामा की जाळ्य' पुस्तक का सारा वातावरण तथा 'काली चौदस' में भुआ को सताने की घटनाएं जाने-पहचाने प्रसंग हैं ।

प्राथमिक शिक्षा पूरी करके गिजुभाई भावनगर लौटे । भावनगर में उनके बड़े मामा रेल विभाग में नौकर थे—अत्यन्त साधु स्वभाव के सज्जन । उनके यहां रहकर गिजुभाई ने आगे की पढ़ाई शुरू की । गिजुभाई के जीवन में इन सरल चित्त वाले मामाजी का अत्यन्त गहरा प्रभाव है ।

स्व० रामनारायण पाठक (द्विरेफ) मामाजी का पुत्र पोपटभाई, हरभाई, लालभाई भट्ट आदि उनके साथी थे । श्री गिरीशभाई ने मूछाळी मां'[1] शीर्षक

1. मूछाळी मां : गिरीश म. भट्ट; आर.आर. शेठनी कं. बम्बई, वर्ष 1954 दूसरा संस्करण, पृष्ठ 5-12-14.

अपनी पुस्तक में गिजुभाई के अध्ययन काल का विवरण लिखा है :'बेंजामिन फ्रेंकलिन, इटली का वीर गेरी बाल्डी, प्रख्यात उपन्यास लेखिका मेरी कॉरेली, तथा साहसिक रचनाओं की जो-जो किताबें उपलब्ध हो सकीं वे तमाम, ऐसे ही मणिलाल नभुभाई, गोवर्धनराम, कलापी तथा कितने ही अन्य लेखकों को उन्होंने पढ़ रखा था ।'···कविता के अत्यंत रसिक । स्व० कवि कान्त के संसर्ग में इतने समीप आये कि इधर कवि ने जीवन की श्रेष्ठ रचना लिखी नहीं कि अपनी मित्र मंडली में कवि के हस्ताक्षरों वाली प्रति ही लेकर चले आते और सारे बाल सखा इकट्ठे होकर सामूहिक रूप से उच्च स्वर में गाते ।

ऐसे करते-करते मेट्रिक पास की और उच्च शिक्षा की ओर प्रवृत्त हुए ।

जब वे बारह-तेरह वर्ष की आयु के थे, तब उनका विवाह हरिबेन के साथ हुआ था । दो-चार वर्षों के वैवाहिक जीवन के बाद ही हरिबेन का देहान्त हो गया । श्री गिरीश भाई लिखते हैं कि 'कई वर्षों तक गिजुभाई 'हरि' की प्रेमल स्मृति अपने हृदय में संजोये रहे ।'

कुछ वर्षों के बाद उनका दूसरा विवाह श्रीमती जड़ी बेन के साथ हो गया । (श्रीमती जड़ी बेन इस समय लगभग 90 वर्ष की हैं ।)

उस समय वे कालेज में द्वितीय वर्ष के विद्यार्थी थे । मां के देहान्त के पश्चात् घर की सारी जिम्मेदारियां उन पर आ पड़ीं । छोटे भाई-बहनों को पढ़ाना-लिखाना था । आर्थिक स्थिति उतनी चिन्ताजनक तो नहीं थी लेकिन घर-गृहस्थी का भार तो आ ही पड़ा था । क्या करूं ? रात-रात भर वे किंकर्त्तव्यविमूढ़-से विचार-मंथन करते रहते ।

बम्बई में एक स्थान पर कुछ काल के लिए नौकरी करके भी देखी । पर मन नहीं माना····और एक सुनहले प्रभात में इक्कीस वर्ष का आशा-उल्लास भरा यह युवक अपना भाग्य आजमाने के लिए पोरबन्दर से अफ्रीका चल पड़ा ।[1]

अफ्रीका में ढाई-तीन वर्षों का प्रवासकाल उनके जीवन-निर्माण में अत्यंत महत्त्वपूर्ण गिना जाता है । उन्हें भारतीय तथा यूरोपीय लोगों के साथ काम करने का अवसर मिला । कई तरह के खट्टे मीठे अनुभव हुए । युवा मित्रों के साथ घूमे फिरे । मौज-मजे किए । अपने मित्रों को अंग्रेजी व संस्कृत भाषाओं का ज्ञान कराते-कराते अपने अन्तकरण में बैठे शिक्षक नामक प्राणी का प्रथम दर्शन उन्हें यहीं पर हुआ । स्वतन्त्र निर्णय शक्ति, निडरता, सहनशीलता, मित्रों के प्रति प्रेम एवं सद्भाव, कर्मनिष्ठा आदि गुण उनमें यहीं पर विकसित हुए । अफ्रीका के निवासी, उनके रीति-रिवाज, उनकी स्वाहिली भाषा आदि का परिचय उन्होंने अत्यन्त गहराई से किया । अफ्रीका में बिताये वर्ष उनके जीवन में गहरे रंग से अंकित थे । अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में अफ्रीका की तमाम

1. बाल शिक्षण प्रणेता गिजुभाई : रामनारायण पाठक, पृष्ठ 23.

बातें याद कर-करके वे कहते थे : 'एक बार फिर अफ्रीका जाने का मेरा मन होता है, पर निकलूं कैसे ?'

स्वदेश लौटे तो फिर अन्तद्वन्द्व में पड़ गये कि आजीविका कैसे चले। बंबई में एक सेठ की गद्दी में काम तो किया, लेकिन जी नहीं माना। बुजुर्गों की सलाह तथा निजी इच्छा के अनुसार उन्होंने वकालत करना तय किया। अफ्रीका में सोलिसिटर के आफिस में काम करने का अनुभव तथा वकील पिता के पैतृक संस्कार उनके लिए सहयोगी रहे।

वकील बनने का मतलब था अध्ययन करना, और यह काम अपने आप में आसान नहीं था। लेकिन 'एक बार उन्होंने जो निर्णय ले लिया, उसे तत्काल क्रियान्वित करना उनकी आदत में शुमार था। इस आदत का उनके जीवन के इतिहास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। तत्काल निर्णय लेना, और उसे अमल में लाना—यह आत्मबल वाले व्यक्तियों के ही बूते की बात है।'[1]

गिजुभाई बंबई चल दिये। मगन बाग में कमरा लेकर सपरिवार रहे। नौकरी करते-करते अनेक कष्ट झेलकर भी उन्होंने पढ़ाई पूरी की।

वे दिन उनके जीवन में अत्यन्त महत्त्व के दिन थे। विख्यात चित्रकार श्री रविशंकर रावल, स्व. श्री महादेव भाई देसाई, स्व. श्री रामनारायण विश्वनाथ पाठक उनके साथी थे। 'कभी-कभार मगन बाग वाला उनका 63 नं० का कमरा महादेव भाई देसाई के उन्मुक्त हास्य से, 'द्विरेफ' के काव्य पाठ से, तथा 'कुमार' के कलागुरु रवि भाई के कथा-प्रसंगों से गूंज उठता था। इस तरह बम्बई के वे दिन शिक्षाप्रद तथा आह्लादपूर्ण थे।'

एक और दृष्टि से भी ये दिन उल्लेख योग्य हैं। पच्चीस वर्ष की आयु के युवा गिजुभाई अपने समवयस्क मित्रों के साथ भावी जीवन के अनेक सपने बुन रहे थे। बाल गंगाधर तिलक ने सम्पूर्ण भारत में 'स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का मंत्र फूंक दिया था। उससे देश के युवावर्ग के दिलों में स्वतन्त्रता की आग सुलग उठी थी। गिजुभाई तथा महादेव भाई विचारों में डूब गए कि हम अपने देश के लिए क्या करें! अपनी मातृभूमि को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त करने के लिए क्या करें!

गिजुभाई, महादेव भाई, नरहरि भाई परीख, हर भाई आदि सब के सब शिक्षा के 'जीव' इस बात पर एकमत थे कि हम राष्ट्र सेवा कर्म तो करेंगे ही, लेकिन शिक्षा के माध्यम से ही करेंगे। यदि हम भावी पीढ़ी की चेतना से युक्त, निडर, ज्ञानी, विज्ञानी बना सके तो यह राष्ट्र सेवा का महान् काम होगा। कारण यह कि ऐसी पीढ़ी ही आगे चलकर आजादी की रक्षा कर सकेगी। उसे सुदृढ़ बना सकेगी।

आतंकवादी आंदोलन के प्रति भी लोगों में थोड़ी-बहुत हमदर्दी थी। चाहे जो कहो, था तो वह स्वाधीनता-प्राप्ति का आंदोलन ही। लेकिन फिर उन लोगों के मन मे विचार आता कि इस तरीके से कोई ठोस काम तो होने का नहीं। कुछ ऐसा काम करे कि जिससे स्वाधीनता प्राप्ति के लिए हम सब तथा देश की पूरी जनता तैयार हो सके।

1. मूछाळी मां : गिरीश, पृष्ठ 22.

एक वर्ष के बाद डिस्ट्रिक्ट प्लीडर बनकर गिजुभाई वल्लभीपुर लौटे। वल्लभीपुर छोटा गांव है अतः सुरेन्द्र नगर जाकर उन्होंने वकालत शुरू की। हाथ में लिया काम अत्यन्त जागरूकता के साथ पूरा करते थे वे। धीमे-धीमे वकालत जमने लगी। और जब जरूरी समझा तो बम्बई जाकर हाईकोर्ट के वकील भी बन गए।

श्री पोपट लाल चूड़गर, श्री अमृतलाल सेठ, श्री तलकशी भाई दोशी, श्री मणिलाल कोठारी, श्री मोहनलाल बेरिस्टर आदि समर्थ वकील उनके सहकर्मी तथा मित्र थे। वकालत के ये चार-पांच वर्ष गिजुभाई की जिन्दगी में अत्यन्त उल्लेखनीय हैं।

अपने वकील मित्रों के साथ मिलकर उन्होंने वहां कानून की शिक्षा देने के लिए एक वर्ग तैयार किया। श्री गिरीश भाई लिखते हैं : 'गिजुभाई की मान्यता थी कि इन्सान चाहे जो व्यवसाय करे, उसका रीतिबद्ध ज्ञान उसे होना चाहिए। बहुत सम्भव है कि प्रशिक्षण-विद्यालय की स्थापना का विचार उनके मानस में यहीं से उपजा हो।'[1]

वकालत चलने लगी। केस लड़ने लगे। पैसा आने लगा। जीवन में प्रतिष्ठा विश्वास तथा आनन्द भी मिलने लगा। घर के विषय में उदासीन गिजुभाई वकालत के व्यवसाय में जागरूक थे। जो भी केस हाथ में लेते उसके लिए कठिन श्रम करते। रात-दिन एक ही लगन रहती। मामूली-से केस के लिए भी कितना ही अध्ययन करते, ढेरों नोट्स लेते। पूरा केस बारीकी के साथ देखते, तहकीकात करते और दाखिला-दलील के साथ उसे तैयार करते। मुवक्किल उनके श्रम एवं ईमानदारी के प्रति विश्वस्त तथा आश्वस्त थे। उनके व्यक्तित्व की महक चारों ओर फैलने लगी।[2] उनके ये ही गुण आगे चलकर 'दक्षिणामूर्ति' संस्था से जुड़ने पर उनके लिए सहायक रहे। इस सम्बन्ध में आगे प्रकाश डालूंगा।

वकालत पूरे वेग के साथ चलती थी। पर अन्दर ही अन्दर उनकी आत्मा कभी-कभी व्याकुल हो उठती थी। झूठा व्यवहार उन्हें कतई पसन्द नहीं था। एक बार ऐसा ही केस आ गया था। बनिये की बही को फेंकते हुए गिजुभाई ने कहा : 'ऐसा झूठा केस लेकर मेरे पास क्यों आये हो? सामने के…आफिस

1. मूछाळी मां : गिरीश, पृष्ठ 25.
2. बाल शिक्षण प्रणेता गिजुभाई : रा. ना. पाठक.

में आओ । वही तुम्हारी वकालत करेगा ।'[1]

जिस रोज यह घटना घटी थी, उस शाम गिजुभाई अत्यन्त व्यथित हो गए थे । उनके एक सम्मानित वकील मित्र ने, जब वास्तविकता का पता चला तो उनसे कहा : 'ऐसी ना समझी करोगे तो घर में खाना पकाने के लिए लकड़ियों का पैसा भी नहीं रहेगा ।'

अपने अनोखे अन्दाज में गिजुभाई ने जवाब दिया : '...तो इस वकालत के पट्टे को उतार कर इससे रास्ते का भाता बना लूंगा और अपने गांव वळा का रास्ता नापूंगा ।'

फिर मीणे का केस आया । लोलियाणे के गरासिये का केस आया गिजुभाई का जमीर कलपने लगा । झूठ, दंभ तथा निर्दयता के इस संदर में रहने से उनके नन्हें मन ने साफ इन्कार कर दिया ।

सन् 1910 से 1920 का काल देश की युवा पीढ़ी के लिए अलौकिक काल था । महाराष्ट्र के विनोबा विचार करने लगे कि मुझे देश को स्वाधीनता दिलानी है तथा ईश्वर-प्राप्ति करनी है और एक दिन वे घर बार छोड़कर उत्तराखंड में हिमालय की तरफ मार्ग ढूंढने को चल दिये । दत्तात्रेय कालेलकर भी इसी महान् कार्य के लिए अपने मित्रों के साथ घर से भाग निकले । प्रोफेसर कृपलानी अपनी प्रोफेसरी में असन्तुष्ट थे । तेजस्वी प्रतिभा तथा सादगी की प्रतिमूर्ति बिहारी बाबू डा० राजेन्द्र प्रसाद भी व्यथित थे । शान्त सौराष्ट्री ठक्कर बप्पा देश सेवा के लिए गोखले जी के भारत सेवक समाज की तलाश में थे । नरहरिभाई तथा महादेव भाई दोनों मित्रों ने गाँधीजी को देखा तो उनके चरणों में समर्पित हो गए । विद्वान् प्राध्यापक नृसिंह प्रसाद कालीदास भट्ट 'नाना भाई' का संक्षिप्त नाम धारण करके 'दक्षिणामूर्ति' में बालकों के चरणों में बैठ गए ।

गिजुभाई जैसा व्यक्ति, जिनका हृदय इतना संवेदनशील है, ऐसे राष्ट्र-व्यापी आंदोलन के प्रवाह से अलिप्त कैसे रह सकता था ! गाँधीजी को देखा तो आँखें शीतल हो गईं । बम्बई के दिनों में जो धुंधले-धुंधले सपने गिजुभाई ने देखे और सहेजे थे, वे अब क्रमशः अधिक स्पष्ट और साकार होते प्रतीत हुए । आश्रम में महादेव भाई देसाई के साथ उनका पत्र व्यवहार शुरू हुआ ।

उन्हीं दिनों गिजुभाई के घर पर पुत्र का जन्म हुआ । पुत्र तो सबों के यहां जन्म लेता है । पेड़ से गिरते हुए फल को दुनिया में भला किसने नहीं देखा होगा, पर गुरुत्वाकर्षण का सूत्र तो किसी न्यूटन के ही हाथ लगता है । पुत्र का जन्म गिजुभाई की जिंदगी में परिवर्तन लाने का एक प्रमुख प्रेरक-बल बना ।

वे पितृ धर्म निबाहने को बराबर तैयार थे । इस दृष्टि से वे अक्षम या

1. बाल शिक्षण प्रेणता गिजुभाई : राम नारायण पाठक, पृष्ठ 71

असमर्थ नहीं थे । पर नवजात शिशु की सुशिक्षा की चिन्ता उन्हें अभी से सताने लगी । देखकर विनोदी मित्र उनसे कह देते : 'अरे भाई तुम्हारे घर पर ही कोई नया-नया बच्चा जन्मा है क्या ?'

'तुम लोगों को भी अपनी औलाद के बारे में मेरी ही तरह से विचार करना चाहिए । बच्चे ही तो हमारी खरी पूंजी हैं । ये ही भावी नागरिक हैं ।'[1] गिजुभाई की बात सुनकर मित्र लोग आगे बोलना बन्द कर देते ।

श्री गिरीश भाई ने अपने स्मृति कोश से उन दिनों का एक संस्मरण यों सुनाया : 'गिजुभाई अपने गाँव आते तो मुझसे कई तरह की नई-नई बातें करते । कभी जब हम साथ बैठे खाना खा रहे होते, वे अपने दिल की गहराई से कहते—'अरे गिरीश ! इस बच्चू का क्या करना चाहिए ! मुझे तो इसकी पढ़ाई की बड़ी चिंता होती है । ये तमाम पाठशालाएँ तो तुम जानते ही हो, 'गिनती-बारखड़ी' के सिवा और कुछ भी तो नहीं ।'[2] उनके हाथ का कौर हाथ में ही रह जाता ।

लेकिन द्रौपदी की आर्त्त पुकार भगवान तो सुनते ही ! स्नेही मित्र मंडली में गोपालदास ने राह सुझाई—'इसमें चिंता करने की क्या बात ? हमारे वसो गाँव में बच्चों की एक पाठशाला चलती है, उसे देख आओ । हमारे एक भाई हैं मोती भाई साहब, वे तुम्हें ढेर सारी किताबें पढ़ने को दे देंगे ।'

गिजुभाई वसो गए । मोती भाई अमीन से मिले । मोंटेसरी शिक्षण-पद्धति तथा मोंटेसरी साहित्य से परिचय हुआ । भगीरथ को गंगा मिली । उन दिनों की गिजुभाई की मन:स्थिति के कुछ दृश्य एक व्यक्ति से मिले हैं । सन् 1915 के फरवरी माह में अपने एक मित्र से गिजुभाई मिले थे और उनसे चि. नरेन्द्र (बचु भाई) की पढ़ाई के बारे में बातें की । मित्र ने वह वार्तालाप अपनी डायरी में इस तरह से लिखा है । शब्द गिजुभाई के हैं और लेखनी मित्र की : 'मुझे तो इस लड़के की पढ़ाई की भारी चिन्ता है । लेकिन एकाएक मित्र द्वारा मार्ग दर्शन मिल गया । तदनुसार काम शुरू करता हूं, इसलिए अब चिन्ता कम हो चली है । इटली में एक शिक्षिका है, मोंटेसरी । उसने बालकों की आयु के अनुसार उनकी सामर्थ्य एवं क्षमता का पता लगाकर एक नये तरीके का पाठ्य-क्रम बनाया है । इससे बालकों की अन्तर्निहित क्षमताएं स्वतः स्पष्ट होने लगती है । उन्हें विकसित होने का मार्ग मिल जाता है ।'

वकालत में अब गिजुभाई का मन लगा नहीं । धीरे-धीरे शिक्षा की दिशा में आकर्षित होने लगा । संयोग से एक दिन महादेवभाई देसाई का निमंत्रण मिला कि मैं तो यहां गांधीजी के चरणों में बैठ गया हूँ, तुम भी आश्रम में आ जाओ । उन्होंने आश्रम में जाना लगभग तय कर लिया । हरभाई को भी

1. मूछाळी मां : गिरीश
2. श्री गिरीश भाई से बातचीत के आधार पर

बम्बई में सूचना भेज दी कि मैं तो आश्रम में जा रहा हूँ, तुम भी आ रहे हो ना !

इसी बीच उनके मामाजी का पत्र आया—'अगर तुम्हारा इरादा शिक्षा संस्था में ही काम करने का हो तो 'दक्षिणामूर्ति' में चले आओ। हमारी संस्था को तुम्हारी जरूरत है।'[1]

और एक दिन गिजुभाई 'दक्षिणामूर्ति' पहुँच गए। टोले से बिछुड़ा हुआ भेड़-शावक इधर-उधर भटककर जैसे फिर से अपने टोले में पहुंच गया हो।

प्रारम्भ में कुछ काल के लिए छात्रावास में गृहपति (रेक्टर) का काम किया। विनय मन्दिर (हाई स्कूल) खुल जाने पर उसके आचार्य का दायित्व इन्हें सौंपा गया।

विनय मन्दिर में उनका काम कैसा रहा, यह सब हम श्री नानाभाई के शब्दों में ही पढ़ें : 'गिजुभाई जैसे मुझे साथी मिले, इसलिए शिक्षण का काम धीमे-धीमे मैं उन्हीं के जिम्मे छोड़ता गया। गिजुभाई के पास बम्बई विश्वविद्यालय की कोई उपाधि नहीं थी। इससे भावनगर में अनेक लोगों को उन्हें प्रधानाचार्य पद सौंपना हास्यास्पद लगा था। लेकिन गिजुभाई ने शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी दिमागी सूझ से, अपनी क्षमता तथा अपने प्रयासों से सबों को मात दे दी। एक ओर तो उन्होंने शिक्षा-शास्त्र का गम्भीर अध्ययन करना प्रारम्भ किया, तथा दूसरी ओर शिक्षक की जन्मजात चातुरी से शाला-प्रबन्ध को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। उनके साथ काम करने वाले सभी शिक्षक तथा कर्मचारी उनके विचारों से, उनके प्रबन्ध कौशल से तथा शिक्षा देने की उनकी पद्धति से मुग्ध हो गए। स्वयं गिजुभाई ने इस कार्य को जीवट के साथ सम्पादित किया।

'चार वर्षों तक गिजुभाई हमारे विद्यालय के आचार्य रहे और इन चार वर्षों के दरमियान उन्होंने हमारे भावी विकास का बीजारोपण कर दिया। गिजुभाई ने अपनी निजी दृष्टि से, शिक्षक के रूप में अपने पूरे कौशल से तथा अपने सफल कक्षा-शिक्षण से मित्रों को तो मुग्ध किया ही, भावनगर की शालाओं के अनेक शिक्षकों को भी मोह लिया। परिणाम यह हुआ कि उनके घर पर प्रति सोमवार एक छोटी-सी शैक्षिक-गोष्ठी जुटने लगी। गोष्ठी में हम सभी शिक्षा के विविध विषयों पर निबन्ध पढ़ते तथा चर्चाएं करते। इन चर्चाओं के दरमियान गिजुभाई ने सबों को अपनी विद्वत्ता से प्रभावित किया। एक प्रकार से वे उन सभी शिक्षकों के गुरु जैसे हो गए। उस दिन से दक्षिणामूर्ति शिक्षण-शास्त्र के प्रयोगों का केन्द्र बनने लगा। कालांतर में 'दक्षिणामूर्ति' ने अपनी विशेषताओं द्वारा गुजरात का तथा सम्पूर्ण देश का ध्यान आकर्षित किया। दक्षिणामूर्ति की इन विशेषताओं का श्रेय गिजुभाई को ही दिया जाना चाहिए।'[1]

1. बाल शिक्षण प्रणेता गिजुभाई : रा. ना. पाठक

अंग्रेजी के डाइरेक्ट मैथड का शिक्षण में प्रयोग वे इन्हीं दिनों कर रहे थे। श्री नाना भाई ने भी इतिहास तथा संस्कृत के शिक्षण में इन्हीं दिनों गिजुभाई की देखा-देखी नये प्रयोगों की आजमाइश शुरू की थी। रामनारायण ना. पाठक ने अपनी पुस्तक में गिजुभाई द्वारा विनय मन्दिर के संचालन का काफी सुन्दर वर्णन किया है। सबों के लिए पठनीय है वह।

विनय मन्दिर में काम करते-करते उन्हें लगा कि बड़ी उम्र के बालकों के साथ वे जो काम कर रहे हैं वह तो मात्र धूल पर लीपने जैसा काम है। बालकों के जीवन में संस्कार निर्मित करने का स्वर्णिम काल बाल्यकाल तो यूं ही गुजर जाता है। और बाद में हम ऊपर-ऊपर संस्कारों का लेपन करें तो उससे क्या लाभ ? वस्तुतः बालकों के साथ बाल्यकाल से ही काम किया जाना चाहिए तभी ये संस्कार गहरे पैठ सकते हैं। अपना यह मन्तव्य उन्होंने अपने सहकर्मियों तथा संस्था के ट्रस्टियों के सामने रखा। उन्हें समझाया और एक दिन बाल मन्दिर शुरू हो गया [सन् 1920 में]। विनय मन्दिर का काम उनके साथी श्री हरभाई त्रिवेदी ने संभाला।

बाल मन्दिर शुरू क्या हुआ, गिजुभाई की आत्मा अपनी सोलह कलाओं के साथ खिल उठी। सृजन का कार्य शून्य से शुरू करना था उन्हें। वे अपनी क्षमताओं, शक्तियों तथा सीमाओं से परिचित थे। मोंटेसरी शिक्षण पद्धति स्थानीय वातावरण में किस हद तक सफल रहती है, यह प्रयोग करके उन्हें अभी देखना बाकी था। समाज भी उस विचार के बहुत अनुकूल नहीं था। पर गिजुभाई ने अपना काम जारी रखा।

बाल मन्दिर के प्रारंभिक वर्षों का वर्णन उन्होंने स्वयं सुन्दर ढंग से सविस्तार लिखा है। प्रत्येक जागरूक शिक्षक के लिए वह वर्णन पठनीय है। स्वानुभव के आधार पर शिक्षण में किये गए अपने प्रयोगों के सम्बन्ध में लेख लिखकर प्रस्तुत करना, यह गिजुभाई का एक अन्य उल्लेखनीय योगदान है। बहरहाल, हम उन दिनों की उनकी मनःस्थिति का चित्र उन्हीं के लेख से पढ़ें :

'मेरे मन में मात्र उन्हीं का (बालकों का) चिंतन-स्मरण था। रात में प्रत्येक बालक के बारे में विचार चलता। प्रत्येक के लिए कल क्या करना है, यह तय करता। उन दिनों में बस वही मेरी एक उपासना थी। कई बार बालकों के ध्यान में मेरा खाना, पीना आदि दैनिक कर्म यन्त्रवत जारी रहता। उसके लिए मुझे उलाहना भी मिलता। कभी-कभी विचारों में ऐसा खो जाता कि लोगों को सही उत्तर नहीं देता। इससे सामने वाले का अपमान होता। पर मैं तो एक ही चीज के पीछे पड़ा था। पीछे पड़ना याने उसमें खो जाना,

1. घड़तर अने चणतरः नानाभाई भट्ट

उसी में लीन हो जाना, उसे अपना ईश्वर मानना। इसी का नाम है उपासना।'

'इसमें विघ्न-बाधा आती है, परीक्षा होती है, भ्रम पैदा होता है—यह सब सहना पड़ता है। तरह-तरह के बच्चे, शिक्षण पद्धति की नई-नई आजमाइश, समाज के तथा रूढ़ शालाओं के परम्परागत आचार-विचारों का प्रत्यक्ष विरोध, साधनों की सीमितता, तथा मेरी अपनी क्षमताओं की मर्यादा—ये सब बातें एक साथ सामने आकर खड़ी हो जाएँ और व्यक्ति इनसे पार पाना चाहे तो निश्चय ही काफी परिश्रम उठाना पड़ता है, सब कुछ भूल जाना पड़ता है, और जरूरत आ पड़े तो त्यागना भी पड़ता है।'

'बालकों ने मुझे प्रेम देकर नया किया, नई जिंदगी दी। उन्हें सिखाने में सच पूछें तो मैं ही सीखा। उनका अवलोकन करते-करते मुझे ही आत्मावलोकन का अवसर मिला। उन्हें नीचे से ऊपर ले जाते हुए साथ-साथ मैं भी ऊपर चढ़ता गया। उनका गुरु होने के बावजूद मैंने उनका गुरुत्व देख लिया।'

'यह कोई कविता नहीं हैं। यह सब जैसे हाथ में हो, ऐसा स्पष्ट अनुभव-कथन है।'

'हम कोई भी काम करें तो उसके पीछे लगकर करें, प्राणपण से करें, मेरी दृढ़ मान्यता है कि अन्त में विजय—श्री हमारा ही वरण करेगी। हमारे हृदय में बस (प्रभु के प्रति) श्रद्धा तथा विनम्रता ये दो चीजें होनी चाहिए।'[1]

श्रद्धा फलवती हुई। गिजुभाई को तारा बेन, मोंघी बेन, नर्मदा बेन, मनुभाई वगैरह सहकर्मी मिले। टेकड़ी के ऊपर नया भवन बन गया, और श्री जुगतराम काका गा उठे :

'वहालुं मारूं बाल मंदिरियुं।
टेकरीने शिखरे मदिर अमारूं
देरानी जाणे धजाय,
सूरज सवारे सोनला रे वेरता
सांजे गुलाल ढोळी जाय,
वहालुं मारूं बाल मंदिरियुं।'

समाज के गले अपनी बात उतारने के साथ-साथ गिजुभाई ने प्रचार माध्यमों का भी सहारा लिया। भावनगर में शिक्षकों की सभा में नूतन-शिक्षण विषयक व्याख्यान देते; माता-पिता तथा अभिभावकों की सभा बुलाकर उन्हें अपने विचारों की जानकारी देते; तथा पत्रिकाएँ छपाकर अपनी बात उन लोगों के गले उतारने का श्रम करते।

छोटे-छोटे बच्चे कभी-कभी बाल मन्दिर में आकर गिजुभाई से शिकायत करते—'मां ने आज मुझे घर पर मारा था।' वे उनके साथ घर पर चिट्ठी

1. "दक्षिणामूर्ति" मैमासिक

लिखकर भेजते—'आइंदा इसे मारना मत।' मां बिचारी पत्र पढ़ कर शर्मिंदा हो जाती।

धीरे-धीरे बालमन्दिर का विचार लोगों के गले उतरने लगा। कहीं-कहीं तो इसी प्रकार के बाल मन्दिर खुलने लगे। लोग गिजुभाई के यहां बाल मंदिर को देखने आते, कुछ काल रुकते और फिर लौटकर अपने वहां बाल मन्दिर शुरू कर देते। यहां से अध्यापन मन्दिर की शुरुआत हुई।

फिर तो प्रवृत्तियों की धूम मच गई। अध्यापन मन्दिर जोर-शोर से चलने लगा। साथ ही 'जीवन अध्यापन-मन्दिर' भी शुरू हुआ। मोंटेसरी संघ की स्थापना की। 'दक्षिणामूर्ति' तथा 'शिक्षण पत्रिका' प्रकाशित हुए। पत्रिकाओं का प्रकाशन-कार्य भी धुंआधार चल पड़ा।

उनमें फिर साहित्य-सृजन की गंगा अवतीर्ण हुई। बालकों का साहित्य, शिक्षण शास्त्र का साहित्य, शिक्षकों का साहित्य तथा अभिभावकों के निमित्त साहित्य का लेखन-कार्य शुरू हुआ। श्री रामभाई पाठक ने लिखा है : 'गिजुभाई दिन-रात देखे बगैर अविरल लेखन प्रवाह बहाने लगे। ज्ञान की इस गंगा को श्री गोपालभाई छोटी-मोटी पुस्तिकाओं रूपी नहरों के माध्यम से गांव-गांव तक पहुंचाने लगे।[1] कभी-कभी श्री गोपालभाई गिजुभाई से मनोविनोद में कहते : 'आपके हाथ पर तो सरस्वती बैठी दिखती है।' हंसते-हंसते वे जवाब देते : 'लगता तो मुझे भी ऐसा ही है।[2]

मोंटेसरी संघ की गतिविधियां बढ़ने लगीं। उसके सम्मेलन आयोजित होने लगे। अहमदाबाद के एक सम्मेलन में तो गिजुभाई ही अध्यक्ष बनाए गए।

मोंटेसरी शिक्षण के उपकरण अपने ही देश में बनें, इस सम्बन्ध में वे गम्भीरता के साथ प्रयास करने लगे।

काम में इतनी व्यस्तता के बावजूद अपने बालकों की उन्होंने कभी उपेक्षा नहीं की। अत्यन्त सार सम्भाल तथा लाड़-प्यार से उनकी पढ़ाई-लिखाई पर ध्यान दिया। रात को खाना खाने के बाद एक बच्चे को वे गोद में लेकर कहानी कहते थे, तो साथ ही साथ दूसरे को पालने में झुलाते जाते थे। यह दृश्य लगभग रोजाना देखने को मिलता। अपनी पुस्तक 'हालतां चालतां' में अपने बालकों के कितने ही प्रसंगों का उल्लेख उन्होंने किया है। ये रोचक प्रसंग हमारे लिए पठनीय हैं। बालजीवन के नन्हें सरल प्रसंगों के पीछे गिजुभाई की

1. बालशिक्षण प्रणेता गिजुभाई : रा. ना. पाठक
2. श्री गोपालराव विद्वांस से बातचीत के आधार पर।

आर्ष-दृष्टि किस तरह से शोध करती रही थी यह उनमें पढ़ने को मिलता है।[1]

गिजुभाई के घरेलू जीवन के अन्तरंग प्रसंगों के बारे में रामभाई ने लिखा है : बबु टीकू जाग गए हों तो गिजुभाई उनके पास बैठकर उन्हें दातून का कूचा बनाना तथा दातून करने का तरीका सिखाते। उन्हें चाय पान कराते, नहलाते और खाने के वक्त साथ-साथ खिलाते। वे अभी खाना खा ही रहे होते कि बबु बेन कह उठती : 'गिजुभाई, मेरे हाथ धुलाओ।

इन प्रसंगों का महत्त्व हमारे लिए और भी बढ़ जाता है, जब मैं एक सुनी हुई बात से इनकी तुलना करता हूं। प्रख्यात शिक्षाविद् रूसो, जिन्होंने बाल-शिक्षा की बड़ी-बड़ी बातें कही हैं, के सम्बन्ध में मुझे बताया गया कि उन्होंने अपने बच्चों को धर्मशाला में डाल रखा था।

गिजुभाई के स्वभाव की एक अन्य विशेषता यह है कि जितना ध्यान वे बाल मन्दिर को सर्वांग सुन्दर बनाने पर देते थे, उसकी तुलना में स्वयं पर कतई ध्यान नहीं देते थे। इसीलिए उनके मित्र उन्हें औलिया कहते थे। चाहे कुरता फट गया हो, उसके किनारों के रेशे निकल आये हों, धोती छुट्टी की इजाजत मांगती हो, चश्मे की डंडी कई दिनों से टूटी पड़ी हो—ये बातें उनके लिए महत्त्वहीन व गैरजरूरी थीं। इस सम्बन्ध में एक प्रसंग आपके सामने है।

मोंटेसरी संघ के सम्मेलन में अध्यक्ष की हैसियत से उन्हें अहमदाबाद जाना था। सामान बांधने लगे। बिस्तर तैयार कर लिया। बोले : 'कपड़े !'

श्रीमती जड़ी बेन ने दो धोतियां और दो कुरते आलमारी से निकाले। उजला दूध-धुला कुरता, पर चारों किनारों से फटा-फटा।

बबुभाई कहने लगे, 'यह कुरता नहीं चलेगा गिजुभाई। भाईचंद को खादी भंडार भेजो तत्काल। दो कुरते सिलवाकर स्टेशन भिजवा देंगे। दर्जी हाथों-हाथ तैयार कर देंगे अभी।

गिजुभाई हंसते हुए बोले—'क्यों, इसलिए कि मैं अध्यक्ष बना हूं, नये कपड़े सिलवाने पड़ेंगे ? तुम तो जानते हो कि फट जाने के बाद भी ये कपड़े मेरे कितने दिनों तक चलते हैं।' कहते हुए वे सामने खड़ी मोंघीबेन तथा प्रेमी बेन से कहने लगे—'लो मोंघी, प्रेमीबेन, एक-एक कुरता सम्भालो तुम और

1. यह वातावरण पूरी दक्षिणामूर्ति में स्थायी रूप से प्रत्येक व्यक्ति में स्थिर हो गया था। शिक्षा तथा राष्ट्रीय गतिविधियों की चाहे जैसी बातें करें लेकिन इनके सामने न बालकों का स्थान उनकी दृष्टि से उतरता था, न घर में रहते हुए छोटे-बड़े कामों में उनका योगदान कम होता था। श्री नानाभाई भट्ट के घर जाकर देखो तो वे पालने में सोये बच्चे को बैठे-बैठे हलराते होते और साथ-साथ चर्चा भी करते जाते। श्री मनुभाई पंचोली 'दर्शक' ने विशेष तौर पर अपने इस अवलोकन का उल्लेख किया था। श्री हरभाई त्रिवेदी के वहां भी उनके विद्यार्थी कहते थे कि वर्षों तक रोजाना शाम चार बजे उन्हें कपड़े सुखाते वे लोग देखते आए हैं।—लेखक

टांका, बटन, पैबन्द जो लगना हो, लगाकर नये कर दो।

दोनों ने कुरतों को सिलकर दुरुस्त कर दिया। गिजुभाई कुरते हाथ में ले मुस्कुराते हुए बोले : 'वाह, उम्दा। नये हो गये न, क्यों। देख बच्चू ! अध्यक्ष को शोभा दें ऐसे हैं न ! जरा-सी फटते ही खादी क्या तुरन्त फेंक देने की चीज है।[1]

सन् 1930 का स्वतन्त्रता संग्राम आया। श्री नानाभाई आदि सभी सक्रियता से नमक आन्दोलन में कूद पड़े। गिजुभाई की राष्ट्रीय शिक्षक आत्मा सोचने लगी कि उसे क्या करना चाहिए। उन्होंने साक्षरता योजना प्रारम्भ करने का निर्णय लिया। स्वाधीनता की प्राप्ति में तथा स्वाधीनता को कायम रखने में आज भी लोक शिक्षण का महत्त्व कम नहीं हो गया है।

पर उनमें तो स्वाधीनता की मशाल अधिकाधिक प्रज्वलित होने लगी। श्री नानाभाई जेल में गए तो गिजुभाई वहां रह नहीं सके। ये संग्राम में सीधे कूद पड़े। लेकिन यहां पर भी उनका शिक्षक रूप दिखाई देता है।

उन्होंने बारडोली के हिजरती (शरणार्थी) किसानों के बीच रहने का निश्चय किया। तम्बू लगाकर वे उनके मध्य रहे।

सबेरे उठते। किसानों के छोटे-छोटे बच्चों को इकट्ठा करते। उन्हें नहला धुलाकर साफ करते। खेल खिलाते। गाने गवाते। कहानियां सुनाते। लिखना पढ़ना भी सिखाते। बड़ों-बुजुर्गों को भजन सुनाते तथा कथा-वार्ताएं कहते। गिजुभाई के आगमन से झोंपड़ों में रहने वाले हिजरती किसानों को बड़ा सहारा मिला। उनमें साहस आया। रोजाना शाम पड़े श्री मोंघी बेन अपने सुरीले कंठ से भजन सुनाती।

हरिने भजतां हजी कोईनी लाज जती नथी जाणी रे।
जेनी सुरता शामळिया साथ वदे वेद वाणी रे॥

स्त्री, पुरुष, बच्चे सब के सब समूह में बैठ जाते। पूर्णा के किनारे गांव से कुछ दूर खेतों के मचानों में देर रात गये तक बारडोली के हिजरती किसान भजन सुनते तथा अपने दुख-सुख को भूल जाते।

यहीं से गिजुभाई ने कालांतर में 'बाल क्रीड़ांगण' की योजना शुरू की थी। वानर सेना, मांजर सेना, वानर परिषद आदि प्रवृत्तियां भी यहीं से शुरू हुई थीं।

ग्राम अध्यापन मन्दिर तथा प्रस्तार सेवा (एक्सटेंशन सर्विस) प्रवृत्तियां भी प्रारम्भ हो गईं। नये नये बाल मन्दिर खुले। कई बाल मन्दिरों को पत्राचार द्वारा और कइयों को उन्होंने स्वयं जाकर मार्गदर्शन प्रदान किया। शिक्षा संस्थाएं अथवा सरकारी या देशी राज्यों के शिक्षा विभाग उनसे मार्ग दर्शन चाहते, तो वे उद्यत रहते।

1. बाल शिक्षण प्रणेता गिजुभाई : रा. नां. पाठक

बस प्रवृत्ति, प्रवृत्ति, प्रवृत्ति । देर रात गये तक अपने बीमार बच्चों के पास जागरण करते-करते भी भाई प्रभुलाल के साथ वे मनोविज्ञान की बातें करते और उनका अधूरा अभ्यासक्रम प्रेम के साथ पूरा करते ।

The candle was burning at both the ends.

काम का इतना भार शरीर कैसे सहन करे ! उन्हें बुखार और दमा हो गया । तब भी वे अपना काम जारी रखते ।

नानाभाई अपनी लाक्षणिक शैली में उनसे कहते—'घोड़ा जब थक जाता है तो कुछ समय के लिए उसे खूंटे बांधना चाहिए या नहीं ।'

जवाब में गिजुभाई कहते—'नानाभाई, जो लोग लम्बी उम्र माँगते हैं उनसे बढ़कर कोई मूर्ख नहीं । सौ वर्ष की उम्र मांग कर भी दस वर्ष जितना काम न करने की बजाय पचास वर्ष की उम्र मांगकर सौ वर्ष का काम कर डालना मुझे कहीं अधिक पसन्द है । जीवन में मंथर गति से रखड़ते हुए काम करने वाले लोगों से मुझे बहुत चिढ़ है । खाना और पीना, सोना और बैठना, काम करना और आराम लेना—ये सारे चोंचले मुझे नहीं आते ।'

'लेकिन गिजुभाई आप अस्वस्थ हैं तब तक के लिए बाल मन्दिर का काम आप न करें, नियामक के रूप से यह मेरा आदेश है,' नानाभाई ने कहा ।

'साहब आपका आदेश शिरोधार्य है । लेकिन बाल मन्दिर का काम मैं न करूंगा तो दूसरे दस पचड़े खड़े करूंगा । मुझसे रहा नहीं जाता । इसलिए ऐसा कोई आदेश देने के बजाय जो काम मैं कर रहा हूं वही करने दें ताकि जल्दी स्वस्थ हो जाऊंगा ।' गिजुभाई ने नम्रता के साथ अपनी बात निवेदित की ।

धीरे-धीरे वे स्वस्थ हो गए । काम की फिर से वही रफ्तार । यात्राएं भी कितनी ही पूरी की । सिंध तथा बम्बई तक कार्यक्षेत्र विस्तृत हो गया था ।

मित्रों, शिष्यों तथा स्नेहियों ने सम्मान थैली अर्पित की । गिजुभाई ने थैली ग्रहण करते समय कहा : 'गुजरात के बालकों का सम्मान है यह । मैं तो मात्र निमित्त हूं । आप लोग भी यही समझना ।' और थैली की तमाम राशि बालकों के कल्याणार्थ लगाने को उन्होंने थैली तत्काल आयोजकों के ही हाथों में सौंप दी ।

कितनी-कितनी बातें याद करें गिजुभाई की । हीरे को किसी भी कोण से निरखें, उसकी चमक सदा वैसी ही रहती है प्रखर, दीप्त तथा गरिमापूर्ण ।

सन् 1936 में उन्हें दक्षिणामूर्ति में काम करते 20 वर्ष पूरे हो गये थे । उसी वर्ष वे संस्था से मुक्त हो गये ।

बाद का कुछ अर्सा आराम में बीता । लेकिन एक दिन उनके पुराने मित्र श्री पोपट लाल चूड़गर आये और उन्हें राजकोट ले गए । एक बार फिर से अध्ययन मन्दिर तथा प्रस्तार सेवा की प्रवृत्तियां उत्साह के साथ चल पड़ीं । श्रीमती ताराबेन मोडक के शब्दों में, 'बच्चों के प्रति अन्यायपूर्ण व्यवहार करने वाले समाज को उलट देने के लिए उनके भीतर धधकती हुई जो आग थी वह उन्हें शान्त नहीं बैठने देती थी ।'

लेकिन शरीर अब उनके कहने में नहीं था, उधर गिजुभाई ऐसे कि जो दायित्व ओढ़ लिया, उसे पूरा करके ही चैन लेते । गिराशभाई लिखते हैं कि 'आखिरी अध्यापन मन्दिर की नाव को गिजुभाई ने बाँस का टेका लगाकर ही हांका ।

अस्वस्थ गिजुभाई से मिलने को मित्रगण आते । वे बैठे हो जाते । 'आप लेटे-लेटे ही बात करें । लेटे रहने से आराम और शान्ति मिलेगी ।'

गिजुभाई हाथों-हाथ जवाब भुगता देते 'शान्ति और चैन की बात छोड़ो । मियांजी को शान्ति कब्र में मिलेगी ।'

बीमारी बढ़ती गई । हवा बदलने के लिए उन्हें देवलाली ले गए । कुछ आराम नहीं मिला तो पंचगनी गए । तबीयत में सुधार का कुछ आभास मिला । लेकिन एकाएक पक्षाघात का आक्रमण हो गया ।

बम्बई लाकर इलाज के लिए हरिकिशन दास होस्पीटल में भर्ती किया । वे दिन अत्यधिक कष्ट में बीत रहे थे । उनकी वाणी रुक गई थी । दांया हाथ उठता नहीं था ।

एक रोज पगले हरिनाथ की बात चली तो बच्चे की मानिन्द फूट-फूटकर रो पड़े । स्थिर हुये तो चिट्ठी लिखने लगे, 'आत्मदर्शन करने की मेरी लालसा अधूरी ही रह गई । मैं अपनी बात किसे समझाऊं ।'

टैगोर की गीतांजलि का एक पद मुझे स्मरण आ रहा है—

जोदि तोमार देखा न पाई प्रभु
ऐबार ए जीवने,
तोबे तोमाय आमि पाईनि जेनी
से कोथा रव मोने,
जेनो भूले ना जाई वेदना पाई
शयने स्वप्ने ।

श्री महादेवभाई देसाई तथा पुज्या कस्तूरबा उनसे मिलने को आये । बापू ने भी खबर पूछी । प्रेम आंसू बह निकले ।

अंतकाल समीप आ रहा था । आत्मा जाने उस कबीर की पंक्तियां गा रही थी : 'रहना नहीं देश बिराना है···।'

और तब उन्होंने आखिरी चिट्ठी लिखी : 'Lefi is not eaternal. I am closing my account. मेरी मृत्यु पर कोई रोये नहीं ।'

एक शांत दीर्घ निश्वास···और बालकों की 'मूंछाली मां' का जीवनदीप बुझ गया ।

बापू ने भी श्रद्धांजलि लिख भेजी : 'उनके उत्साह और उनके विश्वास ने मुझे हमेशा मुग्ध किया है । उनका काम फलेगा फूलेगा ।'

2
गिजुभाई के पुरोगामी

इस पृथ्वी पर मानवीय इतिहास की सबसे बड़ी सच्चाई उसकी भौतिक उपलब्धियां नहीं हैं, न ही उसके द्वारा स्थापित अथवा ध्वस्त किए गए साम्राज्य हैं, वरन् सत्य एवं कल्याण की अपनी खोज में उसकी आत्मा द्वारा युगों-युगों तक की गई विकास की साधना है। आत्मा के इस साहसिक कार्य में हिस्सा लेने वाले व्यक्ति मानवीय संस्कृति के इतिहास में हमेशा अमर रहते हैं।

—सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

शिक्षा में जिन विचारों का गिजुभाई ने सूत्रपात किया था तथा जिन्हें व्यवहार में ढालकर जांचा-परखा था, वे सिद्धान्त तात्कालिक परिस्थितियों में तो उपादेय थे ही वर्तमान सन्दर्भों में भी क्रान्तिकारी ठहरते हैं। संक्षेप में वे इस प्रकार हैं :

1. बालक के व्यक्तित्व को सम्मान देना।
2. 'सिखाने' के स्थान पर 'सीखने' की प्रतिक्रिया को स्वीकृति।
3. बालक क्रिया करता है, अनुभव हासिल करता है और उन अनुभवों के द्वारा ही उसके शरीर, मन, बुद्धि तथा भावनाओं का विकास होता है।
5. शिक्षण-प्रक्रिया में बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता रहनी चाहिए, साथ ही उसके स्व-स्फुरण को महत्त्व दिया जाना चाहिए।
6. बालक के प्रति अध्यापकों का तथा माता-पिता का व्यवहार मनोविज्ञान पर आधारित होना चाहिये। याने व्यवहार के वक्त बालक की मानसिक एवं शारीरिक स्थिति को दृष्टि में रखा जाना चाहिए।

इन विचारों का उद्भव गिजुभाई के अन्त:करण में स्वानुभव द्वारा हुआ था। पर साथ ही मेरिया मोंटेसरी तथा अन्य यूरोपियन शिक्षाशास्त्रियों के ग्रंथों का उन्होंने गहन अध्ययन किया था, अत: इन सिद्धान्तों को आत्मसात करने में इन लोगों का भी योगदान निर्विवाद रहा है। गिजुभाई ने इन शिक्षाविदों का आभार भी व्यक्त किया। काका साहब कालेकर उनसे कहा करते थे : 'तुम अपने मौलिक प्रयोग करो, अपने सिद्धान्त प्रतिपादित करो और शिक्षा के महर्षि बनो। तुम्हारे पास अपना निजी दर्शन होना चाहिए। मोंटेसरी के अनुयायी बनकर तुम ये जो उससे विचार हिन्दुस्तान में प्रचारित कर रहे हो, यह मेरी समझ में नहीं आता।' गिजुभाई अत्यन्त नम्रता के साथ उत्तर देते। 'मुझे जो प्रेरणा मिली है, उसका एहसान व्यक्त न करूं तो कृतघ्न कहलाऊंगा।'[1]

प्राचीन भारत में इन सिद्धान्तों की तलाश

उक्त सिद्धान्त हमें पश्चिमी देशों से आये हुये प्रतीत होते हैं, पर वस्तुत: भारतीय शैक्षिक इतिहास के लिए ये नितान्त नए नहीं हैं। शिक्षा में 'सीखने' की प्रक्रिया के जिस सिद्धान्त को स्वीकृति प्राप्त हुई है, उसके सम्बन्ध में हमारे देश की प्राचीन भाषा संस्कृत के क्रियापदों का उदाहरण देते हुए विनोबा कहते हैं कि सीखने की क्रिया के निमित्त ही मूल क्रियापद मिलते हैं। सिखाने की क्रिया वाले नहीं मिलते। इसके लिए तो प्रेरक रूप ही उपलब्ध होते हैं, जैसे अध्ययन, अध्यापन।

प्राचीन काल की हमारी शिक्षा में क्रियात्मकता तथा स्वानुभव का पक्ष विद्यमान था। ऋषिगण अपने शिष्यों को पांच-पच्चीस दुर्बल और दूध न देने वाली गाय सौंप कर कहते थे कि अब देश-प्रदेश में घूमो। लौटकर तभी आना जब कि तुम्हारे पास एक हजार गायें हो जाएं—हृष्टपुष्ट तथा दूध देने वाली।[2]

उद्दालक ऋषि ने आत्मा सम्बन्धी गहन दार्शनिक ज्ञान अपने पुत्र को देने के लिए पानी से भरे पात्र तथा नमक डालने का, तथा वटवृक्ष के बड़गट्टों का प्रयोग उससे करवाया था। इसी प्रकार गौतम बुद्ध ने पुत्र-वियोगिनी गौत्तमी को कितनी सहजता से मृत्यु के अपरिहार्य दुख का ज्ञान करा दिया था। मुट्ठी भर सरसों के दाने मंगवाकर उन्होंने गौत्तमी का ध्यान ससांरिकों के दु:खों की ओर खींचा और उसे वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो गया। अनुभव जनित स्व-शिक्षण का कैसा अनुपम प्रयोग है यह? ब्रह्मचर्य जैसे गूढ़ विषय के शिक्षण को कथा-कहानियों के माध्यम से सरस एवं सुगम बनाने के प्रयास हमारे यहां उपलब्ध हैं। बालकों के प्रति सम्मान के उदाहरण भी देखने में आते हैं। तुलसी के काव्य में गुरु विश्वामित्र अपने छात्रावास में राम व लक्ष्मण को घण्टे-घड़ियाल बजाकर नहीं, बल्कि अत्यन्त मधुर गीत गाकर जगाते हैं : 'जागिये रघुनाथ कुंवर, पंछी वन बोले।'

बालकों पर अपने विचारों को न थोपने का सिद्धान्त भी उस काल में मिल जाता है। उपनिषद का ऋषि अपने शिष्यों से कहता है : 'यानि अस्माकं सुचरितानि तानि उपास्यानि नो इतराणि।' गौतम बुद्ध भी अपने शिष्यों को कहते हैं : 'मैं महापुरुष हूं, सिर्फ इसीलिए मेरी बातों को मत स्वीकारो, प्रत्युत् तुम लोगों के हृदय स्वीकार करें, तभी तुम स्वीकार करो।'

लेकिन प्राचीन काल में ये विचार सर्वत्र व्याप्त एवं व्यवहार्य नहीं दिखते।

1. स्मरणाजलि : काका कालेलकर
2. छांदोग्य उपनिषद्

किसी-किसी विशिष्ट व्यक्ति की संस्था में ही ये विचार जनमते थे तथा व्यवहार में लाए जाते थे। सभी अध्यापकगण इन्हीं रास्तों पर चलते हों, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। और पतन काल में तो ये विचार क्रमशः न्यूनतिन्यून होते गए। बल्कि कहें कि इनका लोप-प्राय हो गया। संयोगवश इन विचारों का विकास यूरोप में हुआ। विज्ञान ने इन्हें प्रामाणिकता दी तथा राष्ट्रों की सीमाएं लांघकर ये विचार सम्पूर्ण विश्व में बढ़ गए।

यूरोप में इन विचारों के विकास में जिन-जिन विद्वानों की भूमिकाएं रही थीं उनके योगदान के बारे में हम यहाँ संक्षेप में जानकारी प्राप्त करेंगे। वे सभी विद्वान गिजुभाई के पुरोगामी थे।

जॉन लॉक (1932-1904)

पुरोगामियों में सबसे पहले आते हैं अंग्रेज शिक्षाविद जॉन लॉक। गिजुभाई ने विहगावलोकन करते हुए लिखा है कि 'जॉन लॉक में मोंटेसरी के महानद का एक लघु प्रवाह प्रवहमान है। कोंडिलेक तथा पेरेरा ने उस प्रवाह को विराटता प्रदान करके नाले की प्रतिष्ठा दी है। रूसो ने तो नदी ही प्रवाहित कर दी थी। उससे दो धाराएं बह निकलीं—एक ओर तो पेस्टोलाजी तथा फ्रोबेल भ्रमण को निकल पड़े, दूसरी ओर इटार्ड तथा सेगुइन के प्रवाह इनमें आ मिले। ये प्रवाह खूब उछले। जोरों से बहे और जोश-खरोश से छलक उठे। इन्हीं के सम्मिलन से आज मोंटेसरी का महानद अक्षुण्ण, अविचल, अद्भुत प्रवाह से शिक्षा-वसुंधरा पर बह रहा है।'[1]

इंग्लैंड में समरसेट इनकी जन्मभूमि। ऑक्सफोर्ड में उच्च शिक्षा के पश्चात् कुछ समय के लिए प्रोफेसर बने। 34 वर्ष की आयु में डाक्टरी की पढ़ाई की। लेकिन यह पढ़ाई पूरी न हो सकी। तदुपरान्त लार्ड एस्वी के निजी मंत्री बने। वर्षों तक काम किया। साथ ही साथ अपने मालिक के पुत्र व पौत्र की पढ़ाई की देखभाल भी करने लगे। इस अनुभव तथा अपने स्वाध्याय के परिणामस्वरूप इन्होंने दो पुस्तकें प्रकाशित कीं, जिनमें उनके शिक्षा विषयक विचार संकलित हैं। गिजुभाई ने लिखा है कि 'एक अध्यापक और एक डॉक्टर का सुन्दर सुयोग लॉक में विद्यमान है।'[2]

लॉक की मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति शरीर व मन से हर दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता हैं अतः बालकों की पढ़ाई व्यक्तिगत होनी चाहिए, समूहगत नहीं। अपने काल की समूह शिक्षण-पद्धति (आज भी प्रचलित) पर इन्होंने कसकर प्रहार किये हैं। आगे कहते हैं वे कि पाठ्य वस्तु सीखने वाले छात्र अथवा व्यक्ति के अनुकूल होनी चाहिए। जॉन लॉक बालक को शिक्षा के केन्द्र में

1. मोंटेसरी पद्धति : गिजुभाई
2. वही

महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं।

बालक को स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए, इस पर भी उनका बल है। वे लिखते हैं कि कोई काम आपको तो पसन्द है पर बालक को वह पसन्द नहीं आता अथवा उसके प्रति बालक अपना सम्मान व्यक्त नहीं करता तो वह उससे मत करवाओ। बड़ा आदमी भी बिना वजह कोई काम करेगा—संगीत या स्वाध्याय में रुचि के बावजूद यदि उससे अनिच्छापूर्वक जबरन ये काम करवाये जायेंगे तो वह थक जायेगा और उसकी तमाम कोशिशें निरर्थक जायेंगी। यह बात छोटे बच्चों पर लागू होती है। बच्चों में काम का एक वक्त—एक मौसम आता है। उस समय में वे सहजतापूर्वक काम कर सकते हैं। शिक्षक यदि उन क्षणों की पहचान कर सके तो सारी परेशानी मिट जाए। उसका बहुत सा वक्त और उकता देने वाली मेहनत बढ़ जाए। बच्चे की स्वेच्छया सीखने की जब रुचि न हो तब उसे सिखाने में जितना समय और परिश्रम लगता है उससे आधे समय और आधे परिश्रम में वह तीन गुना ज्यादा सीख सकता है जिस समय कि वह लहर में होता है। यदि शिक्षक अनुकूल परिस्थिति की रचना करने में निपुण है तो खेल में जितना आनन्द बच्चे को आता हैं उतना ही पढ़ने में भी उसे आए। बच्चे को स्वतंत्रता देकर हम उसके दोषों, कमियों तथा उसकी मानसिक गतिविधियों को जान सकते हैं। उन पर किसी की देख रेख है इस बात से जब वे बेखबर होते हैं तभी उनका सम्पूर्णतया विकास होता है। इस प्रक्रिया द्वारा शिक्षक उन्हें पहचान लेता है तथा जैसा चाहे वैसा उन्हें गढ़ सकता है।[1]

उक्त अन्तिम वाक्य के सम्बन्ध में गिजुभाई लिखते हैं कि 'ये अन्तिम शब्द हालाँकि वर्तमान स्वतंत्रता की फिलोसफी पर पानी फेरते प्रतीत होते हैं फिर भी निःसन्देह जॉन लॉक के विचारों में स्वतंत्रता के सिद्धान्तों का मूल विद्यमान है।[2]

इन्द्रिय शिक्षण के सम्बन्ध में इनके विचार बहुत स्पष्ट नहीं है। कहा जाता है कि इग्लैंड और उसके आसपास के देशों पर जॉन लॉक का पर्याप्त प्रभाव था।

कोंडिलेक (1715-1780)

दूसरे शिक्षाविद हैं फ्रांस के कोंडिलेक। इनके विचारों पर जॉन लॉक का प्रभाव था। 'जागतिक सम्पर्क में इन्द्रियों के अनुभव' शीर्षक एक पुस्तक इन्होंने प्रकाशित की थी। इनके विचारों के बारे में गिजुभाई लिखते हैं कि कोंडिलेक इन्द्रियों के अनुभवों को मानसिक व्यापार की बुनियाद मानते हैं। फिर भी क्या उनकी दृष्टि में इन्द्रिय शिक्षा का अर्थ आज वाला ही होगा ऐसा नहीं कहा

1. मोंटेसरी पद्धति : गिजुभाई
2. वही

जा सकता। बल्कि वे तो कहते थे कि इन्द्रियों को विशेष शिक्षा की जरूरत नहीं है। बाल्यावस्था में ही इन्द्रियों को सूझ-बूझ के साथ प्रयोग में लाने की आवश्यकता पड़ती है फिर तो इन्द्रियों का विकास स्वाभाविक रूप से होने लगता है। कोंडिलेक इन्द्रियों की शिक्षा पर ध्यान देने की बजाय अवलोकन शक्ति तथा तुलना शक्ति विकसित करने पर बल देते हैं। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से इन्होंने इन्द्रियों की शिक्षा का कुछ भी कार्य नहीं किया था फिर भी बौद्धिक शिक्षण में इन्द्रिय शिक्षण का महत्वपूर्ण स्थान है—ये विचार रूसो मे अवतीर्ण हुए. इसी में कोंडिलेक के विचारों की सार्थकता है।

जेकब पैरेरा (-1780)

अब आते हैं यहूदी शिक्षाविद जेकब पैरेरा। अठारह वर्ष के थे तब एक जन्मजात मूक युवती से इनका परिचय हुआ था। उसके प्रेम ने इनकी जीवन-धारा ही बदल डाली। मूक एवं बधिर लोगों को वाणी देने के प्रयासों में इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। इन्होंने डाक्टरी की पढ़ाई की तथा मूक-बधिरों की स्कूल स्थापित करके अनेक प्रकार के प्रयोग किये। लुई पन्द्रहवें ने इनकी मेधा पर मुग्ध होकर इन्हें वजीफा बांध दिया था। बोर्डो तथा पेरिस इनके कार्य क्षेत्र थे। लंदन की रायल सोसाइटी ने इनके काम की प्रशंसा की तथा इन्हें अपनी फैलोशिप प्रदान की।

इनके विचारों पर टिप्पणी करते हुए गिजुभाई लिखते हैं कि 'पैरेरा ने अपने समकालीन विज्ञानवेत्ताओं को सिद्ध कर बताया कि स्पर्शेन्द्रिय ही मूल इन्द्रिय है तथा शेष सभी इसी के भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं।'

पैरेरा के सिद्धान्तों में से गिजुभाई ने निम्न विचारों को उल्लेखनीय माना है :

1. प्रत्येक विशिष्ट इन्द्रिय तथा सभी इन्द्रियां बालक की शिक्षा तथा विकास में सक्षम है। विकास के परिणामस्वरूप इनकी शक्ति को कई प्रकार से अनन्त किया जा सकता है।

2. गंभीर विचार तथा तुलना आदि मानसिक व्यापार इन्द्रियगम्य हैं, अनुभव जनित भी हैं।

3. इन्द्रियगम्य अनुभव(संवेदना)की शक्ति को बढ़ाने में ही मानसिक विकास का मूल विद्यमान है।

पैरेरा के विचारों ने रूसो को भी अधिक प्रभावित किया था।

रूसो (1712—1780)

जीन जेक्स रूसो अठारहवीं सदी के यशस्वी शिक्षाविद थे। उनके पिता घड़ीसाज थे। माता उनके शैशव में ही चल बसी थी। बचपन में किसी ने उनकी सार-संभाल नहीं की थी। कुछ तिरस्कृत-सी जिन्दगी जीनी पड़ी थी उन्हें। इसी से घुमंतू जिन्दगी हो गई थी उनकी।

घूमते फिरते वे पैरिस जा पहुंचे। वहां के जन-जीवन में उन्हें दंभ, खोखलापन, दुख, बनावट वितंडावाद आदि दिखाई दिये। धार्मिक संस्थाओं में ठगी थी और राज्यसत्ता निरंकुश बन गयी थी। शिक्षण संस्थाओं में जड़ता व रूढ़ियां व्याप्त थी। गुस्से में रूसो बोल पड़े—"इस संस्कृति को समंदर में फेंक देना चाहिए।"

इस परिस्थिति का निदान ढूंढ़ते हुए उन्होंने कहा कि जितना ज्यादा हम प्रकृति से दूर चले गये हैं: प्रकृति से विमुख हो गये हैं, उतना ही ज्यादा हमारा पतन हुआ है।

उनके ग्रंथ 'एमील' में उनके शैक्षणिक विचार समाहित हैं। 'स्वतन्त्रता मनुष्य का लक्षण है अतः शिक्षा में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि जिससे स्वतन्त्र वातावरण में मनुष्य अपना निजी विकास सहजता के साथ कर सके तथा जीवन के चाहे जैसे अटपटे बाह्य संयोगों में मात्र स्व-वृत्ति के आधार पर अपना जीवन चला सकें।[1]

गिजुभाई लिखते हैं कि 'रूसो ने शिक्षा के पुराने किलों को स्वतन्त्रता की इस विचारधारा से हिला डाला। उनके विचार अस्पष्ट थे तथापि वे प्रबल प्रपात की भांति बहे। पुरानी रूढ़ियों को तोड़-फोड़कर उन्होंने मैदान बनाया तथा स्वतन्त्रता की इमारत गढ़ने के लिए भूमिका तैयार की।'[2]

इन्द्रिय-शिक्षण के बारे में रूसो लिखते हैं कि 'बाहरी जगत का ज्ञान मनुष्य इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त करता है अतः बाहरी जगत से सम्पर्क के लिए तथा उससे भरपूर लाभ प्राप्त करने के लिए मनुष्य को इन्द्रिय शिक्षा लेनी चाहिए। इन्द्रियों के अनुभवों द्वारा ही बुद्धि के क्षेत्र का अनावरण होता है। ज्ञान के मुख्य हाथ-पांव तो हमारी इन्द्रियां ही हैं। सोचने की विधि सीखने के लिए मनुष्य को अपनी इन्द्रियों का उपयोग करना सीखना चाहिए।' इस सम्बन्ध में गिजुभाई लिखते हैं कि 'मोंटेसरी के इन्द्रिय शिक्षण में संस्कारिता अथवा सूक्ष्मता का जो विचार है, वह रूसो में अस्पष्ट है।'[3]

तथापि हमें स्वीकारना पड़ेगा कि बाल-स्वातन्त्र्य, बाल केन्द्रित शिक्षा तथा स्व-शिक्षण के क्षेत्र में रूसो का योगदान अत्यन्त प्रभावपूर्ण तथा महत्त्वपूर्ण है।

पेस्टोलोजी

पेस्टोलोजी रूसो के नामांकित शिष्य थे। निरंकुशता, दबाव तथा शाब्दिक ज्ञान वाली पुरानी शिक्षा को वे नकारते हैं, निंदनीय मानते हैं। बालकों को

---

1. मोंटेसरी पद्धति
2. वही
3. वही

आजादी के साथ काम करने देना, उनकी गतिविधियों में अवरोध न डालना, दबाव एवं एकरसता को शिक्षा से बहिष्कृत करना तथा शिक्षा में प्रेम को प्रतिष्ठापित करना—ये उनके प्रमुख सिद्धान्त थे ।

डॉ. मणिभाई पटेल लिखते हैं कि 'पेस्टोलोजी के अनुसार शिक्षा का अभिप्राय था व्यक्ति का मानसिक, नैतिक व शारीरिक सर्वांग विकास । यह तभी सम्भव है जबकि शैक्षिक प्रवृत्ति प्रत्येक अवस्था में विकास कार्य करने की सहज इच्छा से प्रारम्भ की हुई हो । उन्होंने इन्द्रियों के संवेदन द्वारा भौतिक जगत के अध्ययन-अवलोकन को भी विद्यालय की एक प्रवृत्ति बनाया था ।'[1]

उन्होंने स्टेंज, बर्गडोर्फ तथा यर्डुन इंस्टीट्यूट में वर्षों तक शिक्षा के प्रयोग करके अपने विचारों का निर्धारण किया था । पहले-पहल इन्होंने ही ध्यान खींचा था कि बालकों को निरी स्वतन्त्रता न दी जाए । उनकी स्वतन्त्रता पर सामाजिक नियन्त्रण रखना अनिवार्य है ।

फ्रोबेल

पेस्टोलोजी के बाद आते हैं फ्रोबेल । इनकी बालवाड़ी को जर्मनी के अध्यापक एक 'चोंचला' ही मानते थे । सरकार भी कड़ी नजरों से इनके प्रयोग को देखती थी । वहां की सरकार ने इनके 'धूतक' को अधिक लम्बा नहीं चलने दिया । शिक्षा के क्षेत्र में 'किंडरगार्टन' पद्धति इन्हीं का योगदान है ।

इनके विचारों की समीक्षा करते हुये गिजुभाई ने लिखा है कि '···तात्त्विक दृष्टि से फ्रोबेल की पद्धति बाल-स्वभाव के सिद्धान्तों पर रची गई थी, तथापि इसे स्वातन्त्र्य भावना की पद्धति के रूप में स्वीकार करना गलत होगा । जिस वस्तु ने फ्रोबेल को इस नई पद्धति की प्रेरणा दी थी, उसी के कारण इसमें रेखागणितीय दुरूहता आ गई है । बहुत दिमाग लगाकर कितनी ही चीजें—गेंद, घन, नलाकार, त्रिभुज आदि से सम्बन्धित खेल इन्होंने ईजाद किये । साथ ही बाल-उद्योगों की योजना बनाकर भी बाल-शिक्षण में नया अध्याय जोड़ा था । लेकिन इन चीजों का उपयोग करने में फ्रोबेल ने बच्चों की स्वतन्त्र क्रिया-शीलता पर रोक लगाकर उनके चयन की स्वतंत्रता उनसे छीन ली । बच्चों से प्रवृत्ति कराने के बजाय सारे ही समय अध्यापक स्वयं प्रवृत्ति करने लगे । किंडरगार्टन में जहां वस्तुत: बालक को एक पौधे की तरह कुदरती नियमों से स्वत: विकास की व्यवस्था होनी चाहिए थी, वहां वह तो न जाने कहाँ पड़ा रहा और बदले में इस तथाकथित 'किंडरगार्टन' (बालवाड़ी) में कठोर नियमों की वजह से क्रिया शक्ति पर अंकुश लग गया ।'[2]

---

1. महात्मा गांधीनी केलवणीनी फिलसूफी : म० शि० पटेल
2. 'दक्षिणामूर्ति' पत्रिका, 1926—'रूसो से मोंटेसरी' लेख : गिजुभाई

इटार्ड (1775)

अब आते हैं फ्रेंच शिक्षाविद इटार्ड, जिनकी चर्चा हमें विशेष रूप से करनी चाहिए । फ्रांसीसी क्रान्ति के दिनों में वे फौजी अस्पताल में सहायक सर्जन थे । वहां से वे गूंगे-बहरों के विद्यालय में काम करने जाते थे । उस शताब्दी में गूंगे बहरों के शिक्षकों तथा डाक्टरों का ही शिक्षा क्षेत्र में विशेष योगदान रहा है ।

इटार्ड को 10-12 वर्षों का टारजन जैसा एक लड़का मिल गया था, जो जंगल में मानवीय सम्पर्क के बगैर पला था । उसकी चेष्टायें बिल्कुल जानवरों जैसी ही थीं । इटार्ड ने बड़े ही धैर्य के साथ उस लड़के को शिक्षा दी तथा अपने जैसा ही इंसान बनाने का प्रयत्न किया ।

इटार्ड ने सचमुच बहुत श्रम किया । लेकिन उस बालक को शिक्षा देने में उन्हें वांछानुरूप सफलता नहीं मिल पाई । इटार्ड की यह संघर्ष गाथा प्रेरक व पठनीय है । इसके द्वारा शिक्षा के अनेकानेक प्रयोगों तथा प्रयासों की हमें जानकारी मिलती है ।

गिजुभाई ने लिखा है कि 'इटार्ड के उक्त प्रयोगों में मोंटेसरी पद्धति के इन्द्रिय-शिक्षण में व्यवहार्य छह खानों वाली रेखागणितीय आकृति का मूल रूप विद्यमान है । समता द्वारा सिखाने का सारा सिद्धान्त मोंटेसरी ने इटार्ड से ही ग्रहण किया है । मोंटेसरी अपने प्रयोगों में जो धैर्य की मांग करती है, वस्तुत: वह इटार्ड की मांग है । प्रयोगधर्मी व्यक्ति कभी थकता नहीं । एक बारगी तो वह जंगली के पीछे जंगली ही बन जाएगा । वह लड़का जब पेरिस की गलियों में दौड़ता था तो इटार्ड उसके पीछे-पीछे भागता था । उसने उसे बांध कर नहीं रखा । अपने उद्देश्य के लिए सब कुछ दांव पर लगा देने की इटार्ड की यह भावना ही मोंटेसरी की प्रथम गुरु है । मोंटेसरी पद्धति में जो अवलोकन की महत्ता है तथा बालकों को देखकर उनके अनुरूप शिक्षा देने की जो व्यवस्था है, वह इटार्ड के प्रयोगों द्वारा ही प्रसूत निष्कर्ष है ।[1]

गिजुभाई लिखते हैं कि 'जो ज्ञान मंदबुद्धि बालकों को शिक्षा द्वारा देना सम्भव है, वह ज्ञान औसत बुद्धि के बालकों को स्व-शिक्षण द्वारा दिया जा सकता है—यह सिद्धान्त इटार्ड तथा सेगुइन के प्रयत्नों का आभारी है । ये दोनों विद्वान न हुए होते तो इसका (मोंटेसरी पद्धति का) इतनी जल्दी जन्म भी न हुआ होता ।[2]

सेगुइन (1812)

ये भी फ्रांस के ही शिक्षाविद है, इटार्ड के शिष्य । जड़-बुद्धि छात्रों के उद्धार हेतु जीवन समर्पित कर देने की प्रेरणा इन्हें अपने गुरु से मिली थी ।

---

1. मोंटेसरी पद्धति : गिजुभाई
2. वही

एक जड़-बुद्धि छात्र पर इन्होंने अपने प्रयोग आजमाये थे। उसमें सफलता मिलने पर इन्होंने मूढ़ बालकों के लिए एक स्कूल खोल दिया। इनका काम खूब विकसित हुआ। लेकिन 1848 के फ्रेंच विप्लव के कारण इन्हें अमेरिका जाना पड़ा। वहां भी उन्होंने अपना काम जारी रखा।

सेगुइन प्रत्येक बालक के व्यक्तित्व को पृथकतया सम्मान देते हैं। मनुष्य मनुष्यता प्राप्त करे, इसके लिए उसे शरीर मन एवं क्रिया शक्ति विकसित करने वाली उत्तम शिक्षा दी जानी चाहिए। अकेली मानसिक शिक्षा शरीर एवं क्रिया शक्ति का ह्रास ही करती है। बालकों की शारीरिक मानसिक अथवा अन्यान्य शक्ति पर व्यक्तिगत दृष्टि से विचार किये बिना नुस्खे की भाँति पढ़ाई की बातें गले उतारने की प्रवृत्ति की सेगुइन निन्दा करते हैं। इन्द्रिय-शिक्षण पर बौद्धिक तथा अन्य प्रकार की शिक्षा का भवन निर्मित करने का श्रेय सेगुइन को मिलना चाहिए। इन्होंने मूढ़ बालकों के लिए जो योजना तैयार की थी उसे मोंटेसरी ने औसत छात्रों के स्व-शिक्षण में प्रयुक्त किया। मूढ़ बालकों में जो क्रिया तन्तु मंद अथवा मृत प्राय होते हैं वस्तुत: उन्हें क्रियाशील अथवा जीवंत बनाना पड़ता है जबकि औसत बालकों में इन क्रिया तन्तुओं को मात्र सन्तुलित रूप से क्रियाशील रखते हुए सिखाने का काम करना होता है।

बालकों में विश्वास रखते हुए उनके विकास के लिए वांछित वातावरण तैयार करने का सिद्धान्त भी मोंटेसरी ने सेगुइन से ही ग्रहण किया प्रतीत होता है।

टालस्टाय

करुणा भाव से ओतप्रोत महर्षि टालस्टाय को भी हमें शिक्षण-प्रक्रिया में स्मरण रखना चाहिए उन्होंने अपने जमाने की शिक्षा के रोग, इनके लक्षण तथा उनसे मुक्त होने का मार्ग बताया था।

टालस्टाय लिखते है : घर में या गली में खेलते हुए बच्चे को अगर आप देखें तो वह सचेतन, आनन्दमय, जिज्ञासाकुल, आंखों में चमक व ओठों पर मुस्कान युक्त दिखाई देगा। वही बच्चा विद्यालय में थका-थका, एकाकी, डरा-डरा, उकताया हुआ, निष्क्रिय-सा, जिसकी आत्मा किसी गहरे कुएं में उतर गयी हो, ऐसा दिखाई देगा। इतना विचित्र दुखद परिवर्तन कैसे आ जाता है ? बालक विद्यालय में भर्ती क्या होता है, उसकी कल्पना शक्ति, सर्जन शक्ति, अन्तः स्फूर्ति आदि तमाम उच्च शक्तियाँ क्रमश: एक के बाद एक विदा होने लगती हैं। विद्यालय उसे एक कसाईघर लगने लगता है। यहीं पर उसके जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व—स्वच्छंदता पूर्वक विचरण का आनन्द—उससे जबरन छीन लिया जाता है। विद्यालय उसकी बौद्धिक शक्तियों को विकृत कर देता है। यही नहीं, घंटों-घंटों तक विद्यालय में उसे कैद रखकर प्रकृति ने उसके विकास हेतु जो उपकारक तत्व प्रदान किए थे वे सब हथिया लिये जाते हैं। इस प्रकार बालक के शरीर व मन को ऐसा क्षतिग्रस्त किया जाता है कि जिसे कभी पूरा नहीं किया जा सकता।

आज की प्रश्नोत्तरी पद्धति को धिक्कारते हुए टालस्टाय लिखते हैं कि "पदार्थ पाठ कृत्रिम है। इनका उद्देश्य सवाल-जवाब द्वारा उन निष्कर्षों एवं व्याख्याओं तक ले जाना है, जो शिक्षक ने पहले से ही निर्धारित कर रखी हैं। इनका परिणाम बालकों की निसर्ग-शक्ति का ह्रास ही है।'

नया मार्ग सुझाते हुए टालस्टाय लिखते हैं कि 'बाल सम्मान को बुनियादी तत्व मानते हुए उसकी स्वतंत्रता की दिशा में ठोस व स्थाई कदम उठाने की आज शालाओं को जरूरत हैं। स्वतंत्रता प्रयोगों का प्राण है। जिस दिन प्रत्येक शाला शिक्षण की प्रयोगशाला बन जायेगी उस दिन शालाएँ प्रगति की दौड़ में पीछे नहीं रहेंगी। मनोविनोद व आनन्द को शिक्षण का विरोधी माना भयंकर भूल है। जहां स्वतंत्रता है, वहीं प्रेम भी है। स्वाभाविक विकास ही मूल बात है। कोई न कोई आगे आए तथा बुनियाद से शुरू करके नव निर्माण का प्रयोग करे।'

गिजुभाई ने लिखा है 'टालस्टाय ने अपने इन विचारों के क्रियान्वयन हेतु अविश्रांत जहमत उठाई है पर उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली। जहां-जहां उनकी प्रबल व मौलिक प्रतिभा की छाप नहीं लग सकी वहां वहां परिणाम कमजोर रहे।

मोंटेसरी

मेरिया मोंटेसरी को तो गिजुभाई की जीवनधारा बदलने वाली प्रमुख प्रेरक शक्ति ही कहना चाहिए। उनका परिचय देते हुए स्वयं गिजुभाई लिखते हैं : 'डा. मोंटेसरी में मानववंशशास्त्री, शरीरशास्त्री, मानसशास्त्री, तत्ववेत्ता' तथा शिक्षाशास्त्री—इन सबों के एक साथ दर्शन हो जाते हैं। बालकों तथा बाल-मस्तिष्कों ये विशेषज्ञा हैं। स्वयं अविवाहिता, फिर भी माताओं की माता। बाल-स्वतंत्र्य की युग प्रवर्त्तक तथा जड़वाद व पराधीनता की बेड़ियों से मानव-जाति के उद्धार के प्रारंभिक प्रयत्न करने वाली डॉ० मोंटेसरी ही है'[1]

गिजुभाई के मित्र श्री जुगतराम दवे के विचार भी जानने योग्य हैं :'मोंटेसरी की मूल भावना को मैंने बाल मन्दिर में देखा तभी से उसका उच्च मूल्यांकन किया, लेकिन जब से उनके दीन दयार्द्र अन्तःकरण की पहचान हुई तब से तो मेरे मन में उसका मूल अमूल्य ही बन गया। उनकी पद्धति का मर्म, जैसा मैंने सोचा समझा था उससे भी लाख गुना गहरा निकला। मर्म-रूपी इस निर्झर का उद्गम क्या स्वतंत्रता में है ? नहीं, इससे भी गहले जाइये।—बाल वात्सल्य में है ? नहीं, और गहरे सोचिये।—इन्द्रिय-शिक्षण द्वारा सिद्ध जन-

---

1. मोंटेसरी पद्धति : गिजुभाई

शिक्षण में ? नहीं, अभी और गहरे जाइये। इसका मूल तो ठेठ दरिद्रनारायण की सेवा तक पहुँचता है।'

'मोंटेसरी ने अपनी शाला को बालकों का घर क्यों कहा ? इसका मर्म भी अब समझ में आया है। उसने बालकों के भवन नहीं बनाये बालकों के मन्दिर भी नहीं बनाये। कारण यह कि बालकों के लिए स्वच्छ वातावरण वाले तथा माँ की ऊष्मा से युक्त घर ही उनका अभीष्ट है।'[1]

मंदबुद्धि बालकों पर किये शिक्षा सम्बन्धी प्रयोगों के अत्यन्त उत्साहजनक परिणाम मिलने पर सामान्य बालकों पर भी इन्होंने वे प्रयोग किये। उन्हीं से मोंटेसरी पद्धति हमें प्राप्त होती है।

स्वतंत्रता, स्व-स्फुरण, स्व-शिक्षण तथा स्वयं मूल-सुधार—ये चार चीजें इनकी शिक्षण पद्धति में केन्द्रीय स्थान पर हैं। बालकों को अगर इच्छित प्रवृत्तियां मिल जायें तो उनमें आंतरिक व बाह्य आत्मानुशासन आ जाता है। बच्चों के बौद्धिक व भावनात्मक विकास के लिए वे इन्द्रिय-शिक्षण पर बल देती हैं। इसीलिए वे चाहती हैं कि इन्द्रियां सूक्ष्म संवेदनशील बनें। ध्यान की क्रीडाएँ, जीवन व्यवहार की प्रवृत्तियां—ये इस पद्धति के उल्लेखनीय विषय हैं। शिक्षक का स्थान मार्गदर्शक के रूप में ही है, हाथ पकड़कर बालक का काम शुरू कराने या दखल देने जैसा नहीं है। शिक्षक का काम निरंतर सूक्ष्म अवलोकन करने का है, बालक के विकास हेतु सदैव वांछित पोषक-वातावरण रचते रहने का है। भाषा, गणित, चित्रकला, संगीत, प्रकृति ज्ञान आदि बातें इनकी पद्धति में समाहित है—अपनी निजी मौलिकता के साथ। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि प्रत्येक बात में अत्यन्त बारीकी से इन्होंने मार्ग निकाल कर अपनी पद्धति सही और व्यवस्थित बताई है।

गिजुभाई लिखते हैं कि 'मोंटेसरी पद्धति मात्र शिक्षण पद्धति ही नहीं है। यह एक प्रकाश है। यह नया प्रकाश सम्पूर्ण जीवन को प्रकाशित करके चारों ओर किरणें फेंकता है; शिक्षा में नई पद्धति स्थापित करता है; उसे नया आदर्श प्रदान करता है; शिक्षक के दर्जे में क्रांति लाता है; समाज की नये सिरे से पुनर्रचना करता है; मनोविज्ञान में नया दृष्टिकोण उपस्थित करता है; व्यक्ति-व्यक्ति, समाज-समाज तथा राष्ट्र-राष्ट्र के बीच सम्बन्धों को नई शृंखलाओं से जोड़ता है; तथा मानवीय शक्ति एवं चारित्र्य की सफलता का नया मूल्यांकन करता है।[2]

ए. एस. नील

गिजुभाई के पुरोगामियों में एक और महत्त्वपूर्ण विभूति है आइरिश शिक्षाविद् ए. एस. नील। विचारों से इतने क्रांतिकारी, कि कहने की इच्छा होती है कि अपने जमाने से 200-300 वर्ष पहले आ धमके हैं। किसी भी तरह की शिक्षण पद्धति प्रचारित करने के बजाय ये हमें बालकों के साथ व्यवहार करने की अत्यन्त उपादेय विचार-सामग्री प्रदान करते हैं। इनकी मान्यता है कि 'असामाजिक होना व्यक्ति का स्वभाव नहीं है।' इन पर फ्रायड तथा एडलर का प्रभाव है। स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता के बीच का फर्क ये भली-भांति जानते हैं। बच्चों के पूर्ण स्वातंत्र्य के हिमायती हैं। नीति, धर्म तथा आदर्श के नाम पर बच्चों के मन पर पड़ने वाले दबावों का वे कठोरता के साथ विरोध करते हैं। बालक के प्रति उनकी सहानुभूति अपरंपार है। अपने व्यवसाय में असन्तुष्ट वकील अथवा डॉक्टर तैयार करने के बजाय अपने जीवन में सन्तुष्ट चिमनी-स्वीपर तैयार करना वे कहीं अधिक श्रेयष्कर मानते हैं। मानस-पृथक्करण-शास्त्र का महत्व वे बहुत अधिक आंकते हैं। छात्रों की न्याय-पंचायत का उनका प्रयोग अत्यन्त क्रांतिकारी है।

कथा सुनने वाले बालकों को ही कथा के पात्र के रूप में नियुक्त कर देना तथा उनके बीच की आपसी बातचीत से ही तथ्यों को पकड़कर कथा-सूत्र को आगे बढ़ाने के नील के कौशल पर गिजुभाई न्यौछावर थे।[1] और तब एकदम 'रखडुं टोळी' को गुजराती में उतारा।

स्वामी विवेकानन्द

अन्त में हम अपने महान् भारतीय चिंतक तथा सम्पूर्ण देश के निर्माता स्वामी विवेकानन्द के विचारों का विवेचन करें, जिनके क्रान्तिकारी विचार राष्ट्रों की चौहद्दियों तक कभी सीमित नहीं रहे। उनके शैक्षिक विचारों में हमें फ्रोबेल बोलते सुनाई देंगे। वे कहते हैं : 'सच कहूँ तो कोई किसी को सिखाता नहीं, हममें से हरेक स्वयं अपने आप को सिखाता है।'

'किसी वृक्ष के पौधे को उगाने में तुम जितना सहयोग दे सकते हो, उससे जरा भी अधिक मात्रा में तुम किसी बालक को सिखाने में मदद नहीं दे सकते। यह सही है कि तुम उसे अपने निजी ढंग से आगे बढ़ने में मदद कर सकते हो—सीधे तरीके से नहीं, अपरोक्ष रीति से। लेकिन ज्ञान तो उनमें स्वाभाविक रीति से ही आएगा। जमीन को थोड़ा नरम करो ताकि अंकुर को प्रस्फुटित करने में बीज को मदद मिले। उसके चारों ओर बाड़ लगाओ तथा सार-संभाल करो कि कोई नुकसान न पहुँचाए। आवश्यकता के अनुसार हवा, माटी, पानी आदि भरपूर जुटाकर बीज को तुम देह धारण की साधन-सुविधाएँ प्रदान करो। बस वहीं तुम्हारा काम पूरा हो जाता है। बीज को जिस चीज की जितनी जरूरत है, वह स्वतः ले लेगा। बालक स्वयं अपनी

---

1. 'दक्षिणामूर्ति' पत्रिका, 1926 पृष्ठ 452. 'डा० मोंटेसरी की दीव वत्सलता' लेख : जुगतराम दवे
2. बाल शिक्षण मने समजाय, लेख : गिजुभाई

1. हालतां चालतां : गिजुभाई

शिक्षा करता है।'

'विद्यार्थी की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षण में परिवर्तन होना चाहिए। और स्वाधीनता—यह तो विकास की प्राथमिक शर्त हैं। जोर-जबरदस्ती से सुधारने की तमाम चेष्टाओं के परिणाम हमेशा सुधार को पीछे की ओर धकेलने वाले ही होते हैं।'[1]

है न, महर्षि की आर्ष दृष्टि!

मानवता की महान् सिद्धि

प्रसिद्ध मनोविज्ञानविद् श्री मूलशंकर भट्ट की पुस्तक से एक उद्धरण लेकर मैं इस प्रकरण को यहीं समाप्त करता हूँ:

'कितनी ही शताब्दियों से बालक जो मानसिक यातनाएँ झेल रहे थे, उस ओर दृष्टि विलम्ब से गई। लेकिन अन्ततः दृष्टि का उस ओर जाना ही मानवता की एक महान् सिद्धि है। रूसो, पैस्टोलोजी फ्रोबेल, डॉ. मोंटेसरी तथा हमारे यहां के गिजुभाई जैसी अनेक जानी-मानी या अजानी विभूतियों के प्रताप से आज बालक के व्यक्तित्व को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।'

'नये विचारों के परिणाम स्वरूप बाल-शिक्षण में क्रांतिकारी परिवर्तन होने लगे है। उनकी वजह से आज विश्व के समृद्ध राष्ट्रों में (हमारे देश में भी कहीं-कहीं पर) नर्सरी शालाएँ, तथा बाल मंदिर चलते देखते हैं तो पल भर को हमारा चित्त गद्‌गद होकर आनन्दाश्रु बहाने लगता है। कहां तो शाला का नाम लेते ही अथवा अध्यापकों को दूर से देखते ही कांप उठने वाले बालकों का वह युग था, और कहाँ नर्सरी-शाला में पक्षियों के समूह की भांति कलरव करते खेलते-कूदते बालकों का यह युग है!'[2]

1. शिक्षा : विवेकानन्द
2. घरमां बाल मन्दिर : मू. मो. भट्ट 'परिचय पुस्तिका 87'

3
तत्कालीन शिक्षा : एक परिदृश्य

आने वाले कल के बालक
बीते हुए समय के
क्रूरतापूर्ण सफे पढ़कर
जान जायेंगे
कि प्यार, निस्पृह प्यार
एक जुर्म समझा जाता था!

—विलियम ब्लेक

किसी भी घटना को सम्यक् रीति से जानने के लिए हमें उसकी पृष्ठ-भूमि पर दृष्टिपात करना पड़ता है। इसे जाने बगैर आगे बढ़ने का अर्थ यह होगा कि हम उस घटना विशेष के अन्तःप्रवाहों को भली भाँति समझना नहीं चाहते। यह जानकारी उसके महत्त्व एवं मूल्य को यथातथ्य आंकने में सहायक है।

आज जब कि हम गिजुभाई के विचारों तथा उनके कार्यों को समझने और उनका मूल्यांकन करने को उद्यत हुए हैं, हमें उस काल की शैक्षिक परि-स्थिति का चित्र भी देखना होगा। उसे देखने के बाद ही हम उनके विचारों व कार्यों को जानेंगे, तभी उनका मूल्य व महत्त्व सहजतया समझा जा सकेगा। जिस युग का शैक्षिक चित्र हमें देखना है, वह है उन्नीसवीं सदी का अन्तिम दशक तथा बीसवीं सदी का प्रथम दशक।

इस चित्र पर दृष्टिपात करते समय विश्व के विस्तृत फलक पर मैं प्रमुख-तया तीन स्थलों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करूंगा। पहले-पहल पश्चिमी देशों पर; फिर अपने ही देश भारत पर; और अन्त में अपने घर-आंगन गुजरात राज्य पर। दक्षिण अमेरिका, सम्पूर्ण अफ्रीका, एशिया के देश, तथा आस्ट्रेलिया—इन देशों का चित्र कुछ अंशों तक तिमिराच्छन्न प्रतीत होता है। इनमें से कहीं-कहीं स्थानीय स्तर पर अथवा व्यक्तिगत स्तर पर कुछ कार्य अवश्य हुए हैं, लेकिन उसके बारे में ब्यौरेवार ज़ानकारी प्राप्त करना असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य है।

यूरोप : पश्चिमी संसार

अठारहवीं सदी में यूरोप के देशों में स्वाधीनता तथा प्रजातन्त्र की हवा

जोरों पर थी। साथ ही प्रपीड़ितों एवं पद दलितों के प्रति लोगों के दिलों में करुणा का प्रवाह बह रहा था। आजादी, तथा उत्पीड़ित जनों के प्रति करुणा —ये दोनों ऐसे मूल मनोभाव थे जो मानव समुदाय को आंदोलित-मथित कर रहे थे। गुलामों की मुक्ति, 'ला मिजरेबल' का प्रकाशन, रूसी क्रान्ति की पूर्व तैयारी—सर्वत्र ये दोनों शक्तियां क्रियमाण थीं।

यूरोप के शैक्षिक वातावरण में आज भी ये शक्तियां नियामक भूमिका निभा रही हैं, मेरे इस अवलोकन के अनुमोदन में विश्वविख्यात चिंतक एरिक फ्रॉम की ये पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं :

'प्रगतिशील विचारकों ने 18वीं सदी में स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र तथा स्व-निर्णय के विचारों की घोषणा की थी, और 19वीं सदी के पहले पचास वर्षों में जाकर वह शिक्षा-क्षेत्र में पल्लवित-फलित हुई। आत्म-निर्णय के बुनियादी सिद्धांत का अर्थ था सत्ता के स्थान पर स्वतन्त्रता को व्यवहार में लाना तथा बालकों को बिना दण्ड दिये पढ़ाना, बल्कि उनकी जिज्ञासा और स्वाभाविक जरूरतों को महत्ता देना और इस प्रकार बालकों को उनके चारों ओर विद्यमान दुनिया के प्रति रुचिशील बनाना। इसी विचारधारा से प्रगतिशील शिक्षा का परिचय मिलता है। मानव-विकास में इसे एक महत्त्वपूर्ण कदम कहना चाहिए।'[1]

बींसवीं सदी के प्रारम्भिक काल पर दृष्टिपात करें तो पुराने विचारों के विशाल शिलाखण्डों के मध्य हमें नये सिद्धांतों की नई शिक्षा का नन्हा-सा झरना बहता दिखाई देता है। इसका मार्ग सपाट मैदानी नहीं था। उस काल में प्रसिद्ध शिक्षाविद् फ्रॉबेल तथा पेस्टोलोजी को किसी ने चैनपूर्वक काम नहीं करने दिया था। नील की प्रगतिशील शाला को भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकना पड़ा था।

इन समस्त प्रतिकूलताओं के बावजूद नई शिक्षा का झरना बह निकला। उसमें तो कोई शक था भी नहीं। एक तरफ तो रूसो, हर्बार्ट, पेस्टोलोजी, तथा फ्रोबेल बालकों के लिए नवीन कार्य-पद्धति वाली शिक्षा की भूमिका निर्मित कर रहे थे, तो दूसरी ओर इटार्ड व सेगुइन के प्रयोगों का अध्ययन करके इटली के रोम नगर में गरीबों की बस्ती में बैठी करुणामयी मेरिया मोंटेसरी अपनी नई पद्धति का अनुसंधान कर रही थी। उनकी नई पद्धति को मैसेचुसेटस के डाल्टन ग्राम की मिस हेलन पार्कहर्स्ट ने भी देखा तथा शिक्षा की उस नयी विचारणा को पूर्व प्राथमिक कक्षाओं तक सीमित रखने के बजाय प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा में भी प्रयुक्त करने का निश्चय किया। अपनी शाला को एक स्थान से दूसरे स्थान तक लिये-लिये भटकने वाले नील ने अपने विद्यालय में अन्तर्राष्ट्रीय सह जीवन तथा स्वतन्त्रता के अनेक प्रयोग किये।

1. ए. एस. नील की पुस्तक 'समरहिल, के उपोद्‌घात से।

रूस की क्रूर जारशाही के शासन में महर्षि टालस्टाय ने जीवन की विसंगतियों को देखा तो विक्षुब्ध हो उठे तथा अपने विवेक एवं सामर्थ्य से उन्होंने नये-नये विचारों की नई शिक्षा का प्रादुर्भाव किया। अटलांटिक के उस पार कोलंबिया युनिवर्सिटी में दार्शनिक एवं शिक्षाविद् जॉन ड्यूई भी नये विचारों की ज्योति जगाते दिखाई देते हैं। प्रोजेक्ट पद्धति, स्वनुभव-जनित शिक्षण, तथा शिक्षा में सामाजिकता—ऐसे-ऐसे विचार बिना बेतार संदेश द्वारा अटलांटिक को लांघ कर इस पार सुनाई देने लगे।

परन्तु नये विचारों के आगमन से या कि इन विचारों के आधार पर चलने वाली शालाओं से शिक्षा का ढाँचा सर्वथा बदला नहीं। सन् 60 में एरिक फ्रोम अपनी परेशानी को अत्यन्त संवेदना के साथ हम तक इन शब्दों में सम्प्रेषित कर रहे थे—

'बालकों को सजा दिये बगैर पढ़ाने के विचार को आज बहुत से लोग गलत बताते हुए हटा देने की बात करते हैं। अनुशासन की अधिक से अधिक मांग बढ़ने लगी, बल्कि पब्लिक स्कूलों के अध्यापकों में छात्रों को शारीरिक सजा दिये जाने की मुहिम शुरू होने लगी।'[1]

भारत का चित्र

जिन पश्चिमी देशों के कारण मानवता को नवजागरण के दर्शन हुये थे, वहां का जब यह हाल था तो पराधीनता की जंजीरों में जकड़े भारत का तो कहना ही क्या ? आइये हम अपने देश पर भी दृष्टि दौड़ाएं।

आर्थिक लाभ कमाने की नीयत से यहां पर आई हुई अंग्रेजी हुकूमत की दुर्नीति से भारतवासी बेहाल थे। यह बेहाली सिर्फ आर्थिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं थी। शिक्षा का स्तर निम्न से निम्नतर होता जा रहा था। शिक्षकों की संख्या निरन्तर घटती जा रही थी। जबकि जन शिक्षा का दायित्व पूर्णतः सरकार पर है, इच्छा या अनिच्छा से ऐसा स्वीकारना पड़ता था। लेकिन उनके क्रियान्वयन में अनेक बाधाएं थीं। एफीलियेटिंग यूनिवर्सिटी का ढांचा इंग्लैंड में अनुपयोगी लगा तो उसे वहां एक तरफ रख दिया गया, लेकिन यहां भारत में उसी आधार पर विश्वविद्यालयों की स्थापना की जा रही थीं। सरकारी कर्मचारियों के दिलों में भारतीय जनता के प्रति भी जब सम्मान की भावना नहीं थी तो बालकों के प्रति होने की तो आशा भी नहीं की जा सकती थी।

भारतवासी भी विचारों से अत्यन्त कूपमंडूक थे। तरह-तरह के रीति-रिवाजों की जड़ें अत्यन्त गहराई तक जमी थीं। विदेश में अध्ययन के लिए जाते समय गांधीजी को भी इनकी वजह से कितना सहना पड़ा था। महिलाओं की शिक्षा को लोग अनिवार्य व उपयोगी नहीं मानते थे। अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का बिल लाने के लिए गोखलेजी प्रयत्नशील थे। लेकिन देश के जन-

1. समरहिल : ए. एस. नील, उपोद्‌घात से।

साधारण की उस दिशा में कोई रुचि नहीं थी। प्राथमिक शिक्षा की भी जब यह अपेक्षापूर्ण स्थिति थी तो फिर पूर्व-प्राथमिक की तो क्या स्थिति होगी? तीन से छह वर्ष तक के बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए, इस विचार का लोक में कहीं कोई अस्तित्त्व नहीं था। किसी अंचल विशेष में यदि आवश्यकतावश उसका अस्तित्त्व रहा हो तो पृथक् बात है। जैसे कि राजकुमारों को शिक्षा देना जरूरी हुआ हो।

ऐसे वातावरण में शिक्षा में नये विचारों के आगमन की बात कोई मायने नहीं रखती। लोग-बाग सहजतया स्वीकार करते थे कि बच्चा तो मिट्टी का लोंदा है। हम उसे जैसा आकार देना चाहते हैं, शिक्षा का वैसा ही प्रबन्ध करना चाहिए। इसके अतिरिक्त बालक के प्रति एक और धारणा थी कि बालक तो कोमल पौधा है, उसे जैसा विकसित करना चाहते हैं, वैसा प्रयास छुटपन से ही किया जाना चाहिए।

शिक्षा के केन्द्र में बालक होना चाहिए, यह विचार अभी कोसों दूर था। मारपीट का साम्राज्य सर्वत्र स्वेच्छाचारिता-पूर्वक फैला हुआ था। लोगों की एक और भ्रांत धारणा यह थी कि बालक में समझ-शक्ति एवं विवेक नाम की चीज नहीं होती। किस बात में उसका भला है, वह जान नहीं सकता। उसकी भलाई के लिए हमें ही उसको मार-पीट कर पढ़ाना चाहिए था। पढ़ाई और मनोरंजन के बीच चूहे-बिल्ली वाला सम्बन्ध प्रचलन में था। 'वर्क वाइल यू वर्क एण्ड प्ले वाइल यू प्ले' जैसी कविताएं कंठस्थ कराई जाती थीं। शिक्षण में मात्र एक ही विद्या का उपयोग किया जाता था—कंठस्थ करो—याने घोका। यही महत्त्वपूर्ण शिक्षण विधि थी। शिक्षण-सिद्धान्तों में स्व-अनुभव, स्वाधीनता तथा स्वयं-स्फुरण तो ढूंढ़े भी नहीं मिलते थे।

काले बादल : रुपहली किनार

हम जानते हैं कि काले बादलों के किनारे बहुधा चमकदार होते है। गहन अंधेरी रात में भी तारे जगमगाया करते हैं। वैसे ही पुरानी शिक्षा के सघन अंधकार में हमें कुछ प्रकाशवंत तारे दिखाई दे रहे हैं। उनसे ही नूतन शिक्षा का प्रकाश धरा पर फैलने लगा था।

शिक्षा का एक अभिनव प्रयोग प्रादुर्भूत हुआ पतित पावनी गंगा के तट हरिद्वार में। स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने दो पुत्रों की पढ़ाई से गुरुकुल कांगड़ी में नई शिक्षा का नया प्रयोग प्रारम्भ किया। उन्होंने राष्ट्रीयता, भारतीय संस्कृति संस्कृत भाषा, शारीरिक विकास, आरोग्य आदि विषयों का शिक्षा-व्यवस्था में समावेश किया।

शिक्षा का एक महान प्रयोग चला कलकत्ते के समीप बोलपुर में। शान्ति निकेतन के उस रमणीय पवित्र स्थल में बाल-सम्मान, अध्यात्म, आनन्द-युक्त शिक्षा आदि नई बातें शिक्षा में सम्मिलित की गयीं। राष्ट्रीयता, संस्कार तथा संस्कृति को भी उस शिक्षा में पर्याप्त महत्त्व दिया गया था। बल्कि एक

कदम आगे बढ़कर अन्तर्राष्ट्रीय-सद्भाव का प्रयोग किया गया।

उधर मद्रास के पास अडियार की थियोसोफिकल संस्था में नये-नये शैक्षिक प्रयोग किये जा रहे थे। नये विचारों से समृद्ध डॉ० विश्वेश्वरैया ने अपने मैसूर राज्य में समाज शिक्षा तथा बाल शिक्षा के अद्वितीय प्रयोग किये। मोगा (पंजाब) तथा कलकत्ते में प्रगतिशील संस्थाओं का उदय होना था।

भारतीय शिक्षा के इस नये प्रवाह को सैयद नुरुल्ला तथा जे० पी० नायक ने इस रूप में देखा—

'19वीं सदी के अन्त तक पढ़ाई का पुराना देसी तरीका लगभग पूरी तरह से समाप्त हो गया और उसके स्थान पर अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पश्चिमी ज्ञान को फैलने का एक नया तरीका दृढ़ता से स्थापित हो गया।'

यह बात जल्दी ही स्पष्ट हो गयी। जापान जैसे अन्य राष्ट्रों के एकाएक उदय ने भारतीय जनमानस पर गहरा प्रभाव डाला, विशेषतया रूस-जापान युद्ध के पश्चात्। लोग भारतीय शिक्षा के धीमे व असन्तोषजनक विकास के बारे में प्रश्न पूछने लगे। एक नई भावना जन्म ले रही थी और पिछली पीढ़ी के विपरीत 20वीं शताब्दी के भारतीय लोग अपनी धरती के सांस्कृतिक इतिहास का श्रद्धा के साथ अध्ययन करने लगे। सन् 1914-18 के विश्वयुद्ध से यह बात प्रकट हो गई कि पश्चिमी सभ्यता में मूलभूत कमी है और इस कारण से पश्चिमी आदर्शों की अंधाधुन्ध नकल करने की उपयोगिता से लोग सन्देह-ग्रस्त हो गये। परिणामस्वरूप भारतीयों ने इंग्लैंड की हूबहू नकल का प्रयास छोड़ दिया और अपने देश की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा पद्धति की खोज में लग गये।[1]

गुजरात का शैक्षिक परिदृश्य

उक्त पृष्ठभूमि में जरा अपने गुजरात राज्य की शैक्षिक स्थिति का भी तो जायजा लेकर देखें।

यूरोप से यहाँ पर अनेक मिशनरी नन्हें-मुन्नों की शालाएं शुरू करने का संकल्प लेकर आए थे। बम्बई, पूना लखनऊ आदि शहरों में कहीं-कहीं पर पहले से ही किंडरगार्टन पद्धति की बाल-शालाएं चल रही थीं। लेकिन गुजरात तक उनका कोई प्रभाव पहुंचा नहीं था। पूर्व-प्राथमिक शिक्षा देने का जिम्मा सरकार का है, इस सिद्धान्त के लिए हमें सार्जेण्ट कमेटी[2] की रिपोर्ट आने तक

---

1. ए. हिस्ट्री ऑव एज्युकेशन इन इंडिया : सैयद नुरुल्ला व जे. पी. नायक।
2. **सार्जेण्ट रिपोर्ट** : द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् भारतीय शिक्षा की पुनर्रचना के लिए सिफारिश करते हेतु तत्कालीन अंग्रेजी हुकूमत ने सन् 1944 में एक कमेटी की स्थापना की थी जिसके अध्यक्ष थे भारतीय शिक्षा सलाहकर जोन सार्जेण्ट। इस कमेटी की मुख्य सिफारिशों में से एक यह थी कि उसे 6 वर्ष की आयु के बालकों को पूर्व प्राथमिक शिक्षा देने का दायित्व सरकार का है और वह नर्सरी स्कूलों की व्यवस्था करे। भारत सरकार ने इस अभिशंसा को स्वीकार कर लिया था पर आर्थिक प्रभाव का बहाना बनाकर इसे क्रियान्वित ही नहीं किया।—लेखक।

राह देखनी पड़ी। यद्यपि जरूरी नहीं था कि इस रिपोर्ट का क्रियान्वयन हो ही जाएगा, फिर भी कम से कम एक बात तो स्पष्ट हुई कि 'पूर्व-प्राथमिक शिक्षा देने का दायित्व सरकार का है और वह निःशुल्क दी जानी चाहिए।' यही पर्याप्त था। जन साधारण के दिमाग में तो यह बात आई ही नहीं थी कि व्यक्ति के जीवन में 2 से 6 वर्ष की उम्र का काल जीवन-निर्माण की दृष्टि से कितने महत्त्व का होता है, इसलिए इस उम्र में बालक को उत्तम तथा संस्कार-पूर्ण वातावरण मिले, ऐसे प्रयत्न किये जाने चाहिए।

इसके विपरीत गैर-सरकारी क्षेत्र में कुछ कार्यों के दृष्टान्त सामने आए। महाराज सयाजीराव गायकवाड़ ने पुस्तकालयी आन्दोलन को अत्यन्त तीव्र गति के साथ फैलाया, जिसके परिणामस्वरूप यूरोप-अमेरिका से पुस्तकें मंगवाई गयीं थीं, ताकि लोगों में नये विचारों का सूत्रपात्र हो। स्व० डॉ० मोतीभाई अमीन इस कार्य में अत्यन्त रुचिशील व्यक्ति थे। स्व० दरबार गोपालदास ने अपने बच्चों की पढ़ाई के लिए अपने गाँव वसो में मोंटेसरी पद्धति का बाल मन्दिर खुलवाया। मोंटेसरी की अनेक पुस्तकों का उन्होंने गुजराती भाषा में अनुवाद भी करवाया। बड़ौदा राज्य की तरफ से किंडरगार्टन-साहित्य का अनुवाद कार्य कराया गया। सौराष्ट्र के पूर्व भावनगर जैसे प्रगतिशील राज्य में भी नये शैक्षिक विचारों का प्रकाश पहुंचने लगा। राज्य की प्राथमिक शालाओं में ठेठ यूरोप से मंगा कर फ्रॉबेल के उपहार दिये जाने लगे। हालाँकि गट्टा तथा घन आदि उपकरण शाला के डेड-स्टॉक में चढ़ने के बाद न्यूनाधिक रूप से मात्र अलमारियों की ही शोभा बढ़ाते थे, फिर भी कम से कम इस दिशा में दृष्टि गई तो सही। राजकोट और बड़ौदा राज्य के कुछ स्थानों में किंडरगार्टन पद्धति पर कुछ नया शिक्षण कार्य करने के प्रयास दिखाई दिये।

गिजुभाई द्वारा वर्णित कुछ प्रसंग।

प्राथमिक शाला

यह तो हुआ शिक्षा का बाह्य कलेवर और उसका चित्र। शालाओं के भीतर चल रही बच्चों की पढ़ाई पर भी हमें दृष्टिपात कर लेना चाहिए। इस सन्दर्भ में कितने ही प्रसंगों को स्वयं गिजुभाई की लेखनी ने शब्दबद्ध किया है। उनके आधार पर आइए हम शिक्षा की स्थिति का जाएजा लें।

गिजुभाई के हृदय को झकझोर देने वाला एक चित्र यह है: 'कुछ महीने पहले मैं एक गाँव में जा पहुंचा। छोटे से एक कमरे में एक शिक्षक कोली जाति के लड़कों को पढ़ा रहा था। उसके मुंह में गालियां थीं और हाथों में बीड़ियाँ व जर्दा। गालियां निकालते-निकालते और बीड़ियां फूंकते-फूंकते वह लड़कों को गिनती सिखा रहा था।'

'पूछने पर पता चला कि शिक्षक एक कोस की दूरी से पढ़ाने को आता है। पहले गांव में आटा मांगता है, फिर शाला के पास वाली होटल चलाता है। और मोहल्ले-मोहल्ले जाकर लड़कों को पढ़ाता है।'

'बेचारे गरीब के परिवार में पत्नी और चार बच्चे हैं। उनके भरण-पोषण के लिये उसे ऐसी जिल्लत की जिन्दगी बितानी पड़ती है। उसकी हालत देखी। उसके पढ़ाने की विधि देखी। महीने-महीने एक-एक आना और रोज-रोज चुटकी-चुटकी आटा इकट्ठा करके जीवनयापन का उसका श्रम देखकर मैं तो स्तब्ध रह गया। विचारशून्य तथा कर्त्तव्यविमूढ़ बन गया।'

'अत्यन्त बोझिल हृदय से अवाक्-सा मैं वहां से लौट आया।'

'शिक्षक की यह स्थिति स्वीकारने योग्य नहीं है, तथापि यह एक सत्य घटना है, और त्रासदायी भी। इस तरह के एक नहीं, गरीबी से पीड़ित कई शिक्षक पेट के लिये दर-दर भटक रहे हैं। वे छात्रों की और स्वयं अपनी जिन्दगी को भयंकर रीति से बिगाड़कर बड़ा भारी अपराध कर रहे हैं।'

'समाज को यदि ऐसे नुकसान का ज्ञान होता तो ऐसे शिक्षकों को कब का हटा कर उनके बदले में अच्छे शिक्षक रख लिये होते और इस तरह से चलने वाली पढ़ाई को उन्होंने गुनाह समझा होता।'[1]

इस चित्र को देखकर गिजुभाई की भाँति हमारा भी हृदय अत्यन्त बोझिल हो जाता है।

बालशाला

बिल्कुल छोटे-छोटे बच्चों की शाला का एक वर्णन आइए हम गिजुभाई के ही शब्दों में एक बार फिर से पढ़ें। "इस समय हमारे बाल-विद्यालयों की कितनी बुरी दशा है, यह आप जानते ही हैं। इनके भवन हवा-प्रकाश से रहित हैं। शिक्षकों को मात्र पेट भरने जितना ही मिलता है। इन विद्यालयों के पढ़ाई के विषय, ज्ञान तथा शिक्षण-विधि सम्बन्धी उनके विचार अत्यन्त तुच्छ हैं। समाज में उनकी स्थिति भी बहुत निम्न है। बाल-शाला के बालकों को देखो तो प्रपीड़ित, घुटे-घुटे, डरे हुए, कुचले हुए, गन्दे, निर्जीव, मनुष्य रूप में चेतना रहित प्राणी प्रतीत होते हैं। बालविद्यालयों के पास से निकलो तो जाति के सामूहिक भोजन के वक्त जो असहनीय कोलाहल होता है वैसा वातावरण आपको यहां बराबर दिखेगा। 'बाल-विद्यालय' में जाकर देखें तो हृदय रहित, प्रेमरहित फटेहाल शिक्षक बच्चों की स्वाभाविक जिज्ञासा को दबा देने वाली जटिल शिक्षा देते दिखते हैं। चारों तरफ दृष्टि दौड़ाइए, साहित्य का नाम मुश्किल से ही मिलेगा। एकाध पट्टी, एकाध चॉक का टुकड़ा, डंडा और

1. प्राथमिक शाला में शिक्षक : गिजुभाई। पृष्ठ 4। 70

घंटी—ये ही सब शाला के शिक्षण-साहित्य हैं। बच्चों की पंक्तियां बैठी-बैठी कुछ न कुछ काम करती अवश्य दिखेंगी। ऐसी दशा है हमारे यहां के प्राथमिक विद्यालयों की।"

यह सब देखकर खिन्नतापूर्वक गिजुभाई कहते हैं: 'इनसे हमें तत्काल मुक्त होना है। बाल शिक्षा की नींव पर ही कुमार मन्दिर, विनय मन्दिर, और विश्वविद्यालयों की इमारतें निर्मित होंगी। इनकी नींवों को अधिकाधिक सुदृढ़ करना ही हमारी परीक्षा है, तभी हमारा महत्त्व है, हमारी क्षमता है।'[1]

सजा के तरीके

शालाओं में प्रचलित अनेक प्रकार की सजाओं का विवरण गिजुभाई के एक लेख में मिलता है।

'शिक्षक तरह-तरह की सजायें देते। डंडे की सजा तो मामूली बात थी। 'सोटी बाजे छमछम, विद्या आवे घमघम—यह सूत्र प्रचलित था। भगोड़े लड़कों को एक टांग पर खड़ा रखा जाता या फिर उनके हाथों में एक-एक ईंट थमा दी जाती थी, अथवा उनके हाथ लम्बे फैला दिये जाते थे। उठाईगीर छोकरों का अंगूठा पकड़कर गर्दन या पीठ पर डंडों की मार पड़ती। जो लड़का हिल जाता उसे डंडे का तेज प्रहार झेलना पड़ता था। अत्यन्त उत्पाती लड़कों को सिर के बल उल्टा लटकाया जाता था। मुहावरे के बतौर एक कथन प्रचलन में था कि 'देख लेना, उल्टा लटकाकर, नीचे आंच लगाकर ऊपर से बेंतों की मार मारूंगा।' 'कलकत्ता रिव्यु' में एक बार पढ़ने में आया कि एक बच्चे को बिल्ली के साथ थैले में डालकर लुढ़काया गया था। इधर काठिया-वाड़ की शालाओं में शिकंजा होता था। बदमाश लड़कों के पांवों को शिकंजे में कस दिया जाता था जिससे कि वे शैतानी छोड़ दें। शिकंजा याने लकड़ी की मजबूत बेड़ी। स्कूल से छुट्टी हो जाने के बाद विलम्ब से छात्रों को छोड़ना, उन्हें खड़े रखना, सिर पर 'ठोल' जमाना आदि तो साधारण सजाएँ थीं।'[2]

इस समय के विद्यालयों में पुराने जमाने की प्रचलित कतिपय विशेषताएँ भी देखने को मिलती हैं। व्यक्तिगत-शिक्षण तथा मोनीटर-पद्धति आज भी ध्यान देने योग्य हैं। हालांकि धीमे-धीमे कालांतर में ये विशेषताएँ लुप्त होने लगीं। शिक्षा में पुरस्कार, प्रतियोगिता और परीक्षा के चोंचले धीरे-धीरे बढ़ने लगे। पर शिक्षकों को समाज में सम्मानपूर्ण स्थान था। शिक्षकों और छात्रों के बीच अपेक्षतया घनिष्ठ सम्बन्ध थे। इन अच्छाइयों की तरफ गिजुभाई का ध्यान गया था। प्राचीन विद्यालयों पर लेख अपने एक लेख में उन्होंने लिखा था कि इस लेख द्वारा गांवों के पुराने विद्यालयों की विशेषताओं एवं उनकी गतिविधियों को समझने के उपरान्त अगर वहां की व्यवहार्य उत्तम बातों को नई शालाओं में प्रयुक्त करने का विचार किया जाएगा तो मैं अपने इस लेख का प्रयोजन पूर्ण समझूंगा।

1. कुमार मन्दिर याने प्राइमरी स्कूल, कक्षा 1 से 7 तक। विनय मंदिर याने सैकण्डरी स्कूल कक्षा 8 से 10 तक।—ले 10।
2. 'दक्षिणामूर्ति" त्रैमासिक, 1925—आपणा देशनी जूनी शालाओं लेख: गिजुभाई।

गिजुभाई के कतिपय संस्मरण

प्राथमिक विद्यालयों के अवलोकन के दरम्यान उन्होंने अनेक बातें देखी थी और अपने संस्मरणों में उन्हें लिपिबद्ध किया था। उनके द्वारा अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती है—विशेषतया उस काल की पढ़ाई के बारे में। लीजिए उनके अपने कुछ प्रसंग संक्षेप में पढ़ें:

'सात साल का हुआ तो जिले की शाला में पढ़ने गया। उन दिनों पाठ-शाला में भेजने की महत्ता कम नहीं हुई थी।'

'मुझे पाठशाला जाना अच्छा नहीं लगता था। बार-बार मैं वहाँ जाना बन्द कर देता था। तब या तो जबर्दस्ती या फिर पिटाई के बाद मुझे जाना पड़ता था। कई बार मैं टांगा-टोली का भी शिकार बनता। एक रोज मेरे पिता मुझ पर बहुत क्रुद्ध हुए। नीम की डाली से उन्होंने मुझे खूब पीटा। कमर और पूरे शरीर पर निशान उभर आए। उस दिन के बाद मैंने फिर कभी मार नहीं खायी।'

'सोटी बाजे छमछम, विद्या आवे घमघम' कहावत का अमल बदस्तूर जारी था। पूरे गांव की नींद को उड़ाता एक बड़ा घण्टा रोज सवेरे 6 बजे बजता था। हम दाँतून करने की तथा गिनती बोल चुकने की सही पट्टी पर लिखवाकर बेतहाशा पाठशाला की ओर दौड़ पड़ते।'

'शिक्षक हमें पट्टी पर गिनती का अंक लिख देता था जिसके ऊपर-ऊपर हमें बरता बराबर फिराना होता था। घिसते-घिसते गिनती का वह अंक रूई की पूनी जैसा या कि पानी में डूबकर फूली हुई चुहिया जैसा मोटा हो जाता था। पता नहीं इस तरह घिसने से अक्षर बिगड़ गये थे या कि अक्षरों को जमा-जमा कर लेखन सुधारना था, जो भी कारण रहा हो, दो-तीन वर्षों तक खड़िया-मिट्टी से सुलेख लिखने पड़े तथा अभ्यास-पुस्तिकाएं भरनी पड़ी थी।'

'हमारे वक्त में भी गणित को जटिल विषय समझा जाता था। सोलह तक की गिनती हम तोते की तरह उगल देते थे। रात पड़े घर पर मुहारनी तो बोलनी ही पड़ती थी। सवेरे दाँतुन करने की चिठ्ठी भूल जाते तो फिर बारह ही बजती।'

'अध्यापक पढ़ाने के बजाय पास करने में ज्यादा चतुर थे।'

'भूगोल की पढ़ाई हमें अब भी याद है। कागज की पतली लम्बी नलियाँ लेकर हम नक्शे में कौनसा शहर कहाँ है, कौनसी नदी कहाँ है, कौनसे पर्वत कहाँ-कहाँ हैं, याद किया करते थे। कलकत्ता शहर पर हम कागज की नली

रखते और 'कलकत्ता···कलकत्ता···कलकत्ता···यों घोखते थे। अंतरीपों और जलडमरूमध्य के बारे में भी हमें पढ़ना पड़ता था। यही सरलतम विधि थी भूगोल विषय को पढ़ने की।

'इतिहास का शिक्षण भी भूलने की बात नहीं। बिना लेन-देन के अनगिनत नाम और घटनाएं याद रखनी पड़तीं। इतिहास याने अनेक-अनेक वर्षों का घटना-चक्र—यह ख्याल मुझे रोम का इतिहास पढ़ने तक रहा।'

'हमारे समय में शिक्षकों को बहुत सुख था। अपने विषयों का उन्हें थोड़ा-सा ही अध्ययन करके लाना होता था। शाला में आकर वे कहते—'ऐ छोकरे कविता बोल देखें।' अगर कविता का भावार्थ शिक्षक को न आता तो इतना-सा कहकर ही पीटने लगता कि 'साले याद करके क्यों नहीं आया ?'

'व्याकरण का विषय तो सबों को त्रासदायी लगता था।'

'हमारे साथ में विठ्ठल नामक एक लड़का था। उसे कुछ आता नहीं था। हमारे मास्टरजी उस पर खूब गुस्सा होते। हाथ मरोड़कर ऐसे घूंसा जमाते कि बेचारे की जान निकल जाती। और ऊँचे स्वर में बोलते अलग—'भाईसाहब' क्यों—आता नहीं—ऊँ—ऊँ—ऊँ।'

'पीटने के अनेक तरीके शाला में प्रचलित थे। घूंसा मारना, तमाचा जड़ना चूंठिये भरना, स्केल से पीटना आदि—ये सब पीटने के सामान्य तरीके थे। और भी नई-नई तरकीबें मास्टरों ने ईजाद कर ली थी। कभी वे टेबिल पर हाथ रखकर स्केल से पीटते। घूंसे जमाने होते तो चालू तरीके से नहीं—विधि-विधान से मारते थे। उसका तरीका जानने योग्य है। पहले लड़के को उल्टा घुमाते और तब नाक तक ले जा कर धम्म से उसकी पीठ पर घूंसा जड़ देते। अगर मुक्की नाक के नहीं अड़ती तो अपशकुन माना जाता, परिणामतः दो बार घूंसा जड़ने की नौबत आ जाती थी।'

'मास्टरों से हम बहुत भय खाते थे। इतनी सावधानी से हम खेलते थे कि न तो मास्टर हमें दिखते और न हम उन्हें दिखाते थे।'

'स्पर्धा का प्रचलन होने के कारण कई प्रकार के छाल-छाद्मों को खुल खेलने की आजादी थी।'

'शाला तथा शाला के हमारे विषय हमें इतने अप्रिय लगते थे कि हमारी पुस्तकें धरी रह जाती थीं और हम गलियों में खेलने के नाटकों और गीतों की तैयारी करते-फिरते थे।'

'शिक्षकों के और हमारे बीच में किसी भी तरह का सीधा सम्बन्ध नहीं था। वे हमारे बाघ थे और हम उनकी मक्खियां। वे हमारे घर भी नहीं आते थे, तब भला हमें उनके घरों पर जाने का मौका ही कैसे मिलता।'[1]

उपर्युक्त विवरणों के सामने गिजुभाई द्वारा लिखित दक्षिणामूर्ति बाल मन्दिर के उनके अपने वर्णन को रखकर तुलना करने की आवश्यकता है। हमें स्पष्ट पता लगेगा कि उन्होंने स्वयं जो-जो कष्ट झेले थे तथा जिन-जिन विकट परिस्तियों से स्वयं गुजरे थे, मानो उन्हें दूर करना ही उनका अभीष्ट हो। जो यथार्थ परिस्थिति उन्होंने स्वयं देखी थी। नयी पीढ़ी को उससे उबार लेने की उनकी ख्वाहिश थी। मारपीट भय एवं भास के वातावरण से उन्होंने कोमल बालकों को बचाया था, साथ ही उनकी प्रतिभा के विकास के लिए प्रेम, आनन्द, स्वतंत्रता का सुखद वातावरण निर्मित किया था।

1. "दक्षिणामूर्ति" वर्ष संवत 1982, अंक 14 प्राथमिक शालाना संस्मरणो : गिजुभाई।

एक तस्वीर

'कई वर्षों पूर्व देखी एक तस्वीर आंखों के समक्ष तैर रही है। लंदन के एक व्यस्त चौराहे पर एक कद्दावर पुलिसमैन खड़ा है। चारों दिशाओं से आने वाले वाहनों की लम्बी कतारों को उसने दोनों हाथों के संकेत से रोक दिया है। सड़क पर एक नन्हा बालक एक तरफ से दूसरी तरफ अपनी स्वाभाविक मस्ती में चला जा रहा है। बड़ा ही अर्थपूर्ण चित्र है यह ?'[1]

पुलिसमैन के स्थान पर गिजुभाई को रख लें और चतुर्दिक वाहनों की कतारों को बच्चों के जीवन हेतु अवरोध मान लें। यह चित्र गिजुभाई के कृतित्व का एक यथार्थ एवं सांगोपांग प्रतिबिंब बन जाता है।

1. घरमां बाल मंदिर : मू०मो० भट्ट।

4

गिजुभाई का योगदान—1
बाल शिक्षा दर्शन

'मैंने एक बनिये को जब बार-बार अपने बालक को गोदी में उठाकर चूंठिये भरते और 'हाँ'''नासपीटे'''तुझे पढ़ना थोड़े ही है' गालियाँ देते जब शाला में ले जाते देखा तो मेरी आत्मा चीख उठी। मुझे अपना विद्यालयी बाल-जीवन याद आ गया। अनेक प्रकार की सजाओं के इस पुराने वधस्थान ने मानो मुझसे कहा हो, 'उठ खड़ा हो, वकालत छोड़ दे।' मैं भागा। नयी शिक्षा दृष्टि की पांच वर्षों तक उपासना की ओर एक जीवन तत्त्व का प्रत्यक्ष अनुभव किया जो सार्वदेशिक और सार्वभौमिक था।'

—गिजुभाई

बीसवीं सदी के प्रारंभ का समय भारतीय समाज के लिए अत्यन्त विघ्न-बाधाओं का काल था। देश परतन्त्र था। गरीबी ने सम्पूर्ण समाज को अपने नागपाश में बांध रखा था। मानव-मानव के मध्य सम्मानपूर्ण व्यवहार के दर्शन विरल थे। उच्च वर्ग दीन-दलितों को अत्यन्त हेय दृष्टि से देखता था। धर्म के नाम पर अनेकानेक पाखंडों का बोलबाला था। आदमी आदमी के प्रति क्रूर था।

समाज में यदि ऐसा वातावरण स्थायी बन जाये तो उसका अस्तित्व खतरे में पड़ जाये। वह टूटने लगे, छिन्न-भिन्न हो जाय, उसका सत्व नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। ऐसे में भारतीय समाज को यदि अपना अस्तित्व सुदृढ़ बनाकर उसे सुरक्षित रखना है तो मानव-व्यक्तित्व में उच्च एवं उदात्त मूल्यों की पुनर्स्थापना करना बहुत जरूरी है। उस काल के भारतीय समाज के लिए परिस्थिति की यही माँग थी।

अपेक्षाओं से भरे ऐसे वातावरण में गांधी जी का अवतरण हुआ। सीजर के लिए कहा जाता था कि He came, he saw, and he conquired, इसी वजन पर गांधी जी के लिए भी हम कह सकते हैं कि He came, he saw and he found out the way। भारत के सार्वजनिक जीवन में उतरने के साथ ही वे हमें एक विचार-दर्शन प्रस्तुत करते हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा भी था : 'मेरी इन बातों को आप जीवन में उतारें, स्वराज्य तो बेचारा एक वर्ष के अन्दर-अन्दर आपको मिल ही जाएगा।'

वह दर्शन था। सत्य एवं अहिंसा का, प्रेम तथा करुणा का, मानव-मानव के बीच पारस्परिक सम्मान एवं दीन दलितों के उद्धार का, मानवीय आत्मा के ऐक्य एवं विश्वबन्धुत्व के जय-निनाद का। उस काल में भारतीय समाज के लिए यह एक अनिवार्यता थी।

गांधीजी ने आने के साथ ही आह्वान किया और देश के कोने-कोने से लोग उनके साथ आते गये। ग्रीष्म की प्यासी धरती आषाढ़ की जलधारा को जैसे सोख लेती है वैसे ही भारतीय जन मानस ने उस आह्वान को अंगीकार कर लिया। कलकत्ते से अपनी धुंआधार चलती हुई वकालत को तजकर चितरंजनदास निकल चले। उधर बिहार से अजातशत्रु डॉ० राजेन्द्रप्रसाद चल पड़े। अत्यन्त वैभव में पले मोतीलाल नेहरू एक दरी पर सोने का अभ्यास करने लगे। तो उधर उग्र तेवर वाले क्रान्तिकारी प्रो० कृपलानी साबरमती आश्रम में बैठ गए। साहित्य-सृजन की अपरिमित प्रतिभा को अन्तर में छिपाकर महादेव भाई देसाई भी गांधीजी के चरणों में जा बैठे। ख्यात-अख्यात जिस किसी भी व्यक्ति ने इस आह्वान को सुना, अपने हृदय के गहनतल से उसका प्रत्युत्तर दिया। महाकवि झवेरचन्द मेघाणी गा उठे :

> हम खेत से, बगीचे से, जंगल और झाड़ी से
> सागर से, गिरिवर से सुना स्वर तो आये।
> हमें नूतन शक्ति का भान, हम गाते श्रद्धा का गान
> हम मानव की मुक्ति हेतु सबके सब दौड़ आये॥

यह स्वर सुनकर सन्नद्ध होने वालों में से एक थे हमारे श्री गिरिजाशंकर भगवानजी बधेका—याने गिजुभाई।

अपने मामा के ममत्वपूर्ण आग्रह पर वे साबरमती आश्रम में तो नहीं गए, वहीं दक्षिणामूर्ति संस्था में ही पूरे मनोयोगपूर्वक शिक्षा के काम में जुट गये।

बालकों के गांधी

उस काल की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि व्यक्ति चाहे जिस कार्य से जुड़ा हुआ हो, उसके कार्य की पृष्ठभूमि में गांधीजी का दर्शन आधारस्वरूप अवश्य रहता था। गांधीजी तो निमित्त थे, वस्तुतः युग एवं परिस्थिति की यही मांग थी। ठक्कर बप्पा के दलितोद्धार कार्य को लें, या कि चंपारन के नीलवरों की बात लें, नमक के लिए दांडी कूच की चर्चा, या फिर राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना की बात, चर्खे को अपनाने का प्रश्न हो, या कि अस्पृश्यता निवारण का

मुद्दा हो—प्रत्येक के मूल में यही दर्शन काम कर रहा था। गिजुभाई भी काल के इस प्रवाह से भला तटस्थ कैसे रह सकते थे।

श्री किशोरलाल मशरूवाला ने लिखा है : 'इनकी विशिष्ट शाला मोंटेसरी की वजह से महत्त्वपूर्ण नहीं थी, वरन् बालकों के प्रति व्यवहार की जो नयी-दृष्टि इन्होंने ग्रहण की थी उसकी वजह से महत्त्वपूर्ण थी। यह दृष्टि उन्होंने बाल-समुदाय के प्रति विकसित की तथा गुजरात के माता-पिता व शिक्षकों को नूतन संस्कार प्रदान किये। गांधीजी ने अपने आश्रम में अहिंसा की जिस दृष्टि पर बल दिया था उसे गिजुभाई ने माता-पिता एवं शिक्षकों का स्वाभाविक वात्सल्य जगाकर, शिक्षाशास्त्र से उसे प्रामाणिक बनाया तथा बाल-मन्दिर की कला से अलंकृत करके लोकप्रिय बनाया। अहिंसक संस्कृति का आधार निर्मित करने में गिजुभाई ने इस तरह से एक बहुत बड़ा योगदान दिया है।'[1]

इसीलिए श्री जुगतरामभाई दवे ने गिजुभाई को 'बालकों के गांधी' नाम से विभूषित किया।

स्पष्ट है कि गिजुभाई की शैक्षिक विचारधारा के मूल में गांधीजी का जीवन दर्शन विद्यमान है। स्वातन्त्र्य, स्वावलम्बन, प्रेम, करुणा, मानव, सम्मान, राष्ट्रीयता (संकीर्ण अर्थ में नहीं), दलित्तोद्धार (बालक भी समाज का दलित एवं पिछड़ा हुआ अंग था—बल्कि है), दीन-वत्सलता, मानव सेवा—ये सब गांधीजी की फिलॉसोफी के ही आधार तत्त्व हैं।

उक्त विचारों के प्रति गिजुभाई कितने दृढ़ थे तथा इन्हें व्यवहार में ढालने को कितने समुत्सुक थे, इसका प्रमाण अनेकानेक घटनाओं एवं अवसरों पर मिल जाता है। बाल मन्दिर में शिक्षक-वर्ग को सम्बोधित करते हुए एक बार उन्होंने कहा था : 'दबावों से राज्य नहीं दबे रहते, तो बाल मन्दिर के बालक भला कैसे दबेंगे। बाल मन्दिर से दण्ड को मिटाकर ही दुनिया से हिंसा, त्रास, एवं जुल्म का अस्तित्त्व समूल मिटाया जा सकता है। नया युग स्वराज्य का है। जब उसमें हिंसा नहीं रहेगी तो भला शाला में क्यों रहे? क्यों रहनी चाहिए? हमारे मन में बच्चे पर किसी तरह से अंकुश लगाने की जब इच्छा जागे तो मात्र यही सोचना पर्याप्त होगा कि वह जितना निर्बल है और हम कितने बलवान हैं। निर्बल को सजा देना हिंसा से भी बदतर कार्य है। बालक को दंड देकर हम आगामी पीढ़ी की जड़ों में हिंसा का जल ही सींचेंगे।

'बालक को दण्ड देकर हम अपनी ही असंयमी वृत्ति का प्रदर्शन करते हैं। संयम सजा देने में अथवा स्वयं को सजा से विरत करने में है! संयम अच्छा है या असंयम? संयम से कल्याण होता है या कि असंयम से?'[2]

भारत से हजारों मील दूर गांधीजी से नितान्त भिन्न वातावरण में पली हुई मेडम मोंटेसरी भी गांधीजी के विचार दर्शन से एकमत थी। गांधीजी और मेडम मोंटेसरी की मुलाकात व बातचीत के बाद गांधीजी ने एक भी शब्द ऐसा नहीं कहा था कि जिससे उन दोनों के विचार वैभिन्नय का संकेत मिला हो।

1. स्मरणांजलि : किशोरलाल मशरूवाला, पृष्ठ 21।
2. प्राथमिक शाळामां शिक्षक : गिजुभाई, पृष्ठ 103।

यही जीवन-दृष्टि गिजुभाई के शिक्षा दर्शन की बुनियाद थी। आइये, उसका विस्तृत विवरण जानें तथा विवेचन करें।

गिजुभाई का शिक्षा-दर्शन

बालक का स्वतन्त्र व्यक्तित्व : उनकी मान्यता थी कि बालक का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। यह विचार सिर्फ गिजुभाई का ही नहीं था। सुदूर यूरोप में 18वीं सदी में इस सिद्धान्त को स्वीकृति मिल चुकी थी। गिजुभाई ने शिक्षण में इसे एक क्रान्तिकारी सिद्धान्त के रूप में ग्रहण किया था। वे जानते थे कि अपनी इच्छाओं, वृत्तियों एवं गलत-सही निर्णयों को बच्चों पर लादने के भयंकर परिणाम निकलते हैं। जबकि बाल स्वतन्त्र्य का सिद्धान्त स्वीकार कर लेने पर बालक के प्रति हमारी दृष्टि ही समूल बदल जाती है। इसे अंगीकार करने के पीछे गिजुभाई की पैनी अवलोकन शक्ति थी, साथ ही रोजमर्रा के अनुभवों का बल था। इसे अपनाकर उन्होंने अनुभव किया कि 'बच्चों ने मुझको प्यार देकर नया किया है, नया जीवन दिया है। उन्हें सिखाते हुए सच पूछो तो स्वयं मैंने ही सीखा। उनका अवलोकन करने से मुझे ही आत्मावलोकन करने का अवसर मिला। उन्हें नीचे से ऊपर ले जाते हुये संग-संग मैं ही बढ़ता गया हूं। उनका गुरु होते हुये भी मैंने उनका गुरुत्व समझ लिया।'

'यह काव्य नहीं—स्पष्ट अनुभव कथन है।'[1]

बाल सम्मान : उपर्युक्त सिद्धान्त को व्यवहार में लाने के लिए बालसम्मान का तत्त्व समझना अनिवार्य है। गिजुभाई के अन्तःकरण में यह भाव स्थायी रूप से विद्यमान था। तभी तो वे बालकों के व्यक्तित्व को देख पाये, उन्हें समझ पाये, उन्हें आदर दे सके। बच्चों को उन्होंने कभी ऊंचे स्वर में नहीं बुलाया। बाल-मंदिर में बालकों के लिए पठनीय बाल-साहित्य की आवश्कता पड़ी तो कई-कई रातों जागकर उन्होंने बाल-साहित्य का सृजन किया। घर में बबु-टिकु को दातून करना सिखाना हो तो उसी तन्मयता एवं कृतकृत्य भाव से उनको दातून का ब्रूश बनाना, दांत साफ करना व कुल्ले करना सिखाने। 'राजा सूपड़कन्नो' नाटक खेलना होता तो कानों में सूप बांधकर राजा की भूमिका में स्वयं तैयार। याने नाटक सिखाने में भी वही दृष्टि। 'हालतां चालतां' पुस्तक से उद्धृत उनका प्रसंग पठनीय है, उससे हमें इस बात का आभास मिल जाएगा कि उनके जीवन का प्रत्येक पल बाल-सम्मान की भावना से अनुप्राणित था :

'बाल मंदिर में नाटकों की तैयारी चल रही थी। बच्चे नाटक देखने को

1. "दक्षिणामूर्ति" त्रैमासिक

उत्सुकता के साथ कभी से दरबाजे के आगे पंक्तिबद्ध खड़े थे। एक बालक को दूसरे से बातें करते मैंने सुना : 'गिजुभाई मुझको अच्छे नहीं लगते। उनका मुंह काला है।'

'दूर खड़ा मैं सुन रहा था मैं समझ नहीं पाया। मेरा चेहरा काला नहीं, गेहुंआ है। मैं बालक को अच्छा न लगूं, यह कैसे हो सकता है ? खूबसूरत न सही तो अत्यन्त कुरूप तो मैं कदापि नहीं। मैं उलझन में पड़ गया।'

सोच ही रहा था कि वही बच्चा आकर कहने लगा : 'मैं नाटक देखने नहीं आऊंगा।'

'मुझे बात याद आ गई···नाटक का और मेरे काले चेहरे का कुछ सह-सम्बन्ध होना चाहिये। उस दिन 'भय का भेद' नाटक में मेरी भैरव की वेशभूषा से जो दो-चार बच्चे भयभीत होकर रो पड़े थे, कदाचित् उनमें से एक यह बच्चा हो।'

'मैंने उस बच्चे के सामने हँसकर कहा : 'अगर नाटक अच्छा न लगे तो मत आना, लेकिन आज मैं अपना मुंह काला नहीं पोतूंगा। आज तो मैं दूसरा ही वेश धारण करूंगा। उस दिन मैंने जो काला लिबास पहना था, उससे क्या बच्चे बहुत डर गये थे ?'

'बच्चे ने जवाब दिया : 'अरे, सभी तो रो रहे थे। आप तो बहुत बुरे लग रहे थे।'

'मैंने कहा—'आज मैं खराब नहीं लगूंगा।'

'उस रोज उस बच्चे ने नाटक देखा। हर बार नाटक से भाग खड़े होने वाले बाल-मानस का मर्म आज मेरे हाथ लगा।'[1]

इस प्रसंग में सम्पूर्ण बातचीत के दौरान यदि बाल-सम्मान की भावना पृष्ठभूमि में न होती तो बाल आत्मा के जो दर्शन उन्हें हुए थे, न हुए होते।

बालक के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के सिद्धान्त को गिजुभाई बहुत स्पष्टता से समझे हुये थे। तभी तो वे अपने बाल मंदिर में रोजमर्रा के कार्यों में इसे आसानी के साथ अमल में ला सके। बच्चे में विकास की अदम्य इच्छा तथा अपरिमेय शक्ति जन्म से ही साथ रहती है। शरीर, मन, बुद्धि, भावनाएं—सबों का धीमे-धीमे विकास होने लगता है। विकास स्वतः होता है। पर माता पिता, शाला, समाज, प्रकृति आदि हम सबों को उसे अनुकूलताएं प्रदान करनी चाहिए। उसे प्रेम व सुरक्षा का सम्बल प्रदान करना चाहिए।

बालक की अपनी शक्तियां भी होती हैं। और सीमाएं भी। उसकी अपनी मनोवृत्तियां भी होती हैं, और पसन्द-नापसन्द के भाव भी। और साथ ही साथ अल्प मति वाली थोड़ी विवेकशक्ति भी होती है। हम इन्हें सम्मान की नजरों से देखें और निरन्तर चिन्तन करें कि वार्तालाप के द्वारा कैसे उनका

1. हालतां-चालतां : गिजुभाई।

विकास किया जा सकता है। याने मुद्दा उनके प्रति हमारी अनुकूल दृष्टि एवं सहयोग का है।

स्वाधीनता—स्वावलम्बन : गिजुभाई के दर्शन मे दूसरा प्रमुख बिन्दु है स्वाधीनता का। इस शब्द का अर्थ-विस्तार स्वावलंबन के पर्याय के रूप में स्पष्टता से समझ सकते हैं। बच्चा जन्म से ही अपने कार्यों में स्वाधीन होने का प्रयास करता है। जन्म से पूर्व जितनी आश्रितता माता के प्रति रहती है, बाद में नहीं। बल्कि प्रसव के तत्काल बाद कुछ वर्षों में जितनी आश्रितता रहती है, उतनी आगे के वर्षों में नहीं रहती। शक्ति विहीन लोथ जैसे बच्चे को बिठाना, चलाना, बोलाना, हाथ-पांव हिलाकर मोटे-मोटे काम करना सिखाना, साथ ही मां के दूध से धीरे-धीरे खुराक पर लाना, पढ़ना-लिखना सिखाना आदि समस्त कार्यों के पीछे बच्चे की स्वाधीन वृत्ति विद्यमान रहती है। माता के साथ धीरे-धीरे पांव उठाते हुए बच्चे को गोदी में उठा लेने पर रोते-मचलते किसने नहीं देखा होगा ? राष्ट्रों की स्वाधीनता भी इसी मान-वीय चित्तवृत्ति का आगामी चरण है।

हमारे घरों में बालकों की इस अभिवृत्ति को हम कदम-कदम पर निर्ममता से कुचलते देखते हैं। बच्चे की खिचड़ी व दूध अपने आप खाने की इच्छा है, और हम उसे ग्रास देने लग जाते हैं। उसको पानी पीना है और हम उसके पहुंच क्षेत्र में पानी रखते भी नहीं। उसके पहनने के कपड़े हम अलमारी के सबसे ऊपर वाले खाने में रख देते हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि बच्चे के फ्रॉक के बटन तक उसके हाथ में न पहुंच सकें इसलिए उसकी पीठ की तरफ रखते हैं, अन्यथा हमारे फैशन में कमी रह जाए ना ! धन्य है हमारा फैशन।

गिजुभाई के मस्तिक में ये बातें स्थायी रूप से जम गई प्रतीत होती हैं। वे कहते है : 'हमें बच्चों को अपने आप चलने, दौड़ने, सीढ़ियों पर चढ़ने-उतरने, पड़ी हुई चीज को उठाने, कपड़े निकालने, नहाने, पहनने, सच बोलने, अपनी जरूरतें स्पष्टतया बताने आदि कार्य सिखाने में मदद करनी चाहिए—यह नहीं कि हम ही उनका सारा काम पूरा करने की चाकरी में लग जाएँ। उनकी उतनी ही मदद करनी चाहिए कि वे व्यक्तिगत जरूरतें पूरी करने तथा इच्छाओं को पूरा होते देखकर संतुष्ट हो सकें। यही है स्वाधीनता की शिक्षा। इसीलिए जो शिक्षा स्वाधीनता के मार्ग पर आगे बढ़ने में बच्चों की मदद करें वही प्राणवान शिक्षा कहलाती है। गिजुभाई आगे कहते हैं कि 'मात्र स्वाधीन व्यक्ति ही स्वराज्य का आनन्द ले सकता है, वस्तुतः उसी व्यक्ति के लिए स्वराज्य है।'

स्वाधीनता के सुख बहुत हैं, पर कुछ कष्ट भी हैं। चाहे आप उन्हें सीमाएँ कह दें। गिजुभाई उन सीमाओं से परिचित थे। 'अलबत्ता, हम जानते हैं कि बच्चे को खिलाने-पिलाने, उसके मुंह-हाथ धोने की बजाय उसे अपने-आप खाना-पीना, हाथ-मुंह धोना, कपड़े पहनना सिखाने का काम बहुत उबाऊ और कठिन है। साथ-इन कामों में अत्यन्त धीरज व शान्ति की आवश्यकता पड़ती,

है। लेकिन पहला काम आसान होते हुए भी हल्के किस्म का है। कारण यह कि वह नौकर का काम है, जबकि दूसरा कठिन होते हुए भी ऊँचे दर्जे का है। कारण यह कि वह काम शिक्षाकार का है।'

बच्चों की गैर-जरूरी मदद को गिजुभाई उसके स्वाभाविक विकास में बाधक मानते हैं।

स्वातंत्र्य : गिजुभाई के शिक्षा दर्शन का तीसरा मुख्य बिन्दु है 'स्वातंत्र्य'। वैसे तो इसके शब्दार्थ से हम सभी परिचित हैं, पर इसका मर्म विरले ही जानते हैं। शिक्षा से सम्बन्ध दस व्यक्तियों से पूछेंगे तो दस पृथक्-पृथक् अर्थ सामने आएंगे। कदाचित उनमें से एकाध अर्थ सामान्य शिक्षक के लिए उनके रोजमर्रा के काम में सहयोगी बने पर जिसे हम आचरण में ढाल सकें, ऐसा तो शायद ही मिलेगा। इस सन्दर्भ में गिजुभाई अपनी गुरु मेरिया मोंटेसरी की तरह कहीं अधिक स्पष्ट थे। प्रसिद्ध मनोविज्ञान विद चुन्नीभाई ना० शाह ने लिखा है कि 'होमरलेन व नील जैसों ने भी स्वातंत्र्य के अद्भुत प्रयोग किये थे। पर इन लोगों ने सबों के लिए अनुकूल कोई पद्धति सुलभ नहीं की। जबकि मोंटेसरी ने अपनी पद्धति मात्र कला रूप में नहीं अपितु शास्त्रीय रूप में सबों के सामने प्रस्तुत की। गिजुभाई ने इस पद्धति का मर्म समझकर इसे गुजराती वेशभूषा में बालकों के समक्ष रखा।'[1]

उन्होंने स्वातंत्र्य का अर्थ कुछ इस तरह से लिया था :

'विकासमान बालक को स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। याने विकासोन्मुखी परिस्थितियों में से उसको प्रवृत्ति-विशेष के चयन की छूट मिलनी चाहिए, साथ ही साथ प्रवृत्ति में भाग लेने की छूट रुचि पैदा होने की स्थिति में ही मिलनी चाहिए। स्वातंत्र्य का अर्थ अतंत्र या परतंत्र—इन दोनों में से एक भी नहीं। अपने व पराये के भेदों से बालक को मुक्त करके उसे स्व-निर्भर बनाने का मतलब है उसे स्वतंत्रता के मार्ग पर ले चलना।'

'उक्त स्वातंत्र्य की एक मर्यादा सामुदायिक हित की है। सामुदायिक हित को हम सभ्यता या कि भद्रता के नाम से पहचानते हैं। अतः बालक जब दूसरों को चिढ़ाता है, तंग करता है या कि अभद्र व्यवहार करता है तो उसे रोका जाना चाहिए। इसके विपरीत, अगर किसी प्रवृत्ति को बालक पसन्द करता है, या कि वह उसे उपयोगी महसूस करता हैं तो उसमें बाधा नहीं देनी चाहिए।'

'शिक्षक न तो बालकों की स्व-स्फुरित प्रवृत्तियों को रोकें और न ही अपने स्वैच्छित कार्य उन पर थोपें। अलबत्ता, अगर बालक निरर्थक या कि जोखम भरे काम करें तो शिक्षक उन्हें न पोषें। पर इस सम्बन्ध में भी शिक्षकों को प्रशिक्षण लेना चाहिए—योग्यता अथवा अयोग्यता का निर्णय लेने का सूक्ष्म

1. मोंटेसरी : गिजुभाई, पृष्ठ 39।

विवेक सीखना चाहिए।'

'स्वातंत्र्य का सही मार्ग बताने के लिए अच्छा क्या है और बुरा क्या है' यह अन्तर बालकों को कराया जाना चाहिए।'

'जिस कमरे में सारे बालक कुछ न कुछ उपयोगी कार्य करने के लिए दिमाग लगाते हैं तथा इच्छापूर्वक प्रवृत्तियों में लगे रहते हैं साथ ही किसी भी प्रकार का अभद्र, अशिष्ट या कटु व्यवहार नहीं करते, वही कमरा स्वतंत्र या व्यवस्थित समझा जाएगा।'

'स्वातंत्र्य (के सिद्धान्त) पर निर्मित शिक्षण पद्धति का काम यह है कि वह बालक को स्वतंत्र होने की तालीम देने को आगे आए स्वतंत्र वातावरण में बालक ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाएगा, त्यों-त्यों स्वयं को अधिक से अधिक व्यक्त करता जाएगा। वह अपने मूल स्वभाव को अधिक निर्मलता से बाहर लाएगा।'

'अगर शिक्षण-कार्य में सही माने में स्वतंत्रता आ जाए तो अन्य कठिनाइयों के साथ-साथ दंड एवं पुरस्कार का भी अन्त आ जाए। इससे बालक स्व-स्फुरणा से स्वतंत्र प्रवृत्तियों में संलग्न होकर स्वाधीनता के मार्ग पर बढ़ जाता है। उसमें स्वानुशासन का उदय होता है।'

स्वतंत्र वातावरण में बालकों को किस तरह से धीरे-धीरे व्यवस्थित रीति से काम कराया जाए तथा उदासीन बालकों के साथ किस तरीके से काम कराया जाए—इस संबंध में गिजुभाई ने उदाहरण देते हुए मोंटेसरी पद्धति नामक पुस्तक के 'सिद्धान्त विचार' प्रकरण में विस्तारपूर्वक लिखा है।

उनकी एक प्रमुख विशेषता यह थी कि स्वातंत्र्य सम्बन्धी अपनी पूरी विचारधारा को उन्होंने अपने बालमन्दिर में प्रयुक्त करके देखा था। इसमें इनके विशाल अध्ययन तथा मौलिक विवेक का पूरा योगदान था यह कला क्या आसानी से हाथ लगने की चीज है? 'दक्षिणामूर्ति बालमन्दिर' के प्रथम तीन दिनों का उनके द्वारा लिखा हुआ 'रोजनामचा' पढ़ने योग्य है। स्वतंत्रता का प्रयोग करने वाले व्यक्ति को किन-किन विडम्बनाओं से जूझना पड़ता है, इसका यथातथ्य जीवंत वर्णन अत्यन्त सरस है।

स्वानुशासन : गिजुभाई के दर्शन का अगला उल्लेखनीय बिंदु है 'स्व-नियमन! स्वाधीनता तथा स्वातन्त्र्य की भांति यह विचार भी उन्हें मोंटेसरी से प्राप्त हुआ था।

स्वनियमन के स्वरूप का वर्णन मोंटेसरी ने अत्यन्त सरल रीति से किया है : 'अगर कोई नियमित रूप से चलती हुई मोंटेसरी शाला को जाकर देखें तो छोटे-छोटे बच्चों के स्व-नियमन को देखकर ताज्जुब होने लगेगा। तीन से सात वर्ष की आयु के 40 बच्चों को आप साथ-साथ काम करते देखेंगे। हर बच्चा अपने काम में मशगूल होगा। कोई बच्चा इन्द्रियों की शिक्षा का उपकरण

लिए होगा। तो कोई बच्चा गिनती की सारणी पर काम कर रहा होगा और कोई अक्षर सीख रहा होगा। किसी बच्चे की नन्हीं-नन्हीं उंगलियाँ बटन के फ्रेम पर फिर रही होंगी, तो कोई साफ-सफाई में तल्लीन होगा। कोई बच्चा टेबिल के पास कुर्सी पर बैठा होगा, तो कोई आसन पर ही आसन जमाये मिलेगा। कुछ बच्चे खिलौने लिए हुए मन्द-मन्द आवाज में गुनमुन-गुनमुन कर रहे होंगे। बीच-बीच में दबे पाँव चलते बच्चों के आतुरता एवं उल्लास भरे स्वर भी सुनने को मिलेंगे—'बहनजी ! मास्टर साहब ! देखिए, यह हमने क्या बनाया है।'

'जिन लोगों ने उन्हें (बालकों को) भोजन की तैयारी करते देखा होगा, उन्हें बड़ा अचरज हुआ होगा। चार वर्षों के छोटे-छोटे बच्चे छुरी, कांटा, चम्मच आदि को उपयोग में लाते हैं। पानी से भरे कांच के प्याले रकाबी में रखकर ले जाते हैं, साथ ही गरम दाल का बर्तन एक बूंद भी जमीन पर गिराये बगैर, एक टेबिल से दूसरी टेबिल तक ले जाते हैं। जरा भी गलती नहीं होती। एक भी प्याला नहीं टूटता। भोजन के समय परोसने वाले ये नन्हें-मुन्ने बड़ी सजगता के साथ नजर रखते हैं। दाल थोड़ी-सी भी खतम होती लगे, कि तत्काल दूसरी तैयार।'

गिजुभाई के बाल मन्दिर में भी नास्ता परोसते बच्चों को, अभिनय, गीत, या नाटक खेलते बच्चों को, उपकरणों के माध्यम से कमरे में काम करते हुए बच्चों को, अथवा शान्ति के खेल में आंखें मीचकर बैठे हुए बच्चों को जिन्होंने भी देखा है, वे मुग्ध भाव से उनका वर्णन करते हैं। उन्हें देखकर आह्लादित होने वालों में सर प्रभाशंकर पट्टणी, काका साहब कालेलकर, रामनारायण वि-पाठक तथा जुगतराम दवे भी थे। अनेक माता-पिता और उनके शिक्षक भी थे।

'ऐसा अनुशासन बड़ों के हुक्म से अथवा उपदेश से, याने आज की प्रचलित युक्तियों से नहीं आ सकता, और न ही यह अध्यापक पर निर्भर करता है। वस्तुतः यह प्रत्येक बालक के अन्तर्जीवन में होने वाले विकास पर निर्भर करता है।'

'वास्तविक अनुशासन का उदय प्रवृत्ति-विशेष से होता है। किसी क्षण, किसी प्रवृत्ति विशेष में बच्चे अपूर्व रस लेने लगते हैं। उस समय उनके चेहरे के भाव ही उनकी संलग्नता एवं एकाग्रता की साक्षी देने लगते हैं। स्व-नियमन की दिशा में यही बच्चों का पहला कदम मानना चाहिए। प्रवृत्ति चाहे जैसी हो—इन्द्रिय शिक्षण की हो, बटन, हुक लगाने की अथवा कप-रकाबियां उठाने की हो।'

'परन्तु आज्ञा देकर यह प्रवृत्ति बालकों पर लादी नहीं जा सकती। प्रवृत्ति स्व-स्फुरित होनी चाहिए, याने बालक के विकास की आवश्यकता से वह उपजनी चाहिए। और वह उपजती ही है, क्योंकि विकास के लिए बालक स्वयं

प्रवृत्तियां करने लगता है। बालक जीवन की अन्तःशक्तियों की जिन प्रवृत्तियों की दिशा में बिना रुके स्वाभाविक रीति से उन्मुख होती है, अथवा जिन प्रवृत्तियों में मनुष्य कदम-दर-कदम ऊपर चढ़ता है, वे प्रवृत्तियां ही नियमन देने वाली हैं। इस प्रकार की प्रवृत्तियों से हमारे जीवन में व्यवस्था पैदा होती है। विकास की अनन्त सम्भावनाओं के द्वार खुलते हैं। बच्चा तब तक ऐसी प्रवृत्तियों में लगा रहेगा जब तक कि वह इन्हें अपने लिए पोषक एवं विकास में सहयोगी समझेगा।'

यह विचार-बिन्दु विवेचन की अपेक्षा रखता है। आइये, इसे थोड़ा विस्तार से समझ लें :

"नन्हें बालकों का अपने शरीर पर नियन्त्रण नहीं होता, कारण यह कि अभी स्नायुओं का नियन्त्रण विकसित नहीं होता। अतः प्रारम्भ में अनियंत्रित रूप से वह हिलता-डुलता रहता है, जमीन पर पड़ा-पड़ा पांव पछाड़ता रहता है। तरह-तरह की हरकतें करता है, रोता है। इसका मुख्य कारण है हिलने-डुलने के सन्तुलन का अभाव। नियन्त्रण की अभिवृत्ति अभी सुषुप्तावस्था में होती है, स्पष्टता के साथ उसके सामने अभी तक आ नहीं पाई। उसे प्राप्त करने का वह प्रयास करता है। प्रयास करने में त्रुटियां भी बहुत होती हैं और परिश्रम भी बहुत उठाना पड़ता है। इसके लिए हम अनुकूल वातावरण जुटायें। पर अगर हम उसे 'मेरी तरह स्थिर खड़ा रह'—ऐसा कहेंगे तो उसकी अशक्ति के अन्धेरे में प्रकाश नहीं आएगा।"

'बालक के सन्दर्भ में हम उसके सहज विकास हेतु ऐच्छिक कार्यों में सहयोग दें। उसे गतिविधियां करने की छूट देना भी एक सहयोग है। दूसरी सहायता इस रूप में हो सकती है कि वह अपने हिलने-डुलने में व्यवस्थित कैसे हो सकता है। इस दृष्टि से उसकी गतिविधियों को अलगायें तथा एक-एक कर उसके सामने रखें। कुर्सी पर बैठना, खड़ा होना, चलना, जमीन पर खिंची लकीर पर चलना, बिना सहारे सीधे खड़ा रहना, आदि गतिविधियां कैसे की जानी चाहिए, यह उसे सिखाना चाहिए। चीजें इधर से उधर कैसे ले जायें, संभाल के साथ कैसे रखें, कपड़े कैसे पहनें, और कैसे खोलें आदि समस्त गतिविधियों से होने वाली क्रियाएं कैसे की जानी चाहिए, यह उसे दिखाना होगा। बच्चा धीरे-धीरे उन पर काबू प्राप्त करेगा।'

'अवधान के खेल अगर बालकों को खेलाएं तो इससे वे बड़ी ही चामत्कारिक रीति से नियंत्रण रखना सीख जाते हैं।'

स्व-शिक्षण की लम्बी-चौड़ी डींगें मारने वाले तो बहुतेरे मिल जाएंगे, किन्तु हमारे रोजमर्रा के जीवन में ऐसी उपयोगी एवं व्यवहार्य बातें बताने वाले शायद ही मिलें। गिजुभाई और उनकी गुरु मोंटेसरी द्वारा निर्देशित यह विशिष्टता हमारे लिए विशेष ध्यान की चीज है। गिजुभाई ने इन तमाम बातों

का व्यावहारिक पक्ष आचरण में ढालकर हमारे सामने सुन्दरता के साथ रखा है।

बाल-अभिव्यक्ति : गिजुभाई के दर्शन का एक और महत्त्वपूर्ण बिन्दु है बालकों की अभिव्यक्ति। मनुष्य के जीवन में अभिव्यक्ति का पर्याप्त महत्त्व है। अभिव्यक्ति द्वारा व्यक्ति स्वस्थ बनता है। अगर अभिव्यक्ति का माध्यम न रहे तो वह स्वस्थ नहीं हो सकता। हम-उम्र मित्रों के साथ अगर हम आधे घण्टे के लिए ही गप्पें मारें तो कैसे हल्के हो जाते हैं—फूल की माफिक। अत्यंत दुखी व्यक्ति अनेक बार बरबस रोने को विवश किया जाता है, ताकि वह स्वस्थ्य-चित्त हो सके। यह भी अभिव्यक्ति का ही एक पक्ष है। चावलों की फसल पक जाने के बाद, या फिर मछलियां पकड़कर लाये मछुहारों को आनन्द में मग्न होकर नाचते किसने नहीं देखा होगा! उड़ीसा, आन्ध्र तथा कोंकणी लोकनृत्यों में यह प्रवृत्ति देखी जाती है। अकेले-दुकेले नौका लेकर समुद्र-संतरण को निकले सागर पुत्रों ने ही अरेबियन-नाइट्स का सृजन किया है, जिसमें उनके सुख-दुख, प्रेम-विरह, मैत्री-करुणा, कल्पनाएं एवं भावनाएं सभी अभिव्यक्त हुए हैं। इस अभिव्यत्ति के बल पर ही घर से हजारों मील दूर ऊपर आकाश तथा नीचे समंदर के मध्य वे कितनी ही रातें और कितने ही दिन गुजार देते हैं। इसी अभिव्यक्ति से मानवीय हृदय विकसित होता है। मानवजाति द्वारा सृजित तमाम चीजें अभिव्यक्ति के ही विविध रूप हैं। अभिव्यक्ति की कला में ही मानव की सृजनशक्ति समाहित रहती है। चित्र, संगीत, कथा, नाटक, लोकगीत, लोककथा, लोकशृंगार, कला-संग्रह छोटी-बड़ी प्रवृत्तियां, बातचीत आदि सब अभिव्यक्ति के ही अलग-अलग प्रकार हैं।

हृदय के विकास तथा सृजनशक्ति के उन्मेष में यह अभिव्यक्ति हमारे लिए सहायक सिद्ध होती है। इस दिशा में गिजुभाई अपनी गुरु मोंटेसरी से भी कहीं-कहीं अधिक जागृत प्रतीत होते हैं। मोंटेसरी ने तो अपनी पद्धति में चित्र, संगीत, व लोक शृंगार पर ही बल दिया था, पर गिजुभाई तो उनसे भी कहीं आगे निकल गए। अपने बाल मन्दिर में इस पक्ष पर उन्होंने पर्याप्त बल दिया था। बालकथा, बालनाटक, लोकगीत, लोककथा, कला संग्रह आदि नयी-नयी चीजों को सम्मिलित किया था। कथा को लेकर उनका मोंटेसरी से मत-भेद था। यह प्रवृत्ति उनकी मौलिक सूझ की परिणति थी। शिक्षण में कथा-प्रवृत्ति के प्रचलन द्वारा उन्होंने बाल-मन्दिर को आनन्द से आप्लावित कर दिया था। यह बात को अत्यन्त सजगता से लेते हैं। अपनी एक पुस्तक की भूमिका में उन्होंने स्वीकार किया है कि 'आज अति बौद्धिक विकास के दुष्परिणाम सामने हैं, ऐसे में हृदय के विकास को हम कदापि न भूल जाएँ, बल्कि इस पक्ष पर सर्वाधिक ध्यान दें।'[1]

1. "प्राथमिक शाळामां कालाकारीनु शिक्षण खंड 1 : गिजुभाई, पृष्ठ 12।"

अभिव्यक्ति से उपजने वाली सृजन शक्ति को हम अपने घरों में किस प्रकार कुचल देते हैं, इस दिशा में गिजुभाई ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है।

आज के घरों की तरफ दृष्टिपात करें। बालकों के सृजनात्मक पक्ष की क्या हालत है, आइए जरा पता लगायें। किसी भी घर में चले जाएँ, यही सुनाई देगा : 'हाय, हाय नासपीटे। ये आटे का चूहा क्यों बनाया? क्या किसी मलेच्छ का घर है यह? ब्राह्मण के घर में कैसा काफिर जन्मा है यह।'... 'मुए, बंद कर अपनी यह रागणी मेरा तो सिर दुखने लगा है। बड़ा आया गाने वाला।' 'ठहर जरा कमबख्त! यह सारी दीवार किसने काली की है? कोयला हाथ में आना चाहिए। खूब बनायी है रेलगाड़ी...पुल...नदी? इससे पेट नहीं भरेगा मुए भूखा मरेगा भूखा?' किसी बालिका को अपनी मौज-मस्ती में स्वतः नाचते देखकर उसकी माँ कहती मिलेगी, 'अरी ओ कुपातर इधर मर, तेरा सिर हल्का करूं जरा? ये नखरे मुझे पसन्द नहीं।' घर में कोई छोटा बच्चा हो और उसमें बड़ी बहन की उसे रमाने की इच्छा हो जाय—वह उसे गोदी में भरकर चूमने लगे, कि बस माँ की फटकार सुनाई देगी 'रांड, मार डालने का इरादा है क्या इसे? हाथों में से गिर पड़ेगा तो? सुला दे नीचे।'

शालाओं में भी बालकों के सृजन को किस तरह अनायास कुचला जाता है, यह भी देख लें जरा। बालक शाला में आकर परस्पर मिलते हैं और घर की बातों व अनुभवों को स्वाभाविक रीति से आपस में व्यक्त करते हैं। जैसे 'हमारे घर में तो प्रमुख चीज ऐसे हैं, वैसे हैं'...'मैंने आज लड्डू खाया था,...' 'हमारे घर में तो आज नया भाई आया है। उसकी हथेलियाँ मुलायम-मुलायम रेशम जैसी और गुलाबी है'...कि भोंहे चढ़ाये और मुँह बिगाड़े मास्टर जी आकर बोलते हैं, 'चलो, चलो, बोलो—एके एक, या लिखो—पैसा 'भट्टी'...।'

'बालकों को वर्णमाला व संयुक्ताक्षर पक्के याद कराये जाते हैं। व्याकरण में एक भी गलती न हो जाये इसलिए मास्टर जी बच्चे के और अपने खून का पानी करते हैं। साल भर में वे तीन कहानियाँ बड़े ही भद्दे तरीके से सुनाते रहते हैं और परीक्षा के वक्त बच्चों के पेट से वापिस उगलवा लेते हैं। कविता को तोता-रटंत की तरह बुलवाते हैं और कहते हैं कि हमने बालकों को भाषा व साहित्य का अध्ययन कराया। ऐसे अध्यापकों से हम साहित्य में नए सृजन की अपेक्षाएँ रखते हैं।'[1]

सृजन के उत्कर्ष एवं अपकर्ष के सम्बन्ध में गिजुभाई ने विस्तार के साथ लिखा है। उनकी मान्यता थी कि हमारे विद्यालय बालकों की सृजन-शक्ति के कत्लखाने बनकर रह गए हैं।

इस अभाव को भरने के लिए उन्होंने अपने बालमन्दिर में अभिव्यक्ति पक्ष पर

1. प्राथमिक शाळामां कलाकारीनु शिक्षण, खंड : गिजभाई।

पर्याप्त बल दिया था। उन्होंने चित्रकला व संगीत का पर्याप्त विकास किया। इस दिशा में प्रसिद्ध यूरोपियन शिक्षाकारों सीजेक तथा डाल्क्यूज के विचारों को उन्होंने अंगीकार किया था। दूसरी ओर कहानी तथा नाटक की अपनी रुचिकर कलाओं का, जिन पर उनका विशेष अधिकार था, बालमन्दिर में प्रचुरता के साथ उपयोग किया। इनके साथ-साथ अभिनय गीत, लोक गीत व लोक कथाओं को आपने संग्रहीत कराया और इनकी स्वरध्वनि से बालमंदिर को गुंजायमान कर दिया। लोकसज्जा तथा कला-संग्रह की प्रवृत्तियों के लिए 'कलामंदिर' की पृथक् इमारत बनी। बालमंदिर के नन्हे-मुन्नों के साथ गिजुभाई की तथा अन्य शिक्षकों की पारस्परिक बातचीत उनके दैनिक कार्यक्रम का एक अंग था। मिट्टी काम, बागवानी, सज्जा, पुष्प संचयन आदि विविध प्रवृत्तियाँ सृजन-पक्ष को उत्कर्ष तक पहुंचाने की दृष्टि से वहां सम्मिलित की गई।

कहानी में काल्पनिकता के मुद्दे पर गिजुभाई का मोंटेसरी से भिन्न मत था। श्री किशोरलाल मशरूवाला से इस बारे में उनकी अच्छी-खासी चर्चा हुई थी। कहानी-कथन में भाषिक अभिव्यक्ति के विकास की संभावनाएँ उनकी दृष्टि से सर्वाधिक थी। यथार्थ की बुनियाद पर निर्मित कल्पनाएँ जीवन में लाभप्रद होती हैं, इस विचार से श्री मशरूवाला को सहमत होना पड़ा।

प्रकृति-परिचय : गिजुभाई के दर्शन में यह एक महत्वपूर्ण विचार है कि 'प्रकृति के परिचय द्वारा बालकों का विकास होता है। वैसे तो मोंटेसरी पद्धति में भी यह विचार स्वीकृत है लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि गिजुभाई के हृदय में इसका महत्व कभी अधिक गहराई तक था। कदाचित् वे प्रथम व्यक्ति थे कि जिन्होंने शिक्षण में प्रकृति-परिचय का समावेश किया। उस समय के अन्य विद्यालयों में यह प्रवृत्ति ढूंढे से भी नहीं मिलती। वैसे काका कालेलकर भी प्रकृति के प्रांगण के मध्य विचरण के आनन्द एवं विकास के पक्षपाती थे।

गिजुभाई ने छोटे-बड़े बाल-प्रवास, पशु-पक्षियों का पोषण, वृक्षों एवं वनस्पति का परिचय, आकाश के तारों का परिचय, तितलियों का जीवन, पक्षियों के घोंसलों की तलाश, अंडों का अवलोकन आदि बहुविध प्रवृत्तियों से बालमंदिर को भर दिया। वे स्वयं पशु-पक्षियों एवं तितलियों के विशेषज्ञ बने, आकाश के तारों की गतिविधियों के ज्ञाता बने, तथा इनके द्वारा स्वयं अपूर्व आनन्द प्राप्त करते-करते बालकों को भी उसमें भागीदर बनाया।

मोंटेसरी ने बागवानी, खेती, एवं प्राणियों के पोषण की शिक्षा द्वारा बालकों को प्राप्त होने वाले लाभ निम्न रूप में गिनाये हैं :

कुदरत की शिक्षा द्वारा नीति-शिक्षा का उद्भव होता है। बनस्पति एवं प्राणी-विकास के अवलोकन से बच्चा मानव-विकास की दिशा में उन्मुख होता है। वह अपने आप वृक्षों तथा प्राणियों की चिन्ता रखकर अवलोकन करता है। उनसे अपना आत्मीय रिश्ता रखता हुआ उनके विकास में आनन्द लेता है।

बागवानी तथा प्राणियों के संरक्षण से बच्चे में नैतिक-विकास का बीजारोपण होता है। वह अपने शिक्षक तथा माता-पिता के हृदय को भी भली-भांति समझने लगता है, कारण यह है कि वनस्पति तथा प्राणियों के पोषण में प्रवृत्त रहने से उसका हृदय भी इन्हीं भावों से परिप्लावित रहता है। साथ ही वैज्ञानिक ज्ञान को प्राप्त करने के माध्यम स्वरूप, अवलोकन-शक्ति तो उसे मिलती ही है।

प्रकृति शिक्षण में स्व-शिक्षण का मूल निहित रहता है। पौधों तथा प्राणियों का पोषण करने वाले बालकों को जब अनुभव द्वारा ज्ञात होता है कि वृक्ष का जीवन वस्तुतः चेष्टापूर्वक दी गई खुराक पर निर्भर करता है, पानी व खुराक न मिलने पर पौधे सूख जाते हैं, प्राणी भूखा मर जाता है—तब मानो उन्हें जीवन का परम कर्त्तव्य हाथ लग जाता है। एकाएक वे सजग हो जाते हैं। उन्हें कानों में निरन्तर एक आवाज सुनाई देने लगती है कि जो काम उन्होंने हाथ में लिया है। उसे कहीं विस्मृत न कर दें। आवाज उन्हें बराबर याद दिलाती रहती है। माता-पिता या गुरु उन्हें कर्त्तव्य बोध करायें या न करायें, धार्मिक-शिक्षा उनमें धर्म बुद्धि उपजाये या नहीं, इसके बावजूद वे अपने मित्रों के लिए अमुक-अमुक देखभाल के कार्य करते ही रहते हैं। इसके मूल में स्व-शिक्षण का सूत्र है।

'अपनी मां की रसोई से शाकभाजी के बचे हुए पत्ते खिला-खिला कर पाले हुये तथा लाड़-लड़ाये हुए खरगोश-युगल के इर्द-गिर्द उनके नन्हें शावकों की किल्लोल करते निहारना अपने आप में कोई कम आनन्द नहीं है। ऐसे ही आनन्द में बच्चों का विकास निहित रहता है।' इस सन्दर्भ में अत्यन्त विस्तारपूर्वक गिजुभाई ने अपनी पुस्तक 'मोंटेसरी पद्धति' में 'प्रकृति शिक्षा' नामक अध्याय लिखा है, जो वस्तुतः पठनीय है।

प्रकृति शिक्षा धैर्य एवं श्रद्धा की पोषक है। जो धैर्य एवं श्रद्धा शास्त्रों के सुनने से नहीं उपजती वह वनस्पति-विकास के अवलोकन से तथा बागवानी आदि कार्यों से उपजती है।

प्रकृति बालक को उदारता तथा समभाव का सच्चा पाठ सिखाने वाली एक कुशल शिक्षिका है। पशु-पक्षियों के पोषण तथा बागवानी द्वारा बालक ये बातें आसानी से सीख जाते हैं।

अपने सिद्धान्तों में गिजुभाई ने उक्त सभी बातें स्वीकार की हैं। ऋषि-मुनियों के तपोवनों में प्रकृति की गोद में विकसित भारतीय संस्कृति को ये सभी बातें अनुकूल ही प्रतीत होती हैं। गिजुभाई ने स्वीकार किया है कि प्रकृति के ज्ञान से बालकों का बौद्धिक विकास होता है। उनकी सृजन शक्ति को पोषण मिलता है। प्रकृति-शिक्षा की प्राण-पोषकता पर उन्होंने सर्वाधिक ध्यान दिया है। इसी से वे कहते हैं :

शरीर व आत्मा के नैसर्गिक विकास का यही तरीका है कि बालक को

सीधे ही जीवन्त प्रकृति के प्राणवान हाथों के सहवास में छोड़ दिया जाय तथा सृष्टि के समृद्ध भण्डार से जो-जो चाहिए वह उसे स्वतन्त्रता से लेनादेना चाहिये। प्रकृति के साथ बालक का ऐसा सम्बन्ध करना हो तो कृषि कर्म, पौध एवं पशु-पक्षी पोषण आदि कामों में लगा देना चाहिए। इस प्रकार उसे प्रकृति से भली-भाँति परिचित कराना चाहिए।

इन्द्रिय शिक्षण : बालक के सर्वांग विकास में गिजुभाई ने इन्द्रिय-शिक्षण को अनिवार्य माना है। यह सिद्धान्त उन्होंने मोंटेसरी से ग्रहण किया था। मोंटेसरी पद्धति का सारा झुकाव इन्द्रियों के परिपूर्ण विकास पर अवलम्बित है। कारण कि इन्द्रियां ज्ञान के द्वार हैं, या कि महल की खिड़कियां हैं, जिनसे बाह्य जगत का ज्ञान भीतर आता है तथा भीतर विद्यमान शक्तियां बाहर व्यक्त होती हैं। कई विद्वान् इन्द्रियों को ज्ञानार्जन के औजार कहते हैं। ज्ञान की खदानों से मनुष्य इन औजारों के द्वारा ज्ञान-रत्न खोदकर निकाल सकते हैं, ऐसी उन लोगों की मान्यता है। लेकिन जब तक ज्ञान प्राप्ति के ये औजार मजबूत, पैने, चमकदार, गतिवान एवं अपने आप में पूर्ण न हों तब तक ज्ञान-प्राप्ति की प्रक्रिया में निरन्तर कोई कमी रही जाती है। औजार वस्तुतः पानीदार, मजबूत तथा प्रयोग में लाये हुए होने चाहिए। शिक्षाशास्त्र की दृष्टि से इन साधनों को पूर्ण बनाने का काम शिक्षाविदों का है। इस दृष्टि से मोंटेसरी पद्धति के जो साधन प्रबोधक-साहित्य (डाइडेक्टिक एपरेटस) के नाम से पहचाने जाते हैं, वे इन्द्रियों की शास्त्रीय शिक्षा को सम्भव एवं सफल बनाने के लिए ही तैयार किये गए हैं।

डॉ० मोंटेसरी की दृढ़ मान्यता है कि 'इन्द्रियों के विकास के बाद ही बुद्धि का यथार्थ विकास होता है। बुद्धि का सम्पूर्ण विकास इन्द्रियों के विकास पर ही अवलम्बित है। इन्द्रियों की शिक्षा के इस सुदृढ़ आधार पर ही बालक का विशुद्ध एवं दृढ़ मस्तिष्क निर्मित होता है।'

अपनी गुरु मोंटेसरी के मन्तव्य से सहमति व्यक्त करते हुए गिजुभाई लिखते हैं कि 'बालक को जीवनशास्त्र तथा समाजशास्त्र की दृष्टि से सही शिक्षा देनी हो तो उसकी इन्द्रियों की सर्वांगी शिक्षा का प्रबंध प्रारम्भ से ही किया जाना चाहिये। इसके लिए सही समय तीन से सात वर्ष की आयु के बीच की अवधि है। यह काल बच्चे की शरीर-रचना का है। इस काल में इंद्रियों के शिक्षण से उसकी अवलोकन शक्ति विकसित होती है। उसकी बौद्धिक शक्ति भी जागृत होती है। बच्चा अपने चतुर्दिक, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति को यथार्थ रीति से समझ सकता है, उसके अनुकूल हो सकता है या उसके प्रतिकूल उस पर काबू पा सकता है। ऐसी शक्ति से रहित बालक समाज में रह ही नहीं सकता। अतः इस आयु में इन्द्रियों का सम्यक् शिक्षण अनिवार्य है।'

'कई लोग ऐसा मानते हैं कि देखने वाली आँखों को और सुनने वाले कानों को किसी विशेष शिक्षण की आवश्यकता नहीं होती। इन्द्रियों को उपयोग में लाना ही उनका शिक्षण और विकास है। पर सच यह है कि हम अपनी इन्द्रियों को आवश्यकतानुरूप ही दैनिक व्यवहार में लाते हैं। इससे जितने परिमाण में इन्द्रियों का उपयोग होता है, उतने परिमाण में ही उन्हें शिक्षण मिलता है। याने शिक्षण का क्षेत्र सीमित रहा। पर विकास की व्यापकता तथा उच्च स्तर के लिए इन्द्रियों का विशेष शिक्षण अनिवार्य है। हेलन केलर के सम्बन्ध में उसकी स्पर्शेन्द्रिय का विकास जितने उच्च स्तर का था, उतने ही उच्च स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति की प्रत्येक इन्द्रिय का विकास बेशक सम्भव है—ऐसी आज के शिक्षाविदों की मान्यता है।'

शीला रेडिस के वक्तव्य का उद्धरण देते हुए गिजुभाई आगे लिखते हैं कि 'बालक की इंद्रियों का परिपूर्ण विकास होने पर ही सारी दुनिया उसे जीवंत लगती है। दुनिया के भिन्न-भिन्न पदार्थ, ध्वनियां, रस, रूप, गंध, स्पर्श आदि बाहों को फैलाकर बालक का स्वागत इन शब्दों में करते हैं—'यहां आओ, मेरा रंग ऐसा है, मेरा रूप ऐसा है, मेरी गंध ऐसी है, मेरी ध्वनि ऐसी है।' जब बालक को प्रकृति अथवा मनुष्य से ऐसा आमंत्रण मिलने लगे तो समझ लेना चाहिये कि इन्द्रियों का शिक्षण पूर्णता पर पहुंच गया है।

बालकों के साथ काम करते गिजुभाई ने अपना एक संस्मरणात्मक अनुभव इन शब्दों में लिखा है।

'छोटे बालकों को घुमाने तख्तेश्वर ले गया था। यह ऊंचाई पर स्थित एक मंदिर है, संगमरमर का बना हुआ।'

बच्चे मंदिर में खेल रहे थे। मैं उन्हें बैठा-बैठा देख रहा था। चमन बोला—गिजुभाई, इस पत्थर पर हाथ तो फिराओ, कितना चिकना-चिकना है कांच जैसा।

विभा दौड़ी हुई आई और कहने लगी—'चलो, चलो, गिजुभाई वहां उस जगह त्रिकोण और गोलाकार खुदे हुए हैं।'

चंदू बोला—'गिजुभाई यहां पर कैसी हवा आ रही है। मेरी त्वचा को बहुत सुहा रही है, नरम-नरम लग रही है।'

इसी बीच राधा और रमा बातें करते हुए आए। अंगुली से दिखाते हुए मुझको कहने लगे—'गिजुभाई, वह तालाब नीला क्यों दिख रहा है—पता है? आकाश नीला है ना, इसीलिए।'

मुझे लगा कि ये बालक बाल मंदिर में लकड़ी के गट्टे, रंगों की तख्ती, जोमेट्री बॉक्स आदि उपकरणों को व्यवहार में लाते-लाते ज्ञानवान हो गये हैं। मोंटेसरी पद्धति में जिसको इन्द्रियों का व्यापक विकास कहा जाता है, वह इसी का नाम है। रंगों की तख्तियां बालकों ने देखीं और पक्षियों के रंगीन पंख, रंग-बिरंगा आकाश आदि अगणित वस्तुएं देखने को उनकी आंखें खुल गईं। ऐसे ही इंद्रिय विकास के अन्य उपकरणों को काम में लाने से बालकों के समक्ष दुनिया की तमाम वस्तुएं अपना-अपना रंग-रूप व्यक्त करने लगती हैं।

इस प्रत्यक्ष अनुभव को मैं कैसे भूल जाऊं।'

इन्द्रिय-शिक्षण में 'आइसोलेशन ऑफ द सेंसेज' के सम्बन्ध में आज अनेक शिक्षाविद मोंटेसरी पद्धति के साथ सहमत प्रतीत नहीं होते। गिजुभाई की ये विचार सहज स्वीकार्य हैं।

शिक्षक का स्थान—शिक्षण में अध्यापक का स्थान क्या है, इस सम्बन्ध में गिजुभाई ने विशद विस्तार से लिखा है। उनके अनुसार :—

(अ) शिक्षक में पहला गुण होना चाहिए अवलोकन करने का। अवलोकन शक्ति सहजतया प्राप्त नहीं होती। शिक्षक धैर्यवान हो। बालकों को सीख देने के बजाय उसमें उन लोगों से सीखने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। वह उनकी उतनी ही सहायता करे, जितनी अपेक्षित है। गैर जरूरी सहायता उनके विकास में बाधक बनती है।

(आ) **वाणी का संयम** : शिक्षक का दूसरा गुण है। जहाँ तक सम्भव हो वहाँ मौन कठोर व्रत धारण करें। जहां पर विवशता ही आ पड़े या कि व्यक्तिगत शिक्षण देने हेतु वाणी प्रयोग की आवश्यकता खड़ी हो जाये वहां भी शिक्षक वाणी के व्यवहार में अति कृपणता से काम लें। दक्षिणामूर्ति स्तोत्र के एक श्लोक की एक पंक्ति मुझे स्मरण आती है :

गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्न संशयाः।

(इ) शिक्षक का एक अन्य गुण है **निरभिमान**। वह बालक के विकास में मात्र सहायता प्रदान करने वाला है। स्वयं उसको बालक से सीखना है। उसमें इतनी नम्रता होनी चाहिए कि उससे कहीं कोई त्रुटि न हो जाय, अथवा बालकों के साथ कहीं कोई अन्याय न हो जाय इसके लिए हमेशा सावधान रहे।

(ई) मोंटेसरी के शिक्षक में **मनोविज्ञानवेत्ताओं** वाले गुण होने चाहिए। निरीक्षण करने की शक्ति, सावधानी, उद्योग, धैर्य, निर्व्यग्रता, तत्काल निर्णय की शक्ति तथा विकास आदि गुण तो होने लाजिम हैं। उसकी दृष्टि तथा बालक की दृष्टि का मेल एक नाजुक यन्त्र है—यह ख्याल उसके मन में निरंतर बना रहना चाहिये। इसके अलावा मनोविज्ञान, शरीर-विज्ञान आदि का ज्ञान उसमें न हो तो शिक्षक के रूप में वह अपूर्ण है।

(उ) अत्यधिक महत्त्वपूर्ण गुण यह है कि बालक के व्यक्तित्व के प्रति उसमें अगाध विश्वास हो, गहरी सहानुभूति हो। खास तौर पर बालक में उसका श्रद्धाभाव जरूरी है।[1]

'मोंटेसरी पद्धति' शीर्षक अपनी पुस्तक में गिजुभाई ने शिक्षक की भूमिका के सम्बन्ध में पर्याप्त विचार व्यक्त किये हैं। वे कहते हैं—'जीवन का स्वतः विकास होता है। इसका अध्ययन करने, इसका गूढ़ रहस्य जानने अथवा इसकी

1. स्वतंत्र बाल शिक्षण : गिजुभाई [स्वतन्त्र बाल शिक्षण प्रचार माला] पृष्ठ 37।

गतिविधि को चित्रित करने के लिए प्रथम तो अवलोकन करने की आवश्यकता है और फिर उसमें बाधा डाले बगैर उसका अर्थ समझने की आवश्यकता है।'

'शिक्षक की दृष्टि वैज्ञानिक की भाँति पैनी व पूर्वाग्रहों से मुक्त हो तथा संत पुरुषों की भाँति प्रीतिमय एवं आध्यात्मिक होनी चाहिए। विज्ञान की प्रामाणिकता और सन्त की पावनता—शिक्षक की निर्मिति के ये दो आधार स्तम्भ हैं। शिक्षक की वृत्ति शास्त्रीय भी हो तथा दैवी भी।'

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि गिजुभाई के विचार डॉ० मोंटेसरी के साथ सहमतिपरक हैं, भिन्न नहीं।

दर्शन जैसा जीवन

यह तो गिजुभाई की एक विशेषता ही थी कि उन्होंने अपने विचारों के अनुसार एक सफल शिक्षक का जीवन जिया था। सिद्धान्तों का बखान करना एक बात है, और उनके अनुरूप आचरण करना या कि उन्हें जीवन में ढालना दूसरी बात है, जो कि अत्यन्त दुष्कर है। वस्तुतः दोनों चीजें संसार में शायद ही कहीं एक साथ दिखाई दे।

'चित्ते वाचि क्रियायाम् च साधूनाम् एकरूपता।'

बाल विकास का प्रयोगस्थल : बाल मन्दिर

उनके शिक्षा दर्शन में एक बात यह भी है कि बाल मंदिर को बाल-विकास के अवलोकन व प्रयोग का स्थान बनाया जाय। यही विचार मोंटेसरी का भी था। इस दृष्टि से देखें तो पूरे देश की शिक्षा में, और खास तौर पर गुजरात की शिक्षा में—गिजुभाई के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता कि उन्होंने इसे दृढ़ बुनियाद प्रदान की थी। आज भी एक तरफ तो रूढ़ सरकारी प्राथमिक शालाओं को देख लें, और दूसरी ओर मात्र इस प्रगतिशील विचार को। उन्हें इस विचार तक पहुँचने के लिए कितनी मंजिलें पार करनी पड़ेंगी यह अनुमान लगाने की बात है। आज से साठ साल पहले उन्होंने न सिर्फ इस विचार को स्वीकार किया था अपितु पूरी निष्ठा के साथ बाल मन्दिर में इसका सफल क्रियान्वयन भी किया था। यह उनकी मामूली उपलब्धि नहीं है।

वे कहते थे—'बालकों के लिये पढ़ाई के विषय अनेक हों, मैं यह नहीं कहता, कारण यह कि उन्हें क्या पढ़ना चाहिए और क्या नहीं पढ़ना चाहिए, अथवा उन्हें क्या पढ़ाना चाहिये और क्या नहीं पढ़ाना चाहिए, इसका अंतिम निर्णय मैं अब तक कर नहीं पाया हूं। ऐसा करना उचित होगा या अनुचित, हितकारी होगा या विपरीत, यह मैं अब तक समझ नहीं पाया हूं। लेकिन दृढ़तापूर्वक मैं यह मानता हूं कि बाल-विकास के अवलोकन के प्रयत्न एवं प्रबन्ध में बाल मंदिर

के बालकों का शिक्षण-प्रबंध भी साथ-साथ बनता जाएगा ।'

'यदि हम सिर्फ अपनी मर्जी के अनुसार ही शिक्षा देना नहीं चाहते तो बाल विकास के कतिपय नियमों की जानकारी आवश्यक है, याने हम मनोविज्ञान को जानें-सीखें ।'

'...मनोविज्ञान की वास्तविक कुंजी तो सहज-स्वाभाविक स्थिति में विचरते हुये बालक के अवलोकन में निहित है । इस विचाररूपी उषा के दर्शन आज हम सिर्फ शिक्षा के आकाश में ही कर सकते हैं । बिने-सायमन द्वारा प्रतिपादित जांच-विधि इसी वजह से अस्वीकार्य है कि उनके प्रस्तुत आंकड़ों एवं निष्कर्षों के पीछे दंड एवं पुरस्कार, अस्वाभाविक और अधिकांशतया अशास्त्रीय पद्धति, स्वेच्छया निर्मित पाठ्यक्रम तथा समय विभाजन चक्र, साथ ही साथ सामाजिक, राष्ट्रीय एवं परम्परागत अच्छे-बुरे संस्कारों इत्यादि या कि छांटे हुए, बांधे हुए, कलुषित मन का अभ्यास है । प्रेयर तथा बोल्डविन ने जो व्यक्तिगत प्रयोग किये हैं वे मात्र उनके अपने बच्चों पर ही हैं ।'

'अत: मनोविज्ञान की यथार्थ शोध के लिए शालाओं को शिक्षण कार्य के बजाय प्रयोगशाला बनना होगा ।'

कदाचित् इसीलिए गिजुभाई ने मोंटेसरी के शिक्षा-सिद्धान्तों के निम्न दो बिन्दुओं को विशेष महत्त्व प्रदान किया है :

1. शालाएं मानसिक विकास के अवलोकन की प्रयोगस्थली हैं ।
2. स्वतन्त्र बालकों का अवलोकन ही वास्तविक अवलोकन है ।

गिजुभाई की वैज्ञानिक दृष्टि

'बाल शिक्षण मने समझायु तेम' नामक पुस्तक में गिजुभाई की वैज्ञानिक दृष्टि के ब्यौरेवार दर्शन होते हैं । विशेषतया पुस्तक के तीसरे प्रकरण के अन्तर्गत । दो-एक उदाहरण यहां दृष्टव्य हैं :

'डॉ॰ मोंटेसरी ने बालकों के जिन व्यापारों का अवलोकन किया है, वे व्यापार सम्पूर्ण हैं, ऐसा मानने का कोई तर्क नजर नहीं आता । उन्होंने जितनी सच्चाई व्यक्त की है, उतने की ही चर्चा की है । इसी से नये अवलोकन करने का मार्ग खुला हुआ है ।'

'इंद्रिय विकास में स्वाद तथा घ्राण सम्बन्धी प्रयोग अभी करने शेष हैं । खगोल, भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र, वनस्पति शास्त्र, प्राणीशास्त्र आदि-आदि विषय के सम्बन्ध में बालकों के स्वाभाविक व्यापार कैसे होंगे, इस बारे में अवलोकन का काम अभी अधूरा ही है । इन नई दिशाओं में अगर हम प्रयत्न कर सकें तथा सिद्धान्तों के अनुसार नये साधन बना सकें तो वह आद्यप्रणेता डॉ॰ मोंटेसरी को एक भेंट होगी ।'

'इटली के बालक मेंढकों को पत्थरों से मारने में रुचि लेते हैं । यह क्रिया हिन्दुस्तान में तितलियों को निर्दोष भाव से पकड़कर उड़ाने में परिणत हो, तभी तो डा॰ मोंटेसरी की पद्धति का रहस्य सार्थक है । मेंढक खाने वाले इटली के बालक उन्हें मारें, तथा अहिंसक एवं दयालु देश हिन्दुस्तान के बालक तितलियों को पकड़ें, उनके रंगों में मजे लें और फिर उन्हें छोड़ दें—इन दोनों क्रियाओं में मोंटेसरी पद्धति की दृष्टि से बाल मन के ही दर्शन होते हैं । अंतर सिर्फ देश, काल व परिस्थिति का ही है । परिस्थिति के अंतर को लेकर देश व काल जो सार्वभौम मानस को मर्यादित करता है, वह किसी भी प्रकार का विवाद उपस्थित नहीं करता । हम देखें कि बाल मंदिर मोंटेसोरियन बन जाएगा, तथापि इटली, अमेरिका तथा यूरोप की शालाओं से इनका रूप, रंग, ढंग तथा कई बार तो साधन-उपकरण भी भिन्न हो जायेंगे ।'

बाल-विकास और शाला का वातावरण

गिजुभाई यह बात भलीभाँति समझे हुए थे कि बाल-विकास शाला का वातावरण कितना महत्त्व रखता है । इस बारे में उनके लेखों को ध्यान से पढ़ने पर ज्ञात होता है कि वे मोंटेसरी से सहमत थे ।

मोंटेसरी का कहना है कि 'बालक को उसके जीवन में उत्तम से उत्तम स्थितियां जुटायें, उसे स्वतन्त्रता दें, तो निश्चय ही उसकी पढ़ाई भी उत्तम ही होगी ।'

लेकिन उत्तम से उत्तम स्थितियों से क्या मतलब है ? 'अपने (शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक) विकास के लिए प्रत्येक व्यक्ति को जो कुछ भी अपेक्षित है वह सब जिस वातावरण में उपलब्ध हो सकता है वही वातावरण जिंदगी के विकास हेतु उत्तम होता है ।'

तीनों प्रकार के विकास की दृष्टि से शाला का वातावरण कैसा होना चाहिए, इसके सूक्ष्म विवरणों की 'मोंटेसरी पद्धति' शीर्षक पुस्तक के एक प्रकरण में चर्चा की गई है । आइए, कुछ विवरणों को पृथक से देखें :

'शारीरिक विकास के लिए खुली हवा, स्वच्छता, अनुकूल समशीतोष्ण वातावरण (टेम्परेचर), स्वच्छ पाखाने व पेशाबघर, स्नानागार, धोने योग्य स्कूल का आंगन, पूरे कमरे को तरोताजा कर देने वाली चौड़ी खिड़कियां, पौष्टिक आहार एवं नाश्ता, बाग तथा विशाल छतें या बरामदे आदि प्रत्येक शाला के लिए अनिवार्य चीजें हैं ।'

'शारीरिक स्वास्थ्य की भाँति मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी शाला के कमरे खूब विस्तृत होने चाहिए । शारीरिक स्वास्थ्य के निमित्त जितना स्थान आवश्यक हो, उससे दुगना स्थान मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है ।'

'तमाम फर्नीचर (टेबल, कुर्सी, श्यामपट्ट, दरी, पानी के बर्तन) हल्के, कम

वजनी, बच्चों के कद के हों, जिन्हें वे काम में ला सकें। उपकरण हल्के होंगे तो आसानी से उन्हें इधर-उधर लाया ले जाया सकता है। पर बालकों को उतना ही सावधान और धैर्य रखना पड़ेगा कि कहीं टूट न जायें, टेढ़े-मेढ़े या कि मैले न हो जायें। हल्के उपकरणों को काम में लाने से बच्चे उनकी कठोरता अनियंत्रण एवं अव्यवस्था से धीरे-धीरे स्वतः मुक्त हो जाते हैं। यानें योग्य उपकरण मिलें तो सबसे अच्छा है।'

'शाला का सौन्दर्य प्रधान वातावरण अत्यन्त महत्त्व का होता है। सौंदर्य से ध्यान की प्रेरणा मिलती है, साथ ही विश्रांत मन को आराम, शान्ति व आनंद मिलता है। अगर हम शालाओं को मनुष्य के विकास की अवलोकन-भूमि बनाना चाहते हैं तो शाला को सौंदर्य से विमुख नहीं किया जा सकता।' हमारी लोक कलाएँ इस सौंदर्य के वातावरण को निर्मित करने में मददगार हैं। सस्ते में ही अनेकानेक अनिवार्य उपकरण हमें सुलभ हो जाते हैं।

गिजुभाई की धारणा थी कि बालकों को विद्यालयों में प्रयोजनीय व्यवहार की प्रवृत्तियां स्वतन्त्रतापूर्वक मिलनी चाहिए। छोटे-छोटे सूप, झाड़ू, साबुन के छोटे-छोटे टुकड़े, पानी भरने के छोटे-छोटे बर्तन, छोटे व हल्के फर्नीचर, इतनी ऊंचाई की खूंटियाँ कि बच्चे स्वयं कपड़े टांग सकें, स्वयं पहन सकें ऐसे कपड़े—ऐसी-ऐसी चीजें शाला में होनी चाहिए। इन उपकरणों के प्रयोग से बच्चे अपना व्यवहार सुन्दर एवं पूर्ण बना सकते हैं।

बाल मित्रों का सहवास

साथ में पढ़ने वाले बाल मित्रों को सहवास का अवसर देना उनके मानसिक विकास में मदद देता है। इन्द्रियों की शिक्षा करने वाला प्रबोधक साहित्य (डाइडेक्टिक एपरेटस) भी उनकी मानसिक-निर्मिति में कम महत्त्वपूर्ण नहीं होगा।

'आध्यात्मिक विकास के लिए संगीत, कला एवं साहित्य के अभ्यास के साथ-साथ सत्संग एवं शाला का आदर्श वातावरण अनिवार्य है।'

बाल मन चंचल नहीं

'बालकों का चित्त चंचल होता है, क्षण भर को भी वह शान्त नहीं रह सकता' गिजुभाई इस मान्यता को गलत बताते हैं। वे बच्चों की एकाग्रता में सहज ही बाधा डालने वाले विक्षेपों से दूर रहने का निवेदन अवश्य करते हैं। शोरगुल के स्थान पर शाला का होना, बच्चों की संख्या के अनुपात में उपकरणों एवं स्थान की न्यूनता, सामग्री का बेतरतीबी से बिखरा हुआ होना अथवा समय पर उपयोग लायक न होना—ये सब विक्षेपकारी तत्त्व हैं।

गिजुभाई की तत्त्व दृष्टि

गिजुभाई के जीवन दर्शन के मुख्य-मुख्य अंशों को हम ऊपर के पृष्ठों में देख चुके हैं। उन्होंने अपने विचारों के सम्बन्ध में लिखा भी है—'यह पद्धति—यह मात्र शिक्षण पद्धति ही नहीं है, अपितु जीवन का एक दर्शन है। हिमालय के उत्तुंग शिखर पर चढ़कर चारों ओर नजर दौड़ाएं तो आसपास का सारा प्रदेश जैसे हस्तामलकवत् हो जाता है—गहन गुफाएं, ऊंचे पर्वत, विशाल महानद तथा नन्हें तृणांकुर इत्यादि सब जैसे एक दृष्टि में स्पष्ट, सुसंगत, सार्थक एवं सुन्दर लगते हैं, वैसे ही शिक्षण, समाज, धर्म आदि से ऊपर उठकर इस नूतन दृष्टि से चतुर्दिक अवलोकन करने पर समझ में आता है कि यही तत्त्व जीवन-दर्शन है।'[1]

वैसे ऊपर के पृष्ठों में गिजुभाई के जीवन दर्शन के विभिन्न मुद्दों का हम एक-एक करके अध्ययन कर चुके हैं तथापि यह दावा नहीं कर सकते कि उन्हें अथ से इति तक हृदयंगम कर लिया है। जीवन-दर्शन का निर्माण ब्रह्मसान्निध्य तक जिन्दगी में सतत जागरूक रहते हुए और आत्मा को क्रमशः विकसित करने की परिणति स्वरूप होता है। गिजुभाई की आत्मा के विकास को इस लघु प्रकरण में अपनी वैखरी (वाणी) द्वारा व्यक्त करने की चेष्टा करूं तो भला उसके सम्पूर्ण दर्शन का दावा मैं कैसे कर सकता हूं; 'रघुवंश' के प्रारम्भ में महाकवि कालिदास ने जैसी विवशता का भाव अनुभव किया, मेरे अन्तःकरण में भी वैसे ही भाव उदित हो रहे हैं:

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्वः चाल्पविषयामतिः।
तितीर्षुः दुस्तरं मोहात् उडुपेनास्मि सागरम्॥

इस दर्शन की विशेषता

गिजुभाई के जीवन दर्शन की महत्ता को हम कहीं अपने दृष्टि पंथ से परे न कर बैठें। शिक्षा की विकट उपाधियां लेकर उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में पदार्पण नहीं किया था। वकालत करते-करते किसी एक आंतरिक मनोव्यथा की वजह से वे इस दिशा में प्रवृत्त हुए थे। विदेशों में भी विशेष नहीं घूमे थे। पश्चिमी देशों की नवीन शिक्षण संस्थाओं का भी अवलोकन उन्होंने नहीं किया था। बालकों के प्रति लगाव या कि बाल भक्ति वश उनकी अच्छी शिक्षा के इरादे से उन्होंने शिक्षा की कुछ पुस्तकें अवश्य पढ़ी थीं ताकि अपनी बाल-शिक्षण पद्धति को उत्तम, सरस व कल्याणकारी बना सकें। अपने दैनिक अनुभवों और उनसे प्राप्त निष्कर्षों की गिजुभाई ने उन शैक्षिक पुस्तकों से तुलना की थी

1. "बालशिक्षण मने समझायुं तेम" : गिजुभाई

और अनेक वर्षों की साधना के उपरांत अपनी निजी फिलोसफी विकसित की थी ।

उनकी फिलोसफी में उनके स्वानुभव का स्वर झंकृत है । उसे दिवास्वप्न (युटोपिया) नहीं कहा जा सकता । हालाँकि 'दिवास्वप्न' उनकी शैक्षिक प्रयोगों की पठनीय पुस्तक है । गिजुभाई की फिलोसफी व्यवहार में ढली है और आज भी व्यवहार में लाने योग्य है, पथ-प्रदर्शक है । उनकी दृष्टि क्षितिज के उस पार तक पसरी थी, इसीलिए उनके विचारों की क्रांतिधर्मिता आज भी कम नहीं हुई । जीवन कैसा होना चाहिए, इसका स्पष्ट दर्शन उन्हें हुआ था इसीलिए जीवन निर्माण की शिक्षा की उनकी रूपरेखा स्पष्ट है, उज्ज्वल और सर्वांग सुन्दर है । गांधी जी के देहावसान के बाद नयी तालीम के सामने अस्तित्व का संकट आ खड़ा हुआ है, जबकि गिजुभाई के समक्ष श्रद्धापूर्वक हमारा मस्तक नत हो जाता है कि उनकी मृत्यु के बयालीस-तयालीस वर्षों के बाद भी उन विचारों का महत्व घटा नहीं है । ज्यों-ज्यों वर्ष बीत रहे हैं, त्यों-त्यों उनके विचारों को व्यवहार में ढालने की अधिकाधिक आवश्यकता प्रतीत होती है ।

बापू ने कदाचित् इसीलिए उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए कहा था : 'गिजुभाई के बारे में लिखने वाला मैं कौन ? उनके उत्साह और उनके विश्वास ने मुझे हमेशा आकृष्ट किया था । उनका कार्य आगे विकसित होगा ।'

5

गिजुभाई का योगदान-2

बाल शिक्षा पद्धति

सतही दृष्टि से देखने वाले को गिजुभाई बाल-मन्दिर में हास्य-विनोद करते, लाड़-दुलार करते, प्रतीत होते हैं, पर गिजुभाई की दृष्टि से यह एक जीवन-साधना थी । बालकों के प्रति शिक्षकों एवं माता-पिता की व्यवहार दृष्टि को वे बदलना चाहते थे । बालकों के जीवन की ओर सबों में प्रेम व सहानुभूति विकसित करना चाहते थे । बाल-विकास को अवरुद्ध करने वाली समस्त दीवारें वे ढहा देना चाहते थे । श्री जुगतराम दवे के शब्दों में कहें तो 'ये विचार उनकी प्रत्येक क्रिया एवं शब्दों में विद्यमान थे । यही कारण है कि उनकी वाणी से हुक्के का गीत भी उपनिषद् के श्लोकों जैसा बन जाता और सूपड़कन्ना राजा रामायण-महाभारत की कथा जैसा बन जाता ।'

—रामनारायण ना. पाठक

आज के युग की अत्यन्त आवश्यक प्राथमिकता है शिक्षा-पद्धति का रूपान्तरण करना । इस कार्य के लिए जो व्यक्ति मैदान में कूदता है वस्तुतः वही व्यक्ति मनुष्य के उद्धार के लिए संघर्ष करता है ।

—सर्गेइ [डॉ० मोंटेसरी के गुरु]

सुन्दर बाल-शिक्षण पद्धति

अब हम बाल-शिक्षक के रूप में गिजुभाई के योगदान पर दृष्टिपात करें । हमारे यहां कहावत है आधा मन उपदेश की बजाय, छटांक भर आचरण करना कहीं ज्यादा अच्छा ।' गिजुभाई को अपने जीवन में तथा शिक्षा क्षेत्र में काम करते-करते जो नये विचारों के दर्शन हुए थे, उन्हें उन्होंने प्रयोगों की सान पर चढ़ा दिया था और उनके आधार पर सफलतापूर्वक क्रियान्वित करके एक सुन्दर शिक्षण पद्धति हमें सौंपी थी । बाल-शिक्षण की इस अभिनव पद्धति का भारतीय शिक्षा जगत में कम मूल्य नहीं है ।

नयी तालीम संघ गुजरात के भूतपूर्व अध्यक्ष तथा जाने माने शिक्षाविद् श्री मूलशंकर भट्ट की मान्यता है कि 'गिजुभाई की इस भूमिका का महत्व नगण्यप्राय अथवा ऐसा-वैसा नहीं। नये विचारों के आधार पर भी बाल-शिक्षण सफल हो सकता है। इस बात को उन्होंने प्रयुक्त करके प्रमाणित कर दिखाया। रूसो ने अपने ग्रन्थों में शिक्षा सम्बन्धी मोटे-मोटे सिद्धान्तों का बखान तो खूब किया है, पर उसने प्रत्यक्ष तयाप्रयुक्त करके नहीं दिखाया। फ्रोबेल तथा पेस्तोलोजी ने प्रयोग अवश्य किये हैं पर कदाचित गिजुभाई जितनी प्रचुरता के साथ नहीं। इसी स्पष्टता एवं प्रयोग धर्मिता के कारण उनके विचार शिक्षकों एवं समाज के गले उतर जाते थे। माता-पिता तक तत्काल उनकी बातों को स्वीकार करते। नयी तालीम के सिद्धांत इतने उत्तम हैं, फिर भी जिस तरह के दोषों के कारण नयी तालीम की बात समाज के अथवा माता-पिता के अभी भी तत्काल गले नहीं उतरती।'[1]

श्री दक्षिणामूर्ति संस्था के बाल-मन्दिर में वर्षों तक श्रम करके, प्रयोग करके गिजुभाई ने अपनी यह स्पष्ट एक व्यापक पद्धति निर्मित की थी। आज भी गुजरात के सैंकड़ों बाल-मंदिर इसी पद्धति के सहारे अपनी सामर्थ्य-शक्ति से बाल-शिक्षण का काम कर रहे हैं। किसी-किसी स्थान पर तो ये बाल-मंदिर इतने सुचारू रूप से चल रहे हैं कि नन्हें-मुन्नों को वहाँ किल्लोल करते देखकर जी आह्लाद से भर जाता है।

बाल मंदिर का कार्यक्रम

आइए, हम गिजुभाई के बाल-मंदिर का प्रातःकाल से शाम तक का कार्यक्रम देखें।

'बाल मन्दिर की ऊपरी सीढ़ी पर खड़े गिजुभाई तितलियों-पतंगों की तरह उड़ते आते बालकों का प्रेम-पूर्वक स्वागत करते हैं। दोनों हाथ जोड़कर, नम्रता एवं प्रेम के साथ दोनों ओर से नमस्कार का आदान-प्रदान होता है। गिजुभाई सबों के हाथ, नख, आंख, कान, बाल, दांत देखते हैं। कमरे में बालक गोलाकार गिजुभाई के सामने बैठ जाते हैं, और फिर घर की बातें शुरू होती हैं। वे एक-एक बालक के हृदय में झांकते हैं। बालकों के साथ साधारण से प्रश्नों पर जो सामान्य उत्तर सामने आते हैं उन्हें सुनकर गिजुभाई के अन्तःकरण में असामान्य संवेदनाएँ जाग उठती हैं। प्रत्येक बालक की विकास भूमि का वे अनुमान लगाते हैं और वहां से आगे बढ़ने का मार्ग सोचने लगते हैं। वात्सल्यमयी माँ की तरह वे पिछड़े हुए, अविकसित, दीन-दुखी तिरस्कृत, मालिन एवं खिन्न बालकों को अपनी बाहों में भर लेते हैं और इस तरीके से उनकी प्रतिभा को विकसित करने का मार्ग प्रशस्त करते हैं कि बच्चे बेखबर रहते हैं। बातों ही बातों में वे इस तरह से लड़ते हैं कि उनके सामने सबों के

1. श्री मूलशंकर भट्ट से बातचीत के आधार पर।

दिल अपने आप खुल जाते हैं।

'इसके उपरान्त संगीत के कक्ष में बालक चींटियों की तरह घेरा बनाकर आ बैठते हैं। ठीक सामने संगीतशास्त्री श्री चुन्नीभाई बैठते हैं दिलरुबा लेकर; एक तरफ तबलावादक और दूसरी तरफ गिजुभाई। वातावरण शांत, स्वस्थ, नीरव। गिजुभाई सीधे बैठते हैं तनकर, दोनों हाथ घुटनों पर। बच्चे भी ठीक उन्हीं के आसन का अनुकरण करके बैठते हैं।'

और गिजुभाई गायन शुरू करते हैं। 'बिल्ली बाघ की है मौसी। ढूंढ़ के चूहे खा जासी।' सभी बालक उनके हाव भावों को देखते हैं। गिजुभाई की आंखें, चेहरा, हाथ, पांव सभी जैसे गीत के साथ एकाकार हो जाते हैं। और फिर बालक उनके साथ सुर में सुर मिलाकर गाना शुरू करते हैं।

'इसके बाद बच्चों की बारी, चुन्नीभाई तथा मोंघीबेन की बारी; और तब बालकों की तरफ से फरमाइश आती है, 'गिजुभाई हुक्का सुनाओ।' बाल राजाओं का हुक्म शिरोधार्य करके गिजुभाई हुक्के का गीत शुरू करते हैं।

'बाबा हुक्का कैसा मीठा लगता है?
मन भाता मस्त बनाता है.........'

'गिजुभाई और बालक मस्त हो जाते हैं। गायक और श्रोता का भेद मिट जाता है। इसके पश्चात् प्रयाण गीत। एक डंडा कंधे पर रखकर गिजुभाई आगे चलते हैं। पाँव पटकते जाते हैं और गीत गवाते जाते हैं:

'चलो सभी युद्ध के मैदान, भारत की संतान,
शूरवीर साथियों क्रुद्ध हो छुड़ाओ हिन्दुस्थान।'

और तब

'रंगीले जोशीले सिपाही।
नन्हे-मुन्ने हम सब भाई।'

'लकड़ी की तलवारों से लड़ाई लड़ी जा रही है। गिजुभाई भी बालकों के समुदाय में बालकों जैसे बन जाते हैं।'

'संगीत समाप्त' कहते ही धड़ाधड़ लकड़ियां पटक कर बच्चे अपने-अपने खेल के कमरों में पहुंच जाते हैं।'

'उपकरणों के कमरे में गिजुभाई का स्वरूप अशोक वाटिका के हनुमान जितना सूक्ष्म बन जाता है। वे दबे पांव जाकर आसन लाते हैं, बिछाते हैं, उपकरण लाकर रखते हैं, उन्हें प्रयोग में लाते हैं। बालकों को भी प्रेरित करते हैं, और फिर उनकी गतिविधियों का अवलोकन करते हैं। प्रत्येक क्रिया-कलाप के साथ ऐसा प्रतीत होता है मानो गिजुभाई कमरे में मौजूद हैं ही नहीं। कमरे में बालक ही मुख्य हैं। बालकों के व्यक्तित्व के पीछे लुप्त हो जाने की गिजुभाई की कला अद्भुत थी अपूर्व थी।'

'उपकरणों के कमरे में बालक ऐसा अनुभव करते जैसे कि खेल के कमरे

में बैठे हों। उपकरणों की क्रीड़ा में शिक्षण ओतप्रोत रहता है।'

'और कहानी में ? गिजुभाई एक छोटी सी टेबिल पर बैठ जाते हैं। सामने होते हैं बालक और धीमे-धीमे वे कहानी कहना शुरू करते हैं एक-एक कर शब्द संयोजन पात्र उभरते हुए आते हैं और बालकों के सामने खड़े हो जाते हैं। गिजुभाई हाव-भावों एवं शब्द-संयोजन द्वारा पात्रों को इतना सजीव बना देते हैं कि प्रत्येक बालक के लिए वह कहानी मंच पर खेला जाने वाला नाटक बन जाता है। कहानी समाप्त होने के पश्चात् ही बालकों को गिजुभाई दिखते हैं और गिजुभाई को बालक।'

'हर रविवार को बाल मंदिर में रंगमंच का पर्दा खिंचता है। यह है बाल रंगभूमि का श्रृंगार। मात्र एक-दो चित्र, फूलदान, हरा पर्दा, सादा रंगमंच तथा रोजमर्रा प्रयोग में आने वाली वस्तुओं के द्वारा किया गया वेशपरिधान। बालकों, अध्यापकों तथा मेहमानों के आने से कमरा खचाखच भर जाता है। मंजीरों की आवाज आई नहीं कि खर्रर्रर करता पर्दा खुल जाता है।'

'गिजुभाई नाटक में उतरते है। पिंडली तक ऊंची लुंगी, रंग-बिरंगा हाफ-कोट, कमरबंद में डंडे या कंधे की खुखरी, सिर पर धारीदार साफा और चौकीदार की भूमिका बनाते। 'घी खाया, गुड़ खाया और साले चलते क्यों नहीं' का नाटक खेलते। नाटक समाप्त होता कि मंजीरे बजते और परदा खिंचता खर्रर्रर। गिजुभाई कूदकर रंगमंच के पीछे वाले कमरे में चले जाते और बालकों की हंसी तथा तालियों की आवाज से पूरा कमरा गूंज उठता। इस तरह से 'दला तरवाड़ी', 'मियाँ फुसकी', 'ससाभाई सांकळिया', 'बापा कागड़ो', 'सात पूंछड़ियो उंदर' आदि नाट्य प्रयोग मंचित किये जाते। हँसी की फुहारों के बीच, आनंद-सागर की लहरों के मध्य गिजुभाई बालकों पर किए जाने वाले नाट्य प्रयोग का सूक्ष्म प्रभाव देखते हैं और तदनुरूप नये-नये प्रयोग करते जाते है। घरेलू वेशभूषा पहने बालसुलभ नाटकों में प्रभावशाली भूमिका निभाते, प्रत्येक अभिनय में समरस होते, पर साथ ही तटस्थ रहकर उनकी बारीकियों को आत्मसात करते, गिजुभाई आज भी हमारी दृष्टि के सामने साक्षात विद्यमान हैं।'

'नाश्ते का कार्यक्रम तथा ध्यान की क्रीड़ा प्रवृत्तियां भी बालमंदिर में चलती हैं। बालमंदिर के दो तलघरों को इनके लिए काम में लाया जाता है। तलघर क्या बालमंदिर के फेंफड़े ही समझिए। ध्यान और नाश्ते दोनों क्रियाकलापों में गिजुभाई मूक प्रयोगकर्ता की तरह बालकों के बीच रोज हाजिर रहते हैं तथा अपनी विलक्षण सूझ से तरह-तरह के खेल निकालते हैं। इनसे बालकों को मजा भी आता है और उनका ज्ञान भी बढ़ता है।'

'तीसरे पहर बाल मन्दिर के बगीचे में अपने छोटे-छोटे फावड़े-कुल्हाड़ियां छोटे-छोटे डोल और झारियां लिये बालक काम करते। गिजुभाई कुशल

माली की तरह बागवान की भी भूमिका निभाते। डालियों से फूटते अंकुरों और खिलती हुई कलियों को देखते बालकों की तरफ गिजुभाई निहारते रहते। फूलों की कलियों तथा बालकों के हृदय को विकसित होते देखकर वे हर्षित होते। दोनों बगीचों के विकास में वे समान रूप से सार संभाल करते। बल्कि कहना चाहिए कि बालकों रूपी पुष्पों को विकसित करने के लिए ही उन्होंने बालमंदिर रूपी बाग लगाया था।'

'कभी-कभी ढलते प्रहर में बालमंदिर के प्रांगण में अभिनय' गीत आयोजित किये जाते। नन्हे-मुन्ने गोलाकार खड़े हो जाते; बीच में मोर बनकर गिजुभाई, और गीत शुरू होता:

'मोर मोर क्यां थईने जईश, कळायेलो मोरळो।
बचुभाई नुं घर ठेकी जईश, कळायेलो मोरलो ॥[1]

कभी-कभी मोंघी बहन गवाते हैं और वे गाते हैं।

'कांगने खेतर ग्याता रे गोरी कांग ल्यो।'

'शाम को घर जाते समय गाड़ियाँ लेने आतीं और मंजीरे बजते। गिजुभाई ऊपर की सीढ़ी पर खड़े रहते हैं। जिस जगह खड़े होकर वे प्रातःकाल बच्चों की आगवानी करते हैं, उसी स्थल पर खड़े होकर वे बच्चों को भावपूर्ण विदा देते हैं। 'नमस्कार गिजुभाई', 'नमस्कार गिजुभाई' की आवाजों के साथ नन्हे-नन्हे हाथ जुड़ते हैं और बालकों के मस्तक झुकते हैं। सामने से गिजुभाई हाथ जोड़कर नमस्कार स्वीकार करते हैं और विदा देते हैं। यह रोज की बात पर यह दृश्य अत्यन्त भावपूर्ण तथा हृदयवेधक बन जाता है।'

'बालकों को पहुंचाकर गिजुभाई अपने सहकर्मियों के साथ बालमंदिर के एक कमरे में बैठते हैं। दिनभर के काम का, बालकों के अवलोकन का मूल्यांकन करते हैं, अपने तथा साथियों के अनुभवों का विनिमय करते हैं, निष्कर्ष निकालते हैं, और अगले रोज की पूर्व तैयारी की योजना बनाते हैं। बालकों की साधारण-सी गतिविधियों का, उनकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं का बारीकी से विवेचन-विश्लेषण करते हैं तथा उनके विकास का मार्ग तलाशते हैं। जैसे कोई रसायन-शास्त्री अपने रासायनिक मिश्रण का अवलोकन करता है, उसके परिणामों की जांच पड़ताल करता है तथा प्रयोग की सफलता के पश्चात् ही वह तरह-तरह के मिश्रण तैयार करता है, वैसे ही ठीक उसी शोधक-वृत्ति से, अनुसंधानकर्ता की वैज्ञानिक दृष्टि से गिजुभाई बालमंदिर के प्रांगण में नूतन बाल शिक्षण का प्रयोग किया करते।'

गिजुभाई के अनुभव

पहले ही दिन से बालमंदिर इतना व्यवस्थित, सरस एवं वैज्ञानिक नहीं

---

1. यह एक गुजराती लोकगीत है। इसमें बचुभाई के स्थान पर गाने वाले सभी बालकों के नाम ले लेकर गाया जाता है। (लेखक)

हो गया था। इसके पीछे वर्षों की अखंड एवं जटिल साधना थी। अपने आत्म-बल एवं हृदय की सूझ के सहारे गिजुभाई ने कई-कई दिनों तथा अनेक-अनेक वर्षों तक जो प्रयोग किए थे, उनके परिणामस्वरूप बाल-शिक्षण की यह पद्धति निर्मित की थी। आइए, बालमंदिर के प्रारम्भिक कुछ दिनों के उनके अनुभवों को हम जानें ताकि हमें विश्वास हो सके कि अपनी साधना में गिजुभाई को कितनी लम्बी दूरी तय करके मंजिल हासिल हुई थी।'

बाल मन्दिर का पहला दिन

'प्रातःकाल आठ बजते ही भों-भों करती मोटर आ गयी। लगभग तीस-पेंतीस बालक थे। साफ सुथरे, नये कपड़े पहने हुए थे। बाल संवरे हुए और गले में रुमाल। नेकर-कमीज या घाघरी-कुरती पहने थे। बालमन्दिर में इसी ड्रेस के लिए माता-पिता को सूचना भेजी गयी थी। मोटर में बैठने की प्रसन्नता में प्रत्येक बच्चा हंस रहा था।'

'सामने जाकर मैंने बालकों को मोटर से उतारा। मैं उन सबों से अपरिचित तथा वे मुझसे नितांत अनजान। सब के सब मेरे पीछे-पीछे चले आए।'

'बालमंदिर के द्वार खुले थे। खरीदा हुआ सामान तथा भेंट में प्राप्त सामान बालमंदिर के एक कमरे में आकर्षक तरीके से सजाया हुआ रखा था। (चित्रकार श्री रविभाई रावल ने बालमंदिर को सजाया-संवारा था।) 'गेंदें एक तरफ, मोटर व गाड़ी आदि खिलौने दूसरी तरफ, चिड़िया, मोर, तोता हरिण, खरगोश आदि लोहे, प्लास्टिक व मिट्टी के खिलौने तीसरी तरफ सजाये हुए थे। दीवार पर डोरी से लटकाकर चित्र टांगे गए थे, मात्र इतनी ऊंचाई पर कि जरा से श्रम से बच्चे उन्हें ले सकें। ध्वनि का परिचय कराने के लिए बारह घंटियां तथा तांबे-पीतल के पंचपात्र व तश्तरी। चित्रों को देखने के लिए तरह-तरह की छोटी-बड़ी पुस्तकों से भरी रैंक, दुरबीन, गेंद-बल्ला महुए की कोयलें—जैसे किसी दुकान में व्यवस्थित तरीके से सजे हुए होते हैं, उससे भी कहीं अधिक सुन्दरता एवं आकर्षण के साथ सजाये हुए थे। कमरे के बीच में एक दरी बिछी थी। यह जगह सबों के लिए बैठकर काम करने थी। ये तमाम चीजें तो थी। पर मोंटेसरी की शाला में स्वयं मोंटेसरी के उपकरण भी थे? हां थे अवश्य, पर कम संख्या में और गलत-सलत। गट्टों के तीन संदूक थे, मीनारें, चौड़ी व लम्बी सीढ़ी थे, भौमितिक आकृतियों के स्थान पर नौ खाने थे और उनमें आकृतियां बिठाने के चौकोर थे। बस मोंटेसरी के इतने ही उपकरण थे।'

'इसके अतिरिक्त वह कमरा चालीस बालकों के लिए गैर-मोंटेसरी वाला था। फिर भी स्वच्छ। दीवारें अच्छी-खासी रंगीन। अगल-बगल में दो कमरे और थे। चारों तरफ बरामदा और नीचे विशाल बाड़ा। बाड़े में सुन्दर बगीचा था, नल था और पास ही पानी की कुंडी थी।'

'लगभग चालीस बच्चे दौड़े।'

'घरों, गलियों, गन्दगी और कष्टों से छूटे हुए बालक बालमन्दिर के ऊपर टूट पड़े। उपकरणों—खिलौनों के ऊपर जैसे टिड्डी दल टूट पड़ा हो। जिसके हाथ में जो लगा, उसने वही उठा लिया। कोई मोटर लेकर भागा। किसी ने गेंद-बल्ला थामा। किसी ने मोर-तोते उठाये। कुछ पीपाड़ियां और ऐसे ही फूंक के बाजे लेकर एक तरफ बजाने लगे। पांच मिनट के अन्दर भारी कोलाहल मचा दिया। सीटियां बजने लगी। खिलौनों की खेंचतान शुरू हुई। मोटर वाला मोटर को चाबी लगाकर जमीन पर चलाने लगा। रबड़ की गेंदें इधर-उधर उछलने लगीं। एक बच्चा बल्ला लेकर दरवाजे पर खटाखट मारने लगा। दूसरा बच्चा बारह घंटियों को डोरी में लटकाकर टन्न-टन्न बजाता हुआ चारों ओर घूमने लगा। दीवार पर टंगे चित्रों को एक नन्हें व्यापारी ने बटोरा और कंधे पर लटकाकर "कोई चित्र ले लो" "कोई चित्र ले लो" कहता फेरी लगाने लगा। पांच मिनट में तो सारा काम और सारे खिलौने अस्त-व्यस्त हो गए। शोर गुल इतना बढा कि कानो-कान सुनायी भी न दे। कमरे में दो चार बच्चे बाल्टी में बंगला बनाने के टुकड़े लेकर बंगला बना रहे थे। पर मोटर चलाने वाला उनके बंगले को बिखेर देता था।'

'मैं इस अकल्पनीय दृश्य को देखता रहा, आश्चर्य में डूब गया। यह सब कुछ क्या चल रहा है। कुछ समझ में नहीं आया। मेरे मन में विचार उठा—यही है मोंटेसरी पद्धति? यही है मोंटेसरी पद्धति का स्वातंत्र्य?'

'पर ज्यादा सोचने का समय नहीं था। बाड़े में एक कुंडी थी। उसमें एक छोटा बच्चा गिर पड़ा। मेरे एक साथी की उस पर नजर गयी और तत्काल उसे निकाल लिया अन्यथा कलंक लग जाता। 'प्रथमे ग्रासे मक्षिका पातः'। गाँव में लम्बे अर्से तक बालमंदिर का कोई नाम तक नहीं लेता। पर भगवान को लाज रखनी थी। इस घटना से तो बच गए पर एक दूसरी छोटी दुर्घटना घट गयी। चित्रों को देखने की इच्छा से जो बच्चे पुस्तकें उठाने गए थे उनके ऊपर पूरी रैंक आ गिरी। पुस्तकें ऊपर और बच्चे नीचे! सौभाग्य से उन्हें कोई शारीरिक चोट नहीं लगी।'

'पहला दिन था। बच्चों के नाम नहीं आते थे···किन-किन नामों से पुकारें किसका नाम लेकर पास आने को कहें; किसे क्या निर्देश द? चालीस बालकों में से मुश्किल से दो-चार पहचान के थे। इन फौज को कैसे कब्जे करें? इनमें से किसके हाथ से खिलौने वापिस लें और किससे नहीं? किसी को डांटा तो नहीं जा सकता! किसी को सजा भी किस बात की दें! सिद्धान्तों से मैंने अपने हाथ-पांव बाँध लिए थे।'

'दो दिनों पहले के विनय मंदिर में अपने प्रिंसीपल-पद के कार्य से मैं इस

कार्य की तुलना करने लगा। ये बच्चे क्या मात्र "नोटिस" जारी कर देने से अनुशासित हो जाएंगे !'

'मुझको प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। आचार्य के रूप में कुर्सी पर बैठकर आज्ञा देना आसान था, बालकों को स्वतन्त्रता देकर सिखाने का काम मुश्किल पड़ेगा। लेकिन ऐसे विचार या सोच का अवकाश ही कहां था। पहला दिन था। कोई कोई माता-पिता आए थे। कुछ सम्पर्क के लिए, तो कुछ बालकों के लिए उपहार लेकर आए थे।'

'नानाभाई और मोटाभाई[1] बालमंदिर का गुणगान इसके शुरू होने से पहले ही करने लगे थे, तब तो फिर ऐसा ही होगा।'

'मोटाभाई भी आये थे।'

'बालकों की स्वतंत्रता को देखकर सभी परम संतुष्ट थे। "आहा ! कैसी स्वतन्त्र शाला है ? है कोई बालकों को जरा भी रोकने-टोकने वाला ? यहाँ पर मारपीट और भय का तो नाम ही कैसे होगा ? तोड़-फोड़ करें तब भी क्या ? गिजुभाई तो बीच में आएंगे नहीं कहने ? सचमुच, दक्षिणामूर्ति वाले धन्य हैं! आज इन लोगों ने बाल-स्वातन्त्र्य की नींव रखी।" ऐसे-ऐसे अव्यक्त उद्गार आगंतुकों की वाणी से फूट रहे थे। पर मेरा मन उदास था। अकेला मैं जानता था कि इसमें न तो मोंटेसरी पद्धति जैसा कुछ है और न कोई स्वतन्त्रता। यह तो नितांत अराजकता है।'

'पर अब करें क्या ? मोटर तो अब ग्यारह बजे ही आएगी। तोड़-फोड़ करने वाले इन बालकों को जैसे तैसे रास्ते पर लाना ही चाहिए। और वह भी सख्ती के बिना।'

'मैंने सामूहिक क्रीड़ा की बात सोची। मात्र इसी से बचाव सम्भव था। कहानी कहता, पर कहानी की स्थिति थी नहीं। कहानी को ध्यान से सुनने वाला कौन था भला ? मेरे पास कोई आकर बैठे तब ना ! पहचानता कौन था मुझे। सामूहिक खेल (लोक क्रीड़ा) शुरू की।'

'बालको !'

'बच्चों ने कहा 'हाँ'।

'बच्चो ! ···'हाँ'।···!'

'सारी फौज मेरी तरफ मुड़ी।'बालको !' तथा 'हां !' का जोरदार शोर गूंज उठा। मैंने जारी रखा, 'बालको !'····'हाँ।'

'बनिया आया।'

'क्या-क्या लाया।'

1. मोटाभाई याने हरगोविंद अजरामर पंड्या—गिजुभाई के मामा।

'डिब्बे लाया, डिबली लाया···जिस-जिसको माता-पिता अच्छे लगते हैं वे मुझे आकर छू लें।'

'उछलते-कूदते हुए बच्चे आ-आकर मुझे छूने लगे। मैं दौड़ा। मेरे पीछे-पीछे बालक और मैं उनके आगे-आगे। यह खेल चला। एक बार फिर वही खेल—'बालको !'····'हाँ !' जिस-जिसको माता-पिता अच्छे लगते हैं वे जाकर अमुक स्थान को छू आएँ। खेल चला। छोकरों की जात और गलियों का खेल ! ···और क्या चाहिए था उन्हें। खिलौने-विलौने फेंक-फाँककर सब के सब बाड़े में चले आए।'

'काम करने वाली वजी बहन से मैंने कह रखा था कि बच्चे बाहर आ जाएं तो तू कमरा बन्द कर देना। जैसे-तैसे करके ग्यारह बजे तक खेल चला। और वह भी मजेदार ढंग से।'

'ग्यारह बजे मोटर आई। एक आदमी साथ भेजकर बालकों को विदा किया। चलो, एक दिन तो बीता। तीन घंटे बाद कहीं जाकर सांस नीचे बैठी।'

'अकुलाहट को दूर करके मन ही मन सोचा : आज ही कुछ परिवर्तन करना होगा। आज का आज मोंटेसरी के उपकरणों का प्रबन्ध करना होगा।'

'वजी बहन को बुलाया। बाड़े में जहां-तहां फेंका हुआ सामान वापिस बटोरकर मंगाया। सौभाग्यवश कुछ भी खोया नहीं था। पर सब की सब चीजें कमरे से निकल तो गई थीं ना !'

'घर गया। खाना खाकर लेटे-लेटे विचारने लगा। क्या-क्या परिवर्तन करने चाहिए ! बस, खिलौनों का तो नाम भी नहीं लेना चाहिए। गेंद-बल्ला खेलने के समय ही दिया जाना चाहिए। पहले से दरवाजे खोलकर नहीं रखने चाहिए। प्रत्येक बालक का नाम जानना चाहिए। कहानी तथा संगीत शुरू करना चाहिए। मोंटेसरी के जितने भी उपकरण हैं, उन सबों को प्रयोग में लाना चाहिए। किताबों को रैक के निचले भाग में रखना···आदि-आदि कई परिवर्तन ध्यान में आए।'

'बालमंदिर को प्रारम्भ करते समय प्रकाशित पत्रिका में लिखे उद्देश्यों पर ध्यान दिया। और आँखों के सामने प्रातःकाल घटित ताजी गतिविधियां तैर गयीं। मन में फिर से विचार उठा : मोंटेसरी पद्धति का एक बार पुनः अध्ययन कर लेना चाहिए।'

'शिक्षक कैसे हों ?' 'वातावरण कैसा हो ?' इन अध्यायों को पढ़ गया। साथ ही व्यवस्था वाले अध्याय के पृष्ठ भी पलट गया। गट्टे इत्यादि जो उपकरण थे, उनको प्रयोग में लाने की विधि पढ़ गया और इससे आगामी काल के लिए हिम्मत प्राप्त की।'

'शाम को ही बाल मंदिर में जा पहुंचा।'

'खिलौने छिपा दिए। रबड़ के साँप रख दिए और कमरा साफ कर दिया। मोंटेसरी के उपकरणों को नीचे सजा दिया ताकि बच्चे आसानी से उन्हें उठा सकें। खेलने के लिए एक बड़ी दरी कमरे में बिछा दी। कहानी की जगह निश्चित कर ली। संगीत के लिए हारमोनियम मंगाकर एक कमरे में रखवा दिया। रेगमाल के अक्षर, सीसे के अक्षर, बंगला बनाने के उपकरण आदि व्यवस्थित रीति से जमा दिए। देर रात तक काम किया। बालकों के गले में लटकाने के परिचय-पत्र भी तैयार किए, जिनमें नाम, पता व बालमंदिर ये सब लिखवाये। यह भी निश्चय किया कि बालकों को प्रविष्ट कराते समय प्रत्येक माता-पिता को ये परिचय-पत्र दिए जाएँ।'

'रात बीत गई, सुबह हो गई।'

बालमंदिर का दूसरा दिन

'घर्र्र्र्, घर्र्र्र् करती मोटर आ पहुंची। फूलों के पार्सल जैसे बच्चे नीचे उतरे। उतरते ही सीधे कमरे की तरफ दौड़े। कमरा बंद। चारों तरफ चक्कर लगाया। मैंने अपने पास बुलाया और खेल शुरू किया :

'गण गण बोश लो तेल तेल पानी,
उठरे लालिया, झोंपड़ी जली
जलती है तो जलने दो
रहती हो तो रहने दो
आ रे कौए, कढ़ी पीएँ!'

'बालकों को यह खेल बहुत पसंद आया। वे मेरे पास आए। तब मैंने कमरे का दरवाजा खोला। फिर वही छीना-झपटी। लेकिन आज बच्चे आश्चर्य में खड़े रहे। मोटर को ढूंढ़ने लगे। वह मिली नहीं। साँप को ढूंढे तो मिले नहीं। गेंदें तो मैंने जमा कर रखी थीं। फूंक वाली पीपाड़ियों को छिपा दिया था। दूरबीनों, सीपों, शंखों आदि को मैंने घर भिजवा दिया।'

'मैंने गट्टा-पेटियां दीं। तत्काल खोलकर दिखाया। फुर्ती से जैसे-तैसे पाठ पढ़ाने का काम (प्रेजेंटेशन) किया। ज्यामितिक आकृतियों के खाने एक-एक कर सबों को पकड़ा दिये। मीनारें दीं। चौड़ी सीढ़ियां दीं। और काम चलाया।

'लेकिन ऐसे काम कैसे चले!'

'किसी ने थोड़ी देर के लिए संदूक का उपयोग किया, किसी ने जहाँ की तहाँ मीनारें छोड़ दीं, किसी ने लम्बी सीढ़ी को घोड़ा बनाया।'

'फिर भी चार-पांच बच्चे गम्भीरतापूर्वक काम करने में लीन थे। भगवानदास, पोपटलाल, कन्हैयालाल तथा एक सोनीभाई बंगला बनाने में निमग्न थे। चाहे कैसा ही बेढंगा बंगला क्यों न हो, वे उसमें एकाग्र थे, काम में खोए थे, प्रसन्न थे।'

'नन्हीं तारा को मैंने अक्षर सिखाने शुरू किए। अक्षर खुरदरे थे। उन पर किस प्रकार सफाई से अभ्यास करना चाहिए था, यह मैं बता नहीं पाया। तारा जोर से उस पर उंगली फेरने लगी, कि उंगली से खून निकल आया और वह रोने लगी।'

'पास वाले कमरे में अक्षरों का मिलान करने का खेल मैंने शुरू किया। "क" जैसा अक्षर लाओ, "ग" जैसा अक्षर लाओ, यह बताकर मैं दूर चला गया। पर वहां तो अक्षरों का घोटाला हो गया और खेल बंद हो गया। कल वाले बनिये-बालक ने आज भी चित्र बेचने की फेरी शुरू कर दी।'

'इसी कमरे में मैं आंखें बंद किए मीनारें बनाना बता रहा था कि तभी किसी ने आकर मेरी आंखें दबा दीं। कोई मेरे ऊपर आह्लादपूर्वक चढ़ बैठा और मूंदामूंदी शुरू कर दी। सावधानी से मैं बचकर निकल आया।'

'कमरे में शोर बहुत बढ़ गया। मैं भी उस शोर में शामिल हो गया। मैंने कहा : 'कूदो'—बालक कूदे; 'नाचो'—नाचे, 'खिलखिला कर हँसो'—वे हँसने लगे; 'चीखो-चिल्लाओ'—वे चीखे, चिल्लाए; 'दौड़ो।'—वे दौड़े।'

'वहां से मैं बाहर आया। मुझे लगा : 'आज भी व्यवस्था जैसी बात है नहीं।' घंटी बजाई, पर कौन आए? तब मैंने 'बालको!'—'हां' वाला खेल शुरू किया मेला भर गया। सब के सब मेरे चारों ओर लिपट गए। खूब खेलाया और अन्त में कहा—'जिस-जिसको अपने माता-पिता अच्छे लगते हैं वे मेरे पीछे-पीछे आओ और जहां मैं बैठूं, वहां बैठो।'

'आगे-आगे मैं और पीछे-पीछे बच्चे। दो कमरे पार करके तीसरे में आया और वहां बैठ गया। वे भी सब बैठ गए। मैं बहुत खामोश था, बहुत शांत। बच्चे भी शांत थे। जिन दरवाजों से हम भीतर आए थे, वे मेरी पूर्व सूचना के अनुसार बन्द कर दिए गए थे। जानबूझकर हमने बालकों का बाहर जाने का रास्ता खुला नहीं रखा था।'

'धीरे से मैंने एक कहानी शुरू कर दी : एक था कौवा और एक थी मैना...।'

'कहानी में बड़ा मजा आया। मैं जानता था कि कहानी जादू की छड़ी है। बच्चे खामोश सुन रहे थे। कहानी आगे बढ़ी। मेरे सामने उनकी आँखें गड़ी थीं। उनकी चंचलता स्थिर हो गई थी। मेरे साथ वे भी मन ही मन तथा होठों पर गुनगुना रहे थे : 'कौए ने मेरा मोती छीना, मांगता हूं पर देता नहीं।'

'अनुशासन के निमित्त मुझे कहानी का गुर हाथ लग गया।'

'इसी समय तय किये मुताबिक बाजा बजा। सबों के कान चौकन्ने हो गए। उन्हें गीत सुनाई दिया। वे आह्लादित हो गए। उस दिन बालकों ने प्रथम संगीत सुना। यही नहीं, उसमें बड़ा ही रस लिया।'

'बालकों ने लोक-रमत (समूह क्रीड़ा) की फिर से फरमाइश की। कइयों को मेरा नाम आने लगा। आज मैं ही तो उनके सामने आया था। खेल में मैं था, कहानी में मैं था, संगीत में भी मैं हाजिर था। मुझे वे पहचानने लगे। मुझ पर कुछ निर्भर भी होने लगे।'

'सात तालियों वाला खेल शुरू हुआ। भागमभाग शुरू हुई। खूब हँसी-हँसी में खेल चला। छोटे-छोटे बच्चों को गेंद-बल्ले दे दिए थे। वे उनसे खेल रहे थे। कुछ अन्य बालक हमारा तथा बड़े बालकों का खेल देख रहे थे। पसीना बह रहा था। खेल में मजा आने से खिलाड़ियों में प्रेम बढ़ रहा था। वे मेरे पक्के भाई बहन बन गए थे। उनके नाम भी मैं जानने लगा था।'

'मोटर आई और कटक रवाना हुआ। मैंने मोटर के पास जाकर बच्चों को नमस्कार किया। उन्होंने भी "गिजुभाई जै जै" कहा। पहले ही दिन से मैंने अपनी तरफ से तो नमस्कार की विधि शुरू कर ही दी थी। विधि बालकों ने भी पसन्द की। विधि ही क्या, हम सब परस्पर पसन्द आने लगे थे। इसी से हमें ऐसा करना अच्छा लगता था। यह विधि आगे चलकर खूब प्रचारित हुई। बालक जहां भी एक दूसरे को मिलते, नमस्कार करते। हमें रास्ते में मिल जाएँ तब तो करेंगे ही। यहाँ तक कि अगर रास्ते में निपटने को बैठे हैं और उधर से हम निकलें तब भी "गिजुभाई जै जै" अथवा "नमस्कार" करना नहीं भूलेंगे। माता-पिता को भी यह संस्कार अच्छा लगता था। वे भी यह फर्क साफ-साफ देख रहे थे।'

'गाड़ी गई। मैं और वजी बहन बिखरी हुई गेंदों को ढूंढ़ने लगे। आज ज्यादा मेहनत नहीं पड़ी थी। आज निराश भी कम हुआ था। आज आशा के अंकुर फूटे थे। आज कुछ ठीक काम हुआ है, मेरे मन को ऐसा लगा। पर अभी काफी कुछ बाकी था। उपकरण बाकी थे। मुझ पर निर्भर हुए बिना अपने आप काम करना शेष था। अमुक-अमुक विधियों अथवा आकर्षण के बिना ही स्वतः कामकाज चलता रहे, यह शेष था। और वास्तविक मोंटेसरी पद्धति की दृष्टि से तो सभी कुछ शेष था।'

'हाँ, एक बात सही थी। गाँवों से आने वाले बालक यहाँ पर अन्य विद्यालयों वाली कठोरता, अन्धकारपूर्ण वातावरण तथा गन्दगी से मुक्त थे। उनके लिए सुन्दर हॉल था, ताजी हवा थी, खेलने को बगीचा था, और सुनने को कहानियां एवं संगीत था। कोई डाँटने वाला अथवा जोर-जबर्दस्ती से उन्हें पढ़ाने वाला नहीं था। बालकों के लिए तो यह आनन्द की जगह थी। वे सही समय पर मोटर रुकने के स्थान पर हाजिर रहते थे। गले में रूमाल बंधा होता। हँसते-हँसते मोटर से उतरते और जो भी खेलने को मिल जाता, उसी से खेलने लगते। अव्यवस्था थी। शोर-शराबा था। उपकरण क्रमानुसार प्रयोग में नहीं लाये जाते थे। इसके लिए तो जिम्मेदार मैं था, न कि बालक।'

'आज का दिन कुल मिलाकर अच्छा बीता था। घर गया और तीसरे दिन की तैयारी पर विचार करने लगा। विनय मन्दिर के आचार्य को जितना समय देना पड़ता था उतना काम तो यहाँ पर नहीं था, लेकिन उनसे कितनी ही गुना अधिक चिंता का स्पष्टता से मुझे यहाँ अनुभव हो रहा था।'

'उपकरण कहाँ से मंगवाएँ? मोंटेसरी पद्धति में जो वास्तविक व्यवस्था, वास्तविक विकास आदि आते हैं, वे कैसे सम्भव हैं? एकाध सहायक के बिना नहीं चलेगा! बाजा बेकार है। सिर्फ कहानी और संगीत से नहीं चलेगा। इस प्रकार के प्रश्न उभरने लगे।'

'सोचते-सोचते नींद आ गई और तीसरा सवेरा हो गया।'

बाल मन्दिर का तीसरा दिन

'मोटर आई, बालक उतरे। बगीचे में घूमने लगे। हॉल का दरवाजा खुलने की प्रतीक्षा करने लगे। मैंने बरामदे में एक दरी बिछा रखी थी। अकेला ही उस पर बैठा था। आँखें खुली-अधखुली रखकर मैंने प्रार्थना गाई :—

'प्रभु की पाठशाला में हम अत्यन्त अज्ञानी शिष्य हैं।

प्रभु की पाठशाला के हम शिष्य भी हैं और अज्ञानी भी।'

'कोई-कोई बच्चा पास आकर देखने लगा। दो-एक पास ही बैठ गए। कुछ गिलहरी की तरह इधर-उधर उछल-कूद कर रहे थे।'

'मेरी प्रार्थना में ईश्वर नहीं था। उसमें मेरे बालक थे। उसमे उनका अनुशासन, शांति आदि तमाम मोंटेसरी के प्रश्न थे। उस दिन मेरी वह प्रार्थना उत्तम थी।'

'बालक पास आए और धीमे-धीमे उसमें शामिल हो गए। दो-चार बड़े बालकों ने शब्दों को पकड़ लिया और प्रार्थना का कार्यक्रम शुरू हुआ।'

'बच्चे ईश्वर का स्मरण कर रहे थे, सो नहीं। उनके लिए प्रार्थना का अर्थ था शान्ति और शारीरिक स्वास्थ्य के साथ बैठना, आँखें बन्द रखना और मिल-जुलकर गाना। यही वे कर सकते थे और यही सम्भव था।'

'जब हर्षदराय गाते-गाते पिछड़ जाते और अगली कड़ी बोलने से रह जाते तो फिर से प्रथम पंक्ति के दोहराये जाने का स्वर सुनकर सबों के साथ मैं भी हँस पड़ता।'

'लेकिन प्रार्थना से उनमें सीधे बैठने का संस्कार अवश्य आया। मेरे प्रति

बालकों में उन्मुखता का भाव आया। किसी भी काम को करने से पूर्व बालकों में जिस शांति की आवश्यकता है, वह उनमें कुछ दिखाई दी।'

'बच्चे चीजों-वस्तों को पटकते, फेंकते तथा ठोकरों में लुढ़काते थे। व्यवहार के द्वारा ही मैंने उनका ध्यान अपनी ओर खींचा। अर्थात् जिसे मोंटेसरी ने पाँच मिनट का पाठ कहा है, वह शुरू किया। बालकों को बिठाया चीजों को मैंने संभाल के साथ अच्छी तरह पकड़कर उठाया। 'इस तरह से उठाता हूं, अच्छी तरह से पकड़ता हूं।' फिर नीचे रखकर कहता : 'लो देख लो, किसे लेना है? हाथ ऊपर उठा लो।' तब बारी-बारी से लड़कों के नाम बोलता। बच्चों ने उसी के अनुसार पकड़ा और रख दिया। मैंने कहा : 'इसी तरह से हमेशा रखो और उठाया करो।' फिर कहा : 'अब तुममें से जिसे-जिसे जो जो चीजें पसन्द हों ले लो और खेलो। सबके सब लेने दौड़ पड़े। मैंने बराबर देखा। उन्होंने ठीक वैसे ही चीजें उठाईं और रखीं। यह बात तो वे समझ चुके थे। पर दौड़कर लेने के बजाय धीमे-धीमे चलकर वे उपकरणों को कैसे उठाएं, यह अभी बताना शेष था। जब यह बताया तो उन्होंने बिना शोर-गुल किए उपकरण उठा लिये। उनसे खेले और वापिस रख दिए।'

'ऐसे ही मैंने उन्हें बाहर जाना, आना, उठना, बैठना, बातें करना, घूमना-फिरना भी सिखाया। ऐसे ही और जो-जो चीजें जो एक तरह से संस्कारिता का अंग है तथा जो सामाजिक आवश्यकता के लिये आवश्यक हैं, वह सब बालकों को बहुत पसंद आता है। उनके सर्वांगीण विकास में इन बातों की शिक्षा भी जरूरी है। बालक व्यक्ति की परिपूर्णता की दिशा में जाता है। उसी के साथ वह सह-जीवन में भी आगे बढ़ता है। इसीलिए संस्कारिता तथा आचरण का वातावरण उनके विकास की खुराक है। परोसते ही वे ग्रहण कर लेते हैं।'

'इस तरह से बालमंदिर में बैठने, उठने, बातचीत करने, रखने, उठने सम्बन्धी कई प्रकार की व्यवस्थाएं आयीं। एक बार व्यवस्था का वातावरण निर्मित हुआ। फिर तो व्यवस्था में से व्यवस्था बनती गई और इस तरह एक सप्ताह पूरा हुआ।

'दिन पर दिन बच्चे व्यवस्थित होने लगे। नई-नई बातें सीखने लगे। अव्यवस्था के दिन बीते। शांति और अमन-चैन के दिन शुरू हुए। अव्यवस्था में से व्यवस्था उभरते देखकर जो आनन्द मिलता है, उसे कोई अनुभवी ही जानता है। उसमें श्रम की सार्थकता प्रतीत होती है। उस समय आत्मा हार्दिक शांति अनुभव करता है।'

'प्रतिदिन बच्चे अनुकूल बनने लगे। उपकरणों में रुचि लेने लगे। विद्यालय के प्रति उनमें अपनत्व बढ़ने लगा। माता-पिताओं ने भी दूर से बच्चों को शांति पूर्ण विविध कार्यक्रमों में संलग्न देखा तो आनन्द मिश्रित आश्चर्य अनुभव किया।'

ऐसे थे बाल मन्दिर के प्रारम्भिक दिन!

गिजुभाई का व्यक्तित्व एवं विशेषताएँ

गिजुभाई के इन अनुभवों में उनका स्पंदित हृदय तथा विकसित व्यक्तित्व दिखाई देता है। उनके प्राण जीवन भर स्पंदित रहे तथा उनका व्यक्तित्व निरंतर उभरता रहा। इस कथन की पृष्ठभूमि में प्रमाणस्वरूप अनेक उल्लेखनीय बातें तथा उनके चारित्रिक गुण हैं। उन सद्‌गुणों की हमें पहचान करनी है।

जिस कार्य को करने का वे संकल्प कर लेते थे, उसे सांगोपांग तरीके से पूरा करने के लिए वे जिम्मेदारी तथा परिश्रमपूर्वक संघर्षरत रहते थे। निरंतर एवं कठिन परिश्रम द्वारा ही उन्हें जिन्दगी में सदैव सफलता मिली थी। और फिर, जो भी काम वे उठाते थे उसके अत्यन्त सूक्ष्म पहलू तक वे गहन चिंतन करते थे।

उनकी दृष्टि वैज्ञानिक थी। अत्यन्त सूक्ष्म तथा विवेक युक्त संवेदनशीलता उनका उल्लेखनीय गुण था। बालमन्दिर की गतिविधियों के अत्यन्त साधारण प्रसंगों से भी वे महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त कर लेते थे। बालक स्वभाव से चंचल नहीं होता। एकाग्र बन सकता है। ऐसी ही एकाग्रता का विवरण गिजुभाई ने एक स्थल पर दिया है :

'मनहर बेन टेलर पर बैठी गट्टे (Cylinder blocks) डाल रही थी। बहुत तल्लीन थी। बराबर गट्टे डाल रही थी। बालमन्दिर में बिच्छू निकला, सब दौड़ पड़े। हो-हल्ला मच गया। बिच्छू को पकड़ कर फेंक दिया था। सब लोग फिर से अपने काम में लग गए। लेकिन मनहर बहन को पता भी नहीं चला कि हुआ क्या था? कैसा अद्‌भुत दर्शन है एकाग्रता का!'

छोटी-छोटी साधारण-सी बातों में भी गिजुभाई का ऐसा संवेदन युक्त अवलोकन चलता रहता था।

इनकी एक विशेषता यह भी थी कि जो बात त्याज्य होती, उसे तत्काल छोड़ देते थे और जो ग्राह्य प्रतीत होती उसे तत्काल आचरण में ढाल लेते थे। इसी वजह से 'जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिम्' जैसी असहाय दशा उन्होंने कभी नहीं भोगी।

बाल शिक्षण के प्रत्येक कार्य को उन्होंने कभी छोटा-बड़ा, ऊँचा-नीचा नहीं समझा, बल्कि समान महत्व दिया। बालमन्दिर के बच्चे ने पाखाना कर दिया

हो और उसे साफ करना हो अथवा बाल शिक्षण के सम्मेलन में अध्यक्षता करनी हो—दोनों काम उनके लिए एक-से थे और यही कारण हैं कि उनका शिक्षण कार्य क्रांतिकारी साबित हुआ।

बालकों के साथ काम करते समय वे बाहरी तौर पर उनके साथ उन्हीं जैसे बन जाते, लेकिन उनके हृदय के अंतर्तम में गंभीर विचारों का प्रवाह गतिशील रहता। इस विचार प्रवाह की वजह से बालकों के साथ व्यवहार में वे संतुलन कभी नहीं खोते थे। कई लोग बालकों के साथ काम करते-करते अत्यधिक बच-काने बन जाते हैं, या फिर अकड़े रहते हैं। संतुलन नहीं रख सकते। गिजुभाई में यह विवेक बड़ा ही जबर्दस्त था।[1]

उनके हृदय में बालकों के प्रति कोमलता भी अपरिमित थी। इस कथन के प्रमाणस्वरूप उन्हीं के ये शब्द देखें: 'बालकों के साथ काम करना जितना प्राणदायी है उतना ही कठिन भी। बाल स्वभाव का ज्ञान, उनके प्रति गहन संवेदना व सम्मान, उनके व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा तथा उन्हें अपने हृदय का प्रेम प्रदान करने से असंभव काम भी संभव हो जाते हैं। बालकों के प्रति की गयी भूल पर हमारा मन दुखी नहीं होता, तब तक हम न तो बाल-शिक्षण के योग्य हो सकते, न ही बालकों का भला कर सकते हैं। बालकों के सुखी होने का सुख मुझे याद है बल्कि जब वे दुखी होते है तो मन को व्यथित करने वाली दर्दनाक स्थिति अधिक याद रहती है। औरों के निमित्त दुखी होना, यह कदाचित मनुष्य का एक परम सुख हो सकता है।'

'मुझे उनके सवाल याद है। जब तक कोई बालक योग्य नहीं हो जाता, तब तक मैं उसे पेंसिल नहीं देता। न देने का अर्थ नहीं ही देना है। पर इसके बावजूद बालकों का जी दुखाकर मैं मना भी नहीं कर पाता। और यदि बालक सामने आकर लौट गया हो, मुझ पर से अपनी प्यार भरी दृष्टि वापिस खींच ली हो, तो मेरे दिल में तीर की सी वेदना होने लगती। मैं उसे किस तरह से प्रसन्न करूं; पेंसिल तो नहीं ही दी जा सकती। देने से उसे क्या लाभ मिलने का? माई-बाप कहकर मनाऊं नहीं। न ही लाड़ लड़ाऊं। किसी और तरीके से प्रशंसा भी करूं, क्योंकि वह सब तो पुरस्कार-प्रशंसा वाला तरीका है। बालक को संकुचित-सा देखूं तो क्या मेरा मन दुखी न हो?'

'आखिर शाम को छुट्टी हो जाती है। बच्चा बिना बोले घर चला जाता है तो मुझसे रहा नहीं जाता, न सहा जाता है। किसी बहाने मैं बच्चे के घर पर चला जाता हूं। उससे मिलता हूं, उससे बातें करता हूं। उसके मन को जब अपने से जुड़ा हुआ अनुभव करता हूं तभी मुझको प्रसन्नता होती है। और हल्का मन लेकर घर लौटता हूं। ऐसा स्वभाव है मेरा। बालकों की पसंद-

1. श्री जुगतराम दवे से बातचीत के आधार पर।

नापसंद के विपरीत निर्णय लेता हूं तब भी वे मुझे चाहते हैं। इसका कारण मेरे मन का दब्बूपन नहीं, वरन हृदय की आर्द्रता है।'

'पर यह तो मेरा स्पष्टीकरण है। मेरा, याने एक अदने से बाल-शिक्षक का, एक अनुभवी का। इससे किसी को जानने योग्य मिलेगा, इसी दृष्टि से लिखा है।'[1]

गिजुभाई का अध्ययन अत्यन्त गहन एवं व्यापक था। उन्होंने किसी विचार अथवा मत विशेष से स्वयं को कोष्ठबद्ध नहीं रखा था। वे खुले दिमाग के थे और जीवनपर्यन्त खुले रहे थे।

एक महत्वपूर्ण बात और। गरीब-अमीर का भेद उनके मस्तिष्क में नहीं था। भिन्न-भिन्न वातावरणों से आने वाले बालकों के साथ वे सावधानीपूर्वक व्यवहार करते थे। अमीर परिवार के बालकों को बहुत समझाकर वे उनकी आदतें छुड़वाते थे। एक तरफ उनके प्रति पूर्ण सहानुभूति का व्यवहार और दूसरी तरफ अपने सद्गुणों की अनाक्रामकता—अपने व्यक्तित्व को आरोपित न करने की ऐसी विशिष्टता गांधीजी के अलावा विरले ही व्यक्तित्वों में दिखाई देती हैं, (The virtues should be active but never offensive...)[2]

आदर्श के प्रति एक प्रकार का नशा, धन-वैभव के प्रति निर्लेप वृत्ति, स्वतंत्र विचारों का जोम, और अगर नानाभाई भट्ट के शब्दों में कहें तो चना-चबैना फांकते हुए भी शिक्षा के काम के पीछे लगे रहने वाला मस्त मौला—ये गुण गिजुभाई के व्यक्तित्व में स्पष्टतया देखने को मिलते हैं।[3]

इन स्वभावगत विशेषताओं से उनका व्यक्तित्व नित्य प्रति विकसित होता रहा। साथ ही उनका कार्य भी अनवरत बढ़ता गया। परिणामस्वरूप हम वैचारिक दृष्टि से इतनी समृद्ध बाल-शिक्षण पद्धति के द्वारा स्वयं को सौभाग्य-शाली मानते हैं।

बालमन्दिर की शिक्षण पद्धति

गिजुभाई के बालमन्दिर में शिक्षण के मुख्य अंग थे: संगीत, इन्द्रिय शिक्षण, शान्ति की क्रीड़ा, जीवन-व्यवहार तथा मुक्त व्यवसाय के काम, भाषा शिक्षण, गणित शिक्षण, प्रकृति परिचय, कहानी, चित्र, नाटक, बाल-क्रीड़ा, प्रवास आदि-आदि।

संगीत

बालमंदिर में संगीत की शिक्षा किस प्रकार दी जाती थी, तथा दी जानी थी इस सम्बन्ध में गिजुभाई ने "कारीगरीनुं शिक्षण—।' नामक पुस्तक में विस्तार-

1. 'दक्षिणामूर्ति' त्रैमासिक—1926।
2. श्री जुगतराम दवे के साथ बातचीत के आधार पर।
3. श्री गोपालराव विद्वांस के साथ बातचीत के आधार पर।

पूर्वक लिखा है। प्रयोग करते-करते किस तरह से संगीत शिक्षण सुव्यवस्थित बना है, उसका तमाम विवरण उन्होंने दिया है। संगीत शिक्षण में गीत, बाल गीत, लोक, तालबद्ध गीत, डंडिया रास आदि मुख्य थे। इसके अतिरिक्त नृत्य, नृत्यगीत, प्रयाण तथा रास भी उसमें शामिल थे। 'बिल्ली बाघ तणी मासी', 'नथ घड़ी दे सोनारा रे', 'शाने लीधा मारा श्याम', 'पीर छे पीर छे', 'बाल मन्दिरियुं', 'हाँ रे रथ खेड़ो', 'मोर मोर क्यां थईने जईश' आदि गीतों से बाल-मन्दिर गूंज उठता था। नाच एवं नृत्यगीतों में मेडम पावलोव तथा डाल्क्रूज के विचारों का गिजुभाई पर अधिक प्रभाव था। लोक-समुदाय अपने बाल-वर्ग के लिए बालगीतों की रचना करता आया है। गिजुभाई ने उन बाल लोक-गीतों को अंगीकार किया तथा बालकों के विकास की दृष्टि से उन्हें व्यवस्थित रूप प्रदान करके अपने बालमन्दिर में प्रयुक्त किया। 'मारे घरे आवजो भावा', 'नहिं जाऊँ रे गावलड़ी चार बाने', 'वन मां बोले झीणा मोर', 'बंगला फक्कड़ बनाया' आदि लोकगीतों की सरलता तथा हृदयंगमता उनके दिलों तक पहुँच चुकी थी। ग्रामोफोन, रैकार्ड, शास्त्रीय संगीत तथा तुकबन्दियाँ भी उनकी नजरों से बचे नहीं थे। संगीत का उपयोग गिजुभाई ने मानसिक शान्ति, जीवन का आनन्द तथा विकासगामी अभिव्यक्ति के प्रयोजन से किया था। भाषा शिक्षण में भी इसका सहयोग था। लोकगीतों का जितना उपयोग उन्होंने किया था, उतना तो आज के बालमन्दिर भी नहीं कर सकते। आज के बालमन्दिरों में पद्यकथा एवं कठपुतली के प्रयोग देखने-सुनने में आते हैं। यह गिजुभाई के संगीत शिक्षण का एक आगे बढ़कर किया गया विकास है—अत्यन्त मनोहारी एवं चित्ताकर्षक।

इन्द्रिय शिक्षण

मोंटेसरी के सिद्धान्तों को दृष्टि में रखते हुए गिजुभाई ने इन्द्रिय शिक्षण को विकसित किया था। लम्बा-बौना, हल्का-भारी, छोटा-बड़ा, मुलायम-खुरदरा आदि का ज्ञान कराने के लिए तरह-तरह के उपकरण थे। गरम व ठंडा जानने अथवा गंध की परख करने के निमित्त आज जैसे व्यवस्थित उपकरण तब नहीं थे। कटोरे में ठंडा और गरम पानी भरकर ज्ञान कराया जाता था। आवाज की पहचान तथा सांगीतिक-संवेदन विकसित करने के लिए ध्वनि परिचायक मधुर घंटियाँ थीं, जो आज कहीं पर देखने को नहीं मिलतीं। ताल का ज्ञान देने पर गिजुभाई ने पर्याप्त बल दिया था। 'मोंटेसरी पद्धति' तथा 'मोंटेसरी प्रवेशिका' पुस्तकों में उन्होंने इन्द्रिय-शिक्षण की सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातों को अत्यन्त सरसता से समझाया है।

शान्ति की क्रीड़ा

यह खेल बालमन्दिर के शुरुआत के दिनों से ही गिजुभाई ने शुरू कर दिया

था। इस प्रवृत्ति का विकास दक्षिणामूर्ति की सभी संस्थाओं में इस गति से बढ़ा कि विनयमन्दिर (हाई स्कूल) में भी इसका उपयोग किया जाने लगा। इस प्रवृत्ति में उन्होंने धर्म को घुसने नहीं दिया था। इसका मुख्य प्रयोजन यही था कि मन शान्त बने, क्रियाकलापों में शान्ति एवं अनुशासन उपजे तथा नियन्त्रित गति की प्राप्ति हो। कर्मेन्द्रियों की शिक्षा में यह प्रवृत्ति मददगार थी। खेल की यह प्रवृत्ति इतनी व्यवस्थित एवं विशद बन गई थी कि इसका एक सुन्दर शास्त्र तैयार हो गया था। "दक्षिणामूर्ति" त्रैमासिक में श्रीमती तारा बेन मोडक एवं गिजुभाई द्वारा लिखे गए लेख उक्त कथन के साक्षीस्वरूप पठनीय हैं। यह विषय स्वयं गिजुभाई जैसे आत्मनिष्ठ (मिस्टिक) को रोचक लगता था।

जीवन-व्यवहार के काम

नाश्ता करना, परोसना, बर्तन साफ करना, आँगन व कमरा साफ करना, बगीचे में काम, साग सुधारना, कूटना, दलना, अनाज के दाने निकालना, हाथ-पांव धोना, कंघी करना, छोटे-छोटे कपड़े धोना, कपड़े पहनना और उतारना, बटन लगाना और खोलना आदि-आदि रोजमर्रा व्यवहार के काम बालमन्दिर की शिक्षा के अंग थे। गिजुभाई एवं उनके सहकर्मियों की यह विशेषता थी कि अत्यन्त स्वाभाविकता से ये प्रवृत्तियां वहाँ संचालित की जाती थी। इन प्रवृत्तियों से छोटे-छोटे बालकों में स्वावलम्बन की भावना घर कर जाती और उनका जीवन आत्मविश्वास से भरपूर बन जाता। बड़े-बड़े शहरों के अत्यन्त सम्पन्न बालमन्दिरों में जाकर देखें तो इस प्रवृत्ति का व्यापक विकास तो अवश्य मिलेगा पर स्वाभाविकता नहीं मिलेगी।

मुक्त व्यवसाय के काम

इस प्रवृत्ति के लिए गिजुभाई के बालमन्दिर में लकड़ी की ईंटें, बंगला बनाने की सन्दूक, मैकैनो, मिट्टी कुट्टी का काम, मोती का काम, कैंची का काम, तथा कुछ अंश तक चित्रकारी आदि का उपयोग होता था। आज के बालमंदिरों ने इस दिशा में अवश्य ही तरक्की की है, तथापि मिट्टी का काम, मोती का काम एवं चित्रों के सम्बन्ध में गिजुभाई के पास विपुल मात्रा में व्यवस्थित प्रवृत्तियां थीं। बालक के जीवन-विकास में इस मुक्त व्यवसाय प्रवृत्ति का अत्यधिक महत्व होता है।

गुड़िया घर नहीं

आज के बाल शिक्षाविद् अपने बालमन्दिरों में इस प्रवृत्ति को धीरे-धीरे अनिवार्य मानने लगे हैं। आज की संस्कृति के अनिवार्य अभिष्ट के रूप में इसे स्वीकार किया जाता है। बालक अपनी प्रच्छन्न वृत्तियों को गुड़ियों के माध्यम

से खेल ही खेल में व्यक्त कर देते हैं। अपने को अभिव्यक्त करने का भाव इसके पीछे निहित रहता है। इसके अलावा बालकों की स्वाभाविक क्रिया-कलापों का अवलोकन करने में भी गुड़ियाघर की गहरी उपयोगिता होती है। मेडम मोंटेसरी की तरह गुड़िया-खेल प्रवृत्ति द्वारा बालकों को जीवन की कृत्रिम गतिविधियां प्रदान करने की अपेक्षा गिजुभाई ने यह अधिक पसन्द किया कि बालकों को जीवन की वास्तविक प्रवृत्तियों से जोड़ा जाए। इसीलिए उन्होंने बालमन्दिर में जीवन की विविध वास्तविक प्रवृत्तियाँ शुरू कीं तथा बालकों से वास्तविक कार्य करवाए। कदाचित् इसीलिए गुड़ियाघर की जरूरत उन्होने महसूस नहीं की। और फिर गुड़िया के साथ खेलने वाले बालक की अपेक्षा जिंदगी के छोटे-बड़े कामों को स्वाभाविकतापूर्वक करने वाला बालक अवलोकन की दृष्टि से अकृत्रिम विषय (Natural Object) होता है।

भाषा शिक्षण

गुजराती भाषा के शिक्षण को मोंटेसरी पद्धति के अनुसार व्यवस्थित करने के लिए गिजुभाई ने बहुत प्रयत्न किये थे। अपने प्रयासों में वे सर्वथा सफल रहे तथा खरे उतरे। यह कोई छोटी सिद्धि नहीं है। इसके लिए वे अक्षम कीर्ति के पात्र हैं। इन प्रयासों में उनके भीतर बैठी जन्मजात शिक्षकीय आत्मा पूर्णतया प्रतिबिम्बित हुई है। 'प्राथमिक शाला मां भाषा शिक्षण', 'मोंटेसरी पद्धति', 'चिट्ठी वाचन,' 'व्याकरण पोथी' आदि पुस्तकों में उन्होंने अपनी भाषा-शिक्षण सम्बन्धी जानकारी को निरूपित किया है। प्रस्तुतीकरण की क्रमबद्धता, रसप्रदता, बालकों को क्रियाशील बनाने की क्षमता तथा बालकों के जीवन में भाषा-शिक्षण की एक सबल भूमिका को स्थायी बनाने की शक्ति को देखते हुए यह पद्धति वस्तुतः अद्वितीय एवं अपूर्व है। साथ ही वाचन एवं क्रिया-चिट्ठी के कार्य करते बालकों को देखकर किसी को भी आह्लाद हुए बिना नहीं रहेगा। (लेखक ने भी यह आनन्द प्राप्त किया है।) गिजुभाई ने शिक्षकों के साथ बालकों की बातचीत, कहानी, कथा-नाटक, तुकबन्दी, बालगीत, लोकगीत, अभिनय गीत, डाकपेटी आदि प्रवृत्तियों का उपयोग भाषा-शिक्षण की पूर्ति हेतु किया था।

गणित शिक्षण

गणित विषय में बचपन से ही गिजुभाई की अरुचि थी। यही कारण था भाषा-शिक्षण में जिस प्रचुर गति के उन्होंने प्रयोग किए थे, गणित-शिक्षण में नहीं कर पाये। पर गिजुभाई इस तथ्य से भलीभाँति वाकिफ थे। अपनी कमजोरी को ध्यान में रखते हुए तथा गणित-शिक्षण को अपनी अरुचि से दुष्प्रभावित न होने देने के लिए, गांधीजी के साबरमती आश्रम से वे विख्यात गणितज्ञ, आज

के विख्यात खगोलशास्त्री, श्री हरिहर भाई भट्ट को ले आए थे। गणित-शिक्षण तथा गणित प्रयोग की बातें उन्होंने इन पर छोड़ दी थीं। शिक्षण-कार्य में इतनी पैनी वैज्ञानिक दृष्टि से काम करने वाले शिक्षाविद् अथवा शिक्षक बहुत कम मिलते हैं। दसमलव के उपकरण—इकाई, दहाई की सारणी, सौ का वर्ग, हजार का घन आदि अभी मोंटेसरी पद्धति में ईजाद नहीं हुए थे। ये तमाम उपकरण गिजुभाई के अवसान के पश्चात् सामने आये थे। इनके अलावा मोंटेसरी पद्धति में जो गणित विषय के साधन हैं, उनका ही उपयोग होता था। गिजुभाई के विद्यार्थियों में से किसी-किसी की राय थी कि गणित की बजाय भाषा-शिक्षण में हमको ज्यादा मजा आता था। गिजुभाई की अन्तर्दृष्टि का प्रसाद इस विभाग को नहीं मिल सका था। आज दशमलव के उपकरण जोड़-बाकी-गुणा-भाग के पहाड़े, वर्गमूल, घनमूल, क्षेत्रफल, अपूर्णांक सिखाने के उपकरणों की वजह से मोंटेसरी पद्धति में गणित-शिक्षण अत्यन्त सरस तथा वैज्ञानिक हो गया है।

प्रकृति परिचय

बालक के सर्वांगीण विकास में प्रकृति का परिचय कराना गिजुभाई अनिवार्य समझते थे। इसीलिए दक्षिणामूर्ति बालमन्दिर में पक्षियों का परिचय, प्राणियों का परिचय, जीव-जंतुओं का परिचय, खरगोश-पालन, कीट-पतंगों का पालन, घोंसले ढूंढने और देखने सम्बन्धी साहित्य निर्माण की प्रवृत्ति पुष्कल मात्रा में विकसित थी। 'टेकरियो नी वनस्पति', 'वन वृक्षो', 'आश्रम वृक्षो', 'फूदां ने पतंगियां', 'आपणा पक्षियो', 'तारा ने ग्रहो' आदि पुस्तकों की रचना के पीछे भी यही कारण था। श्री नरहरिभाई पराख ने इसीलिए गिजुभाई को प्रकृति-शिक्षण का अग्रिम पुरस्कर्ता कहा है। बालमन्दिर के भवन के स्थल-चयन में भी गिजुभाई का प्रकृति-प्रेम परिलक्षित होता है। प्रवास के कार्यक्रमों से भी प्रमाणित होता है कि कितना सघन प्रकृति-प्रेम था उनका।

कहानी प्रवृत्ति

वैसे तो कहानी प्रवृत्ति भाषा-शिक्षण की सहायक अथवा अनुपूरक थी; लेकिन इस प्रवृत्ति का इतना विशद विस्तार हुआ कि पृथक् रूप से इस बिन्दु पर विचार करेंगे।

गिजुभाई बहुत पहले से ही मानते थे लोककथाएं एवं बाल कथाएं बालकों के विकास में बहुत ही उपयोगी हैं। इसी मान्यता के कारण काका कालेलकर के साथ उनकी मैत्री प्रगाढ़ बनी थी। 'समानशील व्यसनेषु मैत्री ! किकर्ड, गुल्ड, गोडार्ड, पीलरिशार, मिसेज कैथर, मिसेज मिलर, शोवोनादेवी आदि पश्चिमी लेखकों की पुस्तकों को पढ़ते-पढ़ते उनका उक्त विचार अधिक दृढ़

एक अवस्थित कला। वे स्वयं भी तो एक कुशल कहानी कहने वाले थे। कहानीमय वातावरण की निर्मिति से बालमन्दिर समृद्ध हो गया था। अनुशासन एवं व्यवस्था बनाने के लिए गिजुभाई ने शुरुआत के दिनों से ही कहानी विद्या का उपयोग शुरू कर दिया था। अपने साथियों के सहयोग से उन्होंने अनेक बाल वार्ताएँ इकट्ठी कीं। श्रीमती तारा बेन मोडक ने उन्हें पाँच श्रेणियों में विभक्त किया। आगे चलकर वे सब पुस्तकाकार प्रकाशित हुयीं। कहानियों में से कोई महाराष्ट्र से आई, कोई पंजाब से, कोई बंगाल से तो कोई हजारों मील दूर विदेशों से आई। कोई कहानी जर्मनी देश से आई तो कोई गरीब और भोले हब्शियों के प्रदेश से। गिजुभाई का बाल-प्रेम इन सबों को खींच लाया था। बच्चे उल्लास-उमंग के साथ इन कहानियों को पढ़ते, सुनते तथा अपने जीवन को हर्ष एवं उल्लास से युक्त बनाते। इन कहानियों के चयन में व्यवहृत सूक्ष्म विवेक, इनके वर्णनों से बालकों के जीवन में होने वाले लाभ-हानि के प्रभाव तथा कहानी कहने की शैली आदि-आदि के बारे में गिजुभाई एवं ताराबेन मोडक ने 'श्री दक्षिणामूर्ति' त्रैमासिक पत्र में जो-जो अत्यन्त सूक्ष्म विवेचनात्मक लेख लिखे हैं वे हमारे लिए आज भी माननीय-पठनीय हैं। और अन्त में गिजुभाई ने हमें "कहानी का शास्त्र" प्रदान किया है। अंग्रेज शिक्षाविद ए० एस० नील की कहानी कहने की मनोवैज्ञानिक पद्धति का भी उपयोग गिजुभाई बालमन्दिर में किया करते थे।

बाल नाटक

गिजुभाई के बालमन्दिर की आगामी मौलिक विशेषता है बाल नाटकों का आयोजन-मंचन। उन्होंने बाल-रंगमंच स्थापित करके बाल-शिक्षण के क्षेत्र में एक नये प्रयोग का सूत्रपात किया। बालकों के नाटक, उनके सम्बन्ध में नाटक, बालमन्दिर में नाटक तथा छोटे-बड़े सभी खेलकर दिखायें—ये सब चीजें उस जमाने को देखते हुए सर्वथा नयी थीं—अजानी। आकाश कुसुमवत्। अशक्य। गिजुभाई ने अपनी अन्तदृष्टि से वैज्ञानिक रीति से बाल-नाटक रचे, उनके श्रृंगार सजाये तथा स्वयं रंगमंच पर उतर कर उनके लिए धरती पर आकाश कुसुम तोड़ लाये।[1]

श्री नानाभाई भट्ट के शब्दों में बालमन्दिर के एक नाटक का वर्णन देखें : 'गिजुभाई, मनुभाई, हेमुभाई आदि बालशिक्षक तथा बचु आदि बालक नाटक में साथ-साथ उतरे थे। "सूंपड़कन्ना राजा" का नाटक था। गिजुभाई हज्जाम बने थे। 'दक्षिणामूर्ति' त्रैमासिक के लेखों को रखने का बैग हाथ में आया तो कहने लगे—'चल तू मेरी कोथली।' सिर पर किसी की धोती बांध ली। उस्तरे का कोई प्रबन्ध था नहीं, तो फुटपट्टी (स्केल) को ही उस्तरा बनाया। और यह—और वह, भेंगी आंख करते गिजुभाई आ खड़े हुए—और देखा तो हँस-हँसकर बुरा हाल हो गया! मनुभाई राजा बने। कान पर लोहे के छोटे-छोटे सूप बांध लिए। बचु बना उनका नौकर। सबों ने मात्र जरूरत के मुताबिक ही वेश बदला था। सीन-सीनेरी के नाम पर मात्र एक पर्दा था, नीला। उसको दो आदमी बन्द करते और खोलते। किसी के भी भाषण संवाद पहले से तैयार किये हुए नहीं थे। सूंपड़कन्ना राजा की कहानी को बड़ी होशियारी के साथ नाटक के रूप में ढाला। सभी लोग अपनी अक्ल एवं चातुरी के अनुसार बोलते तथा अभिनय करते। स्वयं स्फुरित होने की दृष्टि से ऐसे नाटकों की कीमत कहीं ऊंची होती है। "भगवान बुद्ध", टेगोर का "अचलायतन", श्रीकृष्णलाल श्रीधराणी का "वहला" नील का "भय का भेद", आदि नाटक श्री दक्षिणामूर्ति संस्था में अपूर्व रीति से खेले गए थे। उनके पीछे प्रेरकशक्ति के रूप में मौजूद थे हमारे गिजुभाई।

1. बाल शिक्षण प्रणेता गिजुभाई : रा०ना० पाठक।

चित्रकारी

चित्रकला शिक्षण के विभाग को भी गिजुभाई ने अत्यन्त वैज्ञानिकता एवं सोच-समझ पूर्वक विकसित किया था। उनकी मान्यता थी कि 'शाला में चित्रों का विषय होना ही चाहिए। जो विद्यार्थी आज इस विषय को पढ़ेंगे, वे भावी पीढ़ी की कलात्मक-अभिरुचि के वृक्ष का बीजारोपण करने का श्रेय प्राप्त करेंगे।' बालमन्दिर के चित्र-शिक्षण के प्रयोग तथा पाठ्यक्रम सम्बन्धी तमाम बातें गिजुभाई ने "कारीगरीनु शिक्षण—।" में तथा "दक्षिणामूर्ति" त्रैमासिक के लेखों में प्रकाशित की हैं। प्रोफेसर सली, मिस मार्गरेट ड्रमंड, कर्क पेट्रिक, डॉ. मोंटेसरी, फ्रोबेल आदि पाश्चात्य लेखकों के चित्रकला शिक्षण सम्बन्धी साहित्य का गिजुभाई ने गहन अध्ययन किया था। वे बालमन्दिर के बालकों द्वारा बनाये गए चित्रों को सम्भालकर रखने तथा इटली से मोंटेसरी-शाला के बालकों द्वारा बनाये चित्र मंगाकर उससे तुलना करते। प्रत्येक बालक के चित्र का बारीकी से मूल्यांकन करते और उसके माध्यम से बाल मन का, बालक की शक्ति का, बालक के व्यक्तित्व का अनुमान लगाते। किसी भी विषय का इतना सजगतायुक्त शिक्षण तो आज शायद ही किसी स्थान पर देखने को मिले।

बाल-क्रीड़ा

गलियों में बालक वृन्द अपने-अपने तरीके से खेल खेला करते हैं। बाल क्रीड़ाओं की बालकों को आकर्षित करने की शक्ति तथा उनका विकास करने की सक्षमता से गिजुभाई इस दिशा में आकर्षित हुए थे। इसीलिए उन्होंने

बालमन्दिर में खेलों का शुभारम्भ किया था। "बालको !"—"हाँ !"; "बनिया आया", "क्या-क्या लाया" तथा "गणगण बोशलो तेल तेल पानी" आदि बाल क्रीड़ाएं गिजुभाई ने पहले ही दिन से बालमन्दिर में शुरू कर दी थीं। उन्होंने अपने सहकर्मियों के सहयोग से अनेक प्रकार की बाल-क्रीड़ाएं एकत्र की थीं, व्यवस्थित की थीं, और आवश्यकतानुसार उन्हें रूपांतरित किया था। ये सभी क्रीड़ाएं बालकों को शान्त एवं व्यवस्थित बनाने, बालकों एवं अध्यापकों के बीच प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करने, तथा बालकों का शारीरिक एवं मानसिक विकास करने में बहुत-बहुत उपयोगी थीं। बालकों और बालकों के बीच के सम्बन्ध भी इन क्रीड़ाओं द्वारा प्रेममय एवं आनन्दमय बनते थे और यदि गम्भीरता से सोचें तो अपने मित्रों के साथ आनन्द से सामूहिक खेल खेलते बालक आगे चलकर तानाशाही वृत्ति की तरफ जाने की बजाय लोकतन्त्र की ओर प्रवृत्त होंगे। इसके द्वारा मानव-मानव के बीच का सम्बन्ध अधिकाधिक मानवतापरक बनता है। कितने महत्व की बात है कि इस दिशा में आज से 30-40 वर्षों पहले गिजुभाई की दृष्टि गई थी और उन्होंने सजगतापूर्वक बालमन्दिर में बाल-क्रीड़ाओं का संयोजन किया। बच्चों मे इससे गजब का आत्मविश्वास विकसित होता है।

बाल-भ्रमण

बालमन्दिर की प्रवृत्तियों में छोटे-बड़े बाल-प्रवासों का भी महत्वपूर्ण स्थान था। पहाड़ी वाले तख्तेश्वर महादेव, रूवापरी, विक्टोरिया पार्क, बोर-तालाब, समुद्रतट के स्थल आदि जब तब बालमन्दिर के बालकों की उल्लास भरी किलकारियों से गूंज उठते। पूरी योजना के साथ ये प्रवास आयोजित होते थे। प्रवासों के दौरान गिजुभाई की सूक्ष्म दृष्टि बालमन, बाल स्वभाव, बाल-व्यक्तित्व का निरन्तर अवलोकन करती रहती थी। उनके निबन्धों में इस प्रकार के प्रसंगों का प्रचुर उल्लेख मिलता है। प्रवासों के दरमियान वे बालकों को सभी स्थान पर घुमाते, तरह-तरह की जानकारी देते और मजेदार बातों से उन्हें प्रफुल्लित कर देते थे। बाल-प्रवासों की स्मृति के अनेक फोटोग्राफ गिजुभाई के कर्तृत्व की साक्षी देते हुए आज भी दक्षिणामूर्ति के एल्बमों में विद्यमान हैं। नदी के किसी खड्ड के पास छोटे से शिलाखंड पर घुटनों तक ऊंची धोती पहने खड़े तथा नदी में स्नान करते हुए बालकों पर दृष्टि रखते गिजुभाई को देखकर आँखों में हर्ष के आंसू छलक आते हैं। वह एक ऐसा व्यक्ति था जिसने रात-दिन, खाते-पीते, बैठते-उठते जीवन के प्रत्येक क्षण में बालकों के आनन्द, बालकों के विकास, बालकों के कल्याण की ही चिंता की थी। और इसी लिए जीवन का सभी कुछ कुर्बान कर दिया था। धनदौलत, सुख-वैभव, आराम-विश्राम सब कुछ त्यागकर 'मात्र बालगोपाल की ही गवाली की। 'मूंछाळी मां', बने।

सज्जा-वातावरण-सूक्ष्मदृष्टि

बालमन्दिर के सम्पूर्ण वातावरण पर एक नजर डाल कर देखें। स्वतंत्रता, बालकों के साथ सबों का व्यवहार एवं बातचीत, कार्यकर्त्ताओं का परस्पर व्यवहार, शाला की सज्जा, व्यवस्था—ये सभी उस वातावरण के अंग थे। कलामन्दिर के कार्यक्रम तथा प्रवत्तियां भी बालमन्दिर के वातावरण के आनंद में और वृद्धि ही करते थे। श्रीमती ताराबेन मोडक की गम्भीरतापूर्वक बातें एवं विचार करने का स्वभाव, सूक्ष्म कलादृष्टि, श्रीमती मोंधी बेटन की आंतरिक सूझ एवं बालकों के प्रति भावप्रवण मधुर दृष्टि; समस्त कार्यकर्त्ताओं की अमुक-अमुक विशिष्टताएं—सबों का गिजुभाई को सहयोग था और इससे बालमन्दिर का समग्र वातावरण दीप्तिमान हो जाता। परीक्षा की यातना को गिजुभाई ने बालमन्दिर से निष्कासित कर दिया था। बालकों की जानकारी सम्बन्धी ज्ञान का मूल्यांकन करने की अपेक्षा बालकों की विविध शक्तियों को मापना तथा जानना उन्होंने अधिक वांछनीय माना था। बालमन्दिर में बालक के प्रवेश सम्बन्धी नियमों पर ध्यान दें तो वहाँ भी गिजुभाई, ताराबेन मोडक तथा मोंधीबेन के व्यक्तित्व सामने दिखाई पड़ते। दक्षिणामूर्ति बालमन्दिर में बालक को भर्ती करने के नियम आज भी इस बात की धुंधली-धुंधली साक्षी देते प्रतीत होते हैं :

'बालमन्दिर में आने वाले बालक के कपड़ों के बटन इस तरह से लगायें कि उन तक बालक के हाथ पहुँच सकें।'

'बालक के सामने बालमन्दिर की निन्दा करने से बेहतर होगा कि अपने बच्चे को वहाँ से उठा लें।' (मानसिक संघर्ष से बचें।)

'बालक की जेब में छोटा-सा रूमाल रखें।'

धन्यं तत् तपोवनम्

गिजुभाई के बालमन्दिर की विविध प्रवृत्तियों एवं पक्षों का अभी हमने विहंगावलोकन किया। इस अवलोकन से यह तो दावे के साथ नहीं कहा जा सकता कि हमने बालमन्दिर के सांगोपांग एवं सन्तोषप्रद दर्शन कर लिए। ऐसे सम्पूर्ण दर्शन तो वही करा सकता है जिसके पास संजम-शक्ति युक्त भाषा हो। गिजुभाई की इस तपोभूमि में बालकों के लिए सदैव प्रदीप्त रहने वाली उनकी आत्मा के प्रकाश से चारों ओर उजाला विकीर्ण रहता था। आत्मा के इस

प्रकाश का वर्णन हम अपनी वाणी द्वारा कैसे कर सकते हैं ?

लेकिन गिजुभाई की आत्मा के इस प्रकाश को देखा था नानाभाई एवं हरभाई ने, काका साहब तथा किशोरलाल भाई ने, नरहरिभाई ने तथा महादेव भाई ने, प्रभाशंकर भट्टणी ने, मोतीलाल अमीन ने तथा मोहनदास गांधी ने। आत्मा के इस प्रकाश में नहाये थे तारा बेटन मोडक, मोंघी बेन बधेका, जुगतराम दवे तथा अनेक छोटे-बड़े बाल-गोपाल ! उन सबों के समवेत शब्द आज भी कानों में गूंजते हैं : धन्या:; ते दिवसा: धन्यं तत् तपोवनम् ।'

आत्मा का वह प्रकाश पृथ्वी तल से विलुप्त हो जाय, इससे पहले अपने अंत:करण में उसके दर्शन कर लेने चाहिए, तथा वह प्रकाश विलुप्त न होने देने की ऐसी परिस्थिति तैयार कर लेनी चाहिए ताकि गिजुभाई की आत्मा परम शान्ति का अनुभव करे ।

●

6

गिजुभाई का योगदान-3

बाल शिक्षा का प्रसार

'मैं हमारे लाखों बालकों के बारे में सोचता हूं । हमारी आंखों के सामने लाखों बालक कत्ल किये जायें और हम खड़े-खड़े देखते रहें, यह कैसे संभव है ? इस समय तो एक ही बात समझने की है । इन बालकों की हत्याएं होना रुके, इसके लिए शंख फूंको । और जिनके कान बहरे हो गए हैं उनके कानों को फोड़ दें ऐसी आवाज करो । मैं आज ऐसा शंख फूंकता हूं ।'

'आज तो बाल शिक्षण का एक प्रवाह बन चले, यही पर्याप्त है । ठोस काम करने वालों को मैं अपने पीछे आते देख रहा हूं ।'

—गिजुभाई

नूतन बाल शिक्षण की व्यापकता

गिजुभाई स्वयं अपने अभ्यास, प्रयोग तथा अनुभवों के आधार पर सफल बाल शिक्षक बने थे । बालकों के साथ काम करने की नई दृष्टि, नई सूझ तथा नया कौशल उन्होंने प्राप्त किया ।

लेकिन गिजुभाई एक उत्तम शिक्षक थे तो क्या इसी से नई दृष्टि एवं नई कार्य-प्रणाली व्यापक बन जाएगी ? उनके मन:चक्षुओं के सामने लाखों बालक तैरने लगे । नई बाल-शिक्षण पद्धति अधिकाधिक व्यापक बने और इसका लाभ ज्यादा से ज्यादा संख्या में बालकों को उपलब्ध हो, ऐसी भावना उनके हृदय को प्रेरित करने लगी थी ।

सहकर्मी

उक्त मन्तव्य की क्रियान्विति की दिशा में गिजुभाई की नजर पहले-पहल अपने सहकर्मी शिक्षकों पर ही पड़ी । 'ये सब बातें अगर मेरे सहयोगी साथी न समझें और इन्हें क्रियान्वित न कर सकें तो मेरे प्रयत्न बेकार जाएंगे अत: 'काम का काम और ज्ञान का ज्ञान' कहावत के अनुसार दोपहर का काम समाप्त होने के बाद शाम के समय प्रतिदिन मैंने एक घण्टे अपने सहकर्मियों को समझाना तय किया ।'

ये सहकर्मी थे मनुभाई मोरारजी भट्ट एवं नर्मदा बेन रावल, मोंघी बेन बधेका एवं तारा बेन मोडक, जया बेन पारख तथा विष्णुभाई भट्ट, और गिजुभाई से भी उम्र में बड़े श्री विट्ठलराय आवसत्थी।

'बालकों को स्वतन्त्रता दो। उनका अवलोकन करो। बाल ऐसा किया करते हैं, ऐसा मान लेने के बजाय पूर्वाग्रहमुक्त भाव से बालकों को देखना चाहिए। सिद्धान्त तथा व्यवहार का सम्मिश्रण करो।'

'लेकिन गिजुभाई! ये कुछ लड़के तो गड़बड़ तथा अव्यवस्था पैदा करेंगे ही। हो-हल्ला मचा देते हैं। ऐसे बालकों का क्या करना चाहिए? इन्हें सजा दें अथवा नहीं!' मनुभाई ने तंग आकर गिजुभाई से प्रश्न पूछा।

गिजुभाई ने प्रत्युत्तर में कहा: 'अपना दिमाग काम में लो।'[1]

मनुभाई स्वयं सोचने-विचारने लगे। स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को क्षति न पहुंचे ऐसा मार्ग तलाशने लगे। इसी तलाश में उनकी शिक्षा निहित थी।

'नर्मदा बेन भी अनुभव करते-करते बहुत ऊब गई पर महीनों मैंने उन्हें वही काम सौंपा और काम को करते-करते वे स्वयं जान गयीं कि काम कैसा चल रहा है, कैसा चलना चाहिए था, कहां कैसी कठिनाई आ रही है और कैसे दूर होगी आदि-आदि।'[2]

'श्रीमती तारा बेन मोडक ने भी लिखा है: 'हम कितनी ही बार चर्चा करते-करते थक जाते थे। जब तक मुझे अच्छी तरह से समझ में न आती मैं हां नहीं कहती थी। गिजुभाई सखेद बात छोड़ देते। मैं ही दुखी होती की बात कैसे समझ में नहीं आई, अथवा यदि मेरी बात ही थी तो मैं गिजुभाई को कैसे नहीं समझा सकी? अन्ततः बात को छोड़ देने के पश्चात् उनके किसी आचरण द्वारा, किसी कृति अथवा प्रसंग द्वारा मुझे स्वतः बात समझ में आ जाती।'[3]

शिक्षक समाज

गिजुभाई के सहकर्मी नई बाल-शिक्षण पद्धति के रंग में रंगने लगे। उनकी दृष्टि अब दूर-दूर तक पहुंचने लगी। घर की सफाई के बाद अब उन्होंने आंगन की सफाई शुरू की।

वयोवृद्ध साथी श्री विट्ठलराय आवसत्थी लिखते हैं: 'शहर भावनगर के अध्यापकों को एकत्र करके गिजुभाई ने कई व्याख्यान दिए थे, उनमें 'शिक्षक कैसा हो?, 'बालकों से कैसे व्यवहार करें?' 'शिक्षण कैसे करें?' आदि

1. बाल शिक्षण प्रणेता गिजुभाई: रा०ना० पाठक।
2. "दक्षिणामूर्ति" त्रैमासिक, 1922 गिजुभाई।
3. स्मरणांजलि: ताराबेन मोडक।

अनेकानेक विषयों पर विवेचन प्रस्तुत किया और इस प्रकार नई शिक्षण पद्धति का अध्यापक वर्ग को ज्ञान कराने का उन्होंने प्रयत्न किया। सभी अवसरों पर मैं सहयोगी की तरह साथ रहकर उनके व्याख्यानों को यथासम्भव अक्षरशः लिपिबद्ध करके उन्हें सौंप देता। वे आलेख कालांतर में पत्रिका के रूप में प्रकाशित होते थे।'[1]

अन्य संस्थानों में दिये गए व्याख्यान

गिजुभाई के नाम की एवं उनके कर्तृत्व की सुवास दूर-दूर तक पहुंचने लगी थी। बाहर की संस्थाएं भी अपने शिक्षकों को इस नयी पद्धति एवं दृष्टि से परिचित कराने के लिए उनके व्याख्यान आयोजित करने लगे। श्री किशोरलाल मशरूवाला तथा काका कालेलकर के आग्रह पर गुजरात विद्यापीठ में दिये गए उनके व्याख्यान वस्तुतः महत्वपूर्ण हैं।

माता-पिता

परन्तु 'जब तक माता-पिता विद्यालयों का विरोध करेंगे तब तक विद्यालय निष्फल रहेंगे। जब वे विद्यालय के अनुकूलवर्ती घर में विद्यालय स्थापित करेंगे तथा विद्यालय में घर के जीवन तत्वों को संयोजित करेंगे तो शिक्षण का कार्य जैसा इस समय है, उससे भी कहीं आगे बढ़ जाएगा। शिक्षकों की यह सतत जिम्मेदारी है कि शिक्षण की सफलता के लिए माता-पिता को बाल-शिक्षण में रुचिशील बनाएँ।'

इस काम के लिए गिजुभाई ने कमर कस ली। उन्हीं के शब्दों में—

'हम माता-पिता की सभाएं आयोजित करते। एक सभा बालमन्दिर के बालकों की माताओं की तो दूसरी पिताओं की। बालक भगवान द्वारा अर्पित अमूल्य सम्पत्ति है। उसे हमें संभालकर रखनी चाहिए। वे हमें अत्यन्त प्रिय हैं इसलिए उनका अनेक प्रकार का हित कैसे हो, यह विचार हम दिल से निकाल ही नहीं सकते। अगर हम उन्हें मारेंगे, गालियां देंगे, ठोठ कहेंगे, हल्का गिनेंगे तो इससे उनका हित नहीं होगा। ऐसा करेंगे तो बच्चे मूर्ख बनेंगे तथा पीछे से आप पछताएंगे। इस प्रकार मैं उन्हें ऐसा करें, वैसा करें यह उपदेश देता। माताएं दत्तचित्त सुनतीं। वे अपनी कठिनाइयां सामने प्रस्तुत करतीं और मैं उनका समाधान करने का प्रयास करता। वे कहतीं: 'आपका कहना सही है, पर मानें नहीं तो करें क्या? मारना क्या अच्छा लगता है? पर छोकरे बहुत ही सताने लगते हैं तो ऐसा हो जाता है।'

उन पर मेरे भाषण का प्रभाव पड़ा। बालक मार-पीट से बच जाते। फिर

1. स्मरणांजलि: विट्ठलराय आवसत्थी

भी जब कभी किसी बालक की पिटाई होती और वह बालमन्दिर में आकर मुझे बताता कि 'मेरी मां ने मुझे पीटा' तो माता के नाम चिट्ठी लिख भेजता कि 'मारें नहीं कृपया' तो बेचारी माता पढ़कर शर्मिन्दा हो जाती। माता जब मिलती तो कहती : बापू ये इतने सारे बच्चे आपके ही सम्भारने में आते हैं। हम तो कायर बन जाती हैं। मारे बिना छोकरों को रख पाना बहुत कठिन है।'

'बालमन्दिर में बालक कैसे साफ-सुथरे कपड़े पहनकर आते हैं और कैसे पहनें, ये बातें भी भाषण में बताता। लड़कों को घर में क्या-क्या काम कराया जाना चाहिए, उन्हें गलियों में किसलिए भटकने मत दो, इस पर भी प्रकाश डालता। यानी भाषण में पर्याप्त उपदेश होता था। माताएँ उन पर अमल करतीं।

'पिताओं को नई शिक्षा पद्धति का अर्थ समझाता। किस कारण से यह विद्यालय अलग प्रकार का विद्यालय समझा जाता है, इसके विशेष विभाग कौन-कौन से हैं, उनका समग्र लाभ क्या हैं—ये सब बातें बताता। मुझे उनको समझाना पड़ा कि यहां पर अन्तत: बच्चा पढ़ेगा, और स्वत: पढ़ने लगेगा। दृढ़तापूर्वक पढ़ेगा, स्थायी पढ़ेगा और ऐसी पढ़ाई करेगा कि जिसका स्वयं उपयोग करे।'

'पर माताओं में विश्वास होता है, वे प्रेमपूर्वक अनुसरण करती हैं। विश्वास के कारण उनकी कठिनाइयां दूर भी हो जाती हैं पिता बुद्धि द्वारा पकड़ने को चेष्टावान रहते हैं। वे क्रिया करने की बजाय चर्चा करते हैं। उनकी उलझन तत्काल नहीं सुलझती। बावजूद इसके घर तो माता-पिता दोनों का है। पिता की सहानुभूति एवं स्पष्ट समझ न हो तो माता का काम अवरुद्ध हो जाता है। यही नहीं, दोनों ओर की खींचातानी में उल्टा बिगड़ जाता है। उत्तम रीति से बालकों का संवर्धन वहीं होता है जहां माता-पिता दोनों एकसमान दृष्टि, मति के हों तथा आपस में अविरोध भाव से व्यवहार बर्ताव करें। मेरे लिए दोनों का सहयोग अनिवार्य है और सचमुच मुझे मिला भी।

'अपने भाषणों को मैं बाद में प्रकाशित करता तथा माता-पिता के पास भिजवाता।'

लेकिन अत्यन्त दृष्टि सम्पन्न गिजुभाई की मात्र इतने से ही संतोष कैसे होता? उनके जी में आता "भाषणों की यह प्रवृत्ति अपने आप में अधूरी चीज है। शिक्षण-कार्य जितना अधिक महत्वपूर्ण है, उतना ही कठिन भी। बालकों की पढ़ाई पर इसकी सफलता निर्भर रहती है। शाला में आने वाले बालकों की पढ़ाई को घर में जाकर रहे बगैर तथा माता-पिता से लम्बी बातचीत किये बगैर अधूरा समझो। अधूरा है भी। इस दिशा में मैं विशेष काम नहीं कर पाया हूं। कठिनाइयां स्वाभाविक हैं। लेकिन बालमन्दिर के काम को

और अधिक सुन्दर तरीके से करने के लिए शिक्षकों को घरों में जाना होगा। उन्हें माता-पिता की कठिनाइयों को सुनना पड़ेगा। बालकों में संस्कार-कुसंस्कार डालने वाले घर में कौन-कौन से स्थल हैं, और उनका क्या करें—यह विचार करना होगा। इसका कुछ समाधान 'प्रत्येक मोहल्ले में छोटा-सा बालमन्दिर बनने' में देखा जा सकता है।"[1]

किसी के घर पर गिजुभाई अगर मिलने को गए तो यह उनकी बाल-हितैषणा ही समझनी चाहिए। गिजुभाई के शिष्य तथा वर्तमान में अहमदाबाद की एक मिल में रिसर्च ऑफीसर के रूप में कार्यरत एक सज्जन का एक प्रसंग उल्लेखनीय है :

गिजुभाई हमारे घर पर पिताजी से मिलने को आए थे। उस समय मैं छह वर्ष का हूंगा। मैं दक्षिणामूर्ति बालमन्दिर में पढ़ता था। उन्होंने मेरे पिताजी के साथ अनेक प्रकार की बातें की। फिर मेरे पिताजी से उन्होंने कहा : 'बाबूभाई इस बच्चे को घर के भीतर एक अलहदा कोना या छोटी-सी अलमारी दो न! उसमें वह अपनी वस्तुएँ रखेगा, सजाएगा, संभालेगा। बच्चे पढ़ सकें ऐसी कुछ किताबें भी ला दो न! कीमत भी ज्यादा नहीं लगेगी और मजे ले लेकर पढ़ेंगे।'

'और दो दिनों में ही पिताजी से मुझे उनकी टेबल की एक दराज मिली। आलमारी का एक खाना भी मिला। मैं अपनी किताबें टेबिल की दराज में रखता और अन्य चीजें आलमारी के खाने में। उन चीजों को संभालकर रखने तथा व्यवस्थित तरीके से सजाने में कितना मजा आता! पिताजी ने मेरे लिए कहानी की छोटी-छोटी किताबें खरीद दी थीं। जिस समय मैं उन पुस्तकों को पढ़ने लगता अथवा आलमारी में अपनी चीजों को सजाने लगता तो कई बार मेरे पिताजी भी मेरे पास बैठ जाते।'[2]

ये रिसर्च आफीसर आज अपने बालकों की बाल शिक्षा को अत्यन्त वात्सल्यपूर्वक आगे बढ़ा-पनपा रहे हैं। गिजुभाई द्वारा एक क्षण में कहे गए दो-चार छोटे-छोटे वाक्यों ने सामाजिक-जीवन में कैसा स्थायी प्रभाव अंकित कर डाला है।

मित्रवर्ग

गिजुभाई के महान तथा पवित्र कार्य का अवलोकन करने को अनेक मित्र आते। इन मित्रों में मुख्य थे श्री परमानंद कापड़िया एवं हीरालाल शाह, काका कालेलकर तथा जुगतराम भाई। इन मित्रों से मिलने पर गिजुभाई घंटों तक इनके साथ चर्चाएँ करते। अनेक प्रकार के विषयों की छान-बीन होती। अपने-अपने

---

1. श्री दक्षिणामूर्ति—मै० 1926।
2. श्री दिनकरराय बाबूभाई त्रिवेदी अहमदाबाद से बातचीत के आधार पर।

प्रयोग भी बताते और उनके परिणाम भी बताते। श्री परमानंद भाई ने उन दिनों की बातें स्मरण करते हुआ लिखा है : 'बाल शिक्षण उनका विशिष्ट क्षेत्र था। फिर भी उनकी दृष्टि सर्वग्राही थी। उनका स्नेहिल एवं उत्फुल्ल स्वभाव मौन रहने वालों को भी मुखर बना देता था। बालमन्दिर में उनके साथ घूमना तथा नये-नये अनुभवों की बातें सुनना दो क्षण के लिए शोर गुल तथा नोन-तेल लकड़ी की दुनियां से एक प्रकार की विस्मृति थी। श्री हीरालाल शाह को गिजुभाई का कार्य इतना महत्वपूर्ण लगा कि उन प्रयोगों को सुन्दरता से करने के लिए तख्तेश्वर के पास की पहाड़ी पर पक्षियों के घोंसले जैसा बालमन्दिर बनवा दिया। यही नहीं, बाल साहित्य प्रकाशन के लिए धन भी प्रदान किया।

काका कालेलकर ने तो मैत्री के शुभारंभ के समय ही घोषणा कर दी थी कि : 'गिजुभाई एक स्वयंभू शिक्षाविद् हैं। शिक्षा की बुनियाद स्थापित करने में वे बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका निभायेंगे।' उनके वचन बिल्कुल सत्य चरितार्थ हुए। 'ऋषिणां पुनराद्यानां वागमर्थो अनुधावति।'

श्री जुगतराम दवे भी गिजुभाई जैसी ही मूंछों वाले वैसे ही सादगीपूर्ण एवं सरल थे। एक-सी प्रकति के दोनों आ मिले। बाल साहित्य के सृजन की बात हो अथवा हिजरतियों[1] के बालकों को संभालना हो; बाल पुस्तकें ठीक नहीं बनने के लिए गांधीजी को दो बातें सुनाना हो अथवा बाल मन्दिर के सुन्दर कार्यक्रमों को दीन-हीन जनों की झोंपड़ियों तक पहुंचाने का प्रयत्न करने का सवाल हो, सर्वत्र ये जोड़ीदार मौजूद रहते।

धीरे-धीरे मित्रों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई। इन सबों को गिजुभाई ने चर्चा द्वारा, पत्र द्वारा अथवा रूबरू अपने प्रयोग दिखाकर इस नूतन बाल शिक्षण पद्धति की ओर भावमय, भक्तिमय किसी न किसी रूप में योगदान करने योग्य बनाया था। गुजरात की विचारशील प्रजा को नयी शिक्षा तथा बाल-शिक्षण की ओर उन्मुख करने में यह कोई छोटी या न्यून महत्व की घटना नहीं है।

अध्यापन मन्दिर

'शिक्षा तथा बाल-शिक्षण की दिशा में गिजुभाई की उत्कंठा इतने से प्रयासों से ही संतुष्ट होने वाली नहीं थी। शिक्षा की जिस नई दृष्टि को उन्होंने प्राप्त किया था, उसे सम्पूर्ण देश के शिक्षक वर्ग को प्रदान करने की बात सोची, क्योंकि उसी द्वारा बालकों के विकास में अभिनव सुधार की उम्मीद थी। शिक्षकों तथा परीक्षा के आतंक से कुचली हुई होने के कारण बाल-प्रजा बेजान भयत्रस्त, निष्ठुर व पंगु बनती जाती थी—यह देख-देखकर उनका हृदय कलप उठा था।' इस अनुभव ने अध्यापन मन्दिर को जन्म दिया।

गिजुभाई अध्यापन मन्दिर में शिक्षण की नई दृष्टि तथा तदनुरूप सम्पूर्ण जीवन का निर्माण करने का विचार केन्द्र में था। इसी केन्द्र के चतुर्दिक् उन्होंने सम्पूर्ण पाठ्यक्रम तथा प्रवृत्तियां संयोजित की थीं। नूतन बाल-शिक्षण का प्रत्यक्ष काम करवा कर छात्राध्यापकों को तैयार करना था। 'अध्यापन मन्दिर के विद्यार्थी यह ज्ञान गिजुभाई के वक्तव्यों से नहीं, उनके प्रत्यक्ष जीवन से सीखते। गिजुभाई का सम्पूर्ण जीवन एक जागरूक वैज्ञानिक की भांति क्रमबद्ध एक जैसा, पानी के निर्मल निर्झर की तरह प्रवाहमान था। विद्यार्थियों को उससे वांछित प्रेरणा एवं आवश्यक मार्गदर्शन मिलता था।'

प्रारंभ में विद्यार्थियों की संख्या कम थी। उस समय 'गुदड़ी अध्यापन मन्दिर' चलता था। दिन के समय बालमन्दिर चलता था। सवेरे-सवेरे सर्दी के दिनों में गिजुभाई गुदड़ी में लिपटे व्याख्यान देते थे। उधर वजुभाई दवे आदि छात्राध्यापक गुदड़ियां तथा लिहाफ ओढ़कर व्याख्यान सुना करते थे। गिजुभाई के पास गुदड़ियां ओढ़कर बाल-शिक्षण की दीक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी आज गुजरात के समर्थ बाल-शिक्षाविद् हैं। उन्होंने बाल मन्दिर स्थापित कर लिये हैं तथा इसी कार्य में अपना जीवन समर्पित कर चुके हैं।'

फिर तो शिक्षण प्राप्त करने आने वाले भाई-बहनों की संख्या बढ़ गयी और बड़े सवेरे से देर रात तक बाल मन्दिर तथा अध्यापन मन्दिर की गतिविधियों से वातावरण गूंजने लगा।

'गिजुभाई आचार्य, ताराबेन मोडक उपाचार्य तथा गृहमाता। प्रवेश के लिए ज्यों ही विद्यार्थी आता कि गिजुभाई उसका मूल्यांकन कर लेते। विद्यार्थियों के प्रवेश के नियम कई दफे विद्यार्थियों की विशिष्टताओं को देखकर निर्मित होते।'

'प्रात:काल चायपान के पश्चात् गिजुभाई दाढ़ी बनाने बैठे थे। उस समय पालनपुर से एक विद्यार्थी आया—लम्बा अचकन, घुटनों तक धोती, टेढ़ी टोपी तथा खड़े रहने का तरीका नया। दरवाजे पर खड़े होकर उसने गिजुभाई को नमस्कार किया।

गिजुभाई ने सिर से पांव तक निरख कर पूछा : 'कहां से आये हो।'
'पालनपुर से, उमियाशंकर जोशी।'
'दाढ़ी बनाना आता है ?'
'अपनी बनानी आती है।'

---

1. सन् 1930 में सूरत के पास बारडोली जिले के किसानों ने सरदार पटेल के नेतृत्व में सत्याग्रह किया। सरकार ने उन किसानों की सारी सम्पत्ति छीन ली। अतएव ये किसान सूरत के समीप एक अन्य स्थान पर तंबुओं में बसाये गए। इन निष्कासित किसान परिवारों को सहायता देने के लिए गिजुभाई और जुगतराम दवे अपने सहकर्मियों के साथ वहां गए। इन लोगों ने किसानों के बालकों की पढ़ाई का उत्तम प्रबन्ध किया। वहीं पर वानर सेना, मांजर सेना जैसी नई प्रवृत्तियां आयोजित कीं तथा बालक्रीडागण भी संचालित किया। —लेखक

'बहुत अच्छा ! नहा-धोकर तैयार होओ, ताराबेन से मिलकर पहाड़ी पर आओ।'

भाई उमियाशंकर निवृत्त होकर ऊपर आये। गिजुभाई ने आज्ञा दी, 'इस बालमन्दिर के दरवाजों को घिस-घिसकर साफ करो। बालकों की चप्पलें व बूट करीने से रख दो। बालक शौच जाएं तो इसकी खबर रखो। उसकी सफाई में सहयोग दो। और बालमन्दिर बन्द हो तो मेरी चप्पलों के टांका लगवा लाना।'

'श्री उमियाशंकर जोशी की पढ़ाई शुरू हो गई।'

बालमंदिर के कमरों से बीटें साफ करने का काम हो या बालकों के जाजरू में मिट्टी डालनी हो, बीमार बालक की उल्टी साफ करनी हो या टट्टी गए बालक को धोने का काम हो—इनमें से कोई भी काम गिजुभाई की शिक्षा में निचले दर्जे के नहीं गिने जाते थे। बल्कि ऐसे कामों में आने वाली घिन को गिजुभाई प्रेम, वात्सल्य अथवा आग्रहपूर्वक समझाकर दूर कर देते। वे कहते : 'इन कामों से आपको बाल-शिक्षण की सच्ची शिक्षा स्वतः मिल जाएगी, ऐसा मेरा विश्वास है। आप लोगों को बाल-शिक्षक की माता बनना पड़ेगा। पिता का ज्ञानदीप आपके पास है। माता वाली श्रद्धा नहीं। वह ऐसे कामों द्वारा मिल जाएगी। वैसे पुस्तकें, भाषण, पदार्थ-पाठ सभी कुछ हैं, जिनमें प्रयत्न द्वारा हम दक्षता प्राप्त कर ही लेंगे, लेकिन श्रद्धा के बिना सब कुछ धूल है...'

श्रमजीवी लोगों के जीवन का वास्तविक परिचय मिले तथा उनकी जिंदगी के गुण-दोषों की स्पष्ट जानकारी प्राप्त हो, इसके लिए गिजुभाई अक्सर साफ-सफाई का कार्यक्रम भी आयोजित करते रहते थे 'भगलानो गीगलो' तथा 'सीदियानी तारकी'[1] की भांति उपस्थित देने का प्रसंग तो अच्छी तरह से जाना-पहचाना है।

गिजुभाई विद्यार्थियों को हृदय की शिक्षा देने के लिए भी चेष्टावान थे। टेकरी की निःशब्द शांति में एक बार प्रातःकाल प्रवचन करते समय उन्होंने अपने छात्राध्यापकों से कहा था :

'आप सभी लोग बाल-शिक्षण की शिक्षा लेने यहां आए हैं। इसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हृदय की शिक्षा है। आज की दुनिया में हमारे बापू परम

1. गिजुभाई का नाम गिरिजाशंकर भगवान जी था अतः उन्हें भगवान जी का (भगला का) गिरिजाशंकर (गीगलो) भी कहा जा सकता है। किसी को सम्बोधित करने का यह ओछा तरीका है, असम्मानजनक। लेकिन इसमें एक अच्छाई भी है। दो व्यक्तियों के मध्य नैकट्य की गहनता का पता चलता है। श्रमजीवियों में यही तरीका प्रचलित है। उन लोगों की जिंदगी का वास्तविक परिचय देने के लिए गिजुभाई अपनी कक्षा में बालकों की हाजरी कभी-कभी इस प्रकार लिया करते थे। इस प्रकार ताराबेन सदाशिव को, सीदिया की तारकी सम्बोधन द्वारा बुलाया जाता था।—लेखक

आस्तिक पुरुष हैं। डॉ० मोंटेसरी भी महान आस्तिक हैं। उन लोगों ने निर्दोष बालकों में ईश्वर के दर्शन किये हैं। हमें भी उस बाल-देवता के प्रति विनम्र भक्तिभाव व्यक्त करना है। हमें बालकों को ईश्वर मानकर उनकी सेवा में अपने को धन्य अनुभव करना चाहिए। हमने अभी भजन सुना। मेरे पास में बैठे श्री हरिहरभाई ने अभी हाल ही में इसे रचा है। ये हमारे यहां पर गणित-शिक्षण देने के लिए आए हैं। इनसे हम गणितशास्त्र का ज्ञान तो सीखेंगे ही, पर जीवनशास्त्र के बिना अन्य शास्त्र निरर्थक हैं। इनके गाये हुए भजन की 'एक ही चिनगारी' हमें लगे तो उनका काव्य, मेरा प्रवचन तथा आप लोगों का यहां आगमन सफल हो जाए।'

प्रत्येक विद्यार्थी के वैयक्तिक जीवन की भी वे खबर रखते थे। जहां कहीं मार्गदर्शन की अथवा मदद की जरूरत पड़ती वे सहायता देते थे। भावना एवं उत्साह से भरे नामले भाई, को फीस की चिन्ता से मुक्त करने तथा एक अन्य विद्यार्थी को गरुड़ चील के प्रेम-विवाह की कथा द्वारा समझाने का प्रसंग—दोनों जाने-पहचाने प्रसंग हैं। बीमारी के अवसरों पर तो वे विद्यार्थियों की माता-पिता से भी बढ़कर दवा-दारू तथा टहल करते। भाई प्रभुदयाल धोलकिया की बीमारी का प्रसंग उन्हीं के शब्दों में देखें :

'भावनगर के मशहूर मलेरिया ने मुझे धर दबोचा। बालमन्दिर में संगीत शुरू हुआ तो शरीर में ठंड की कंपकंपी प्रविष्ट हुई : मन को कठोर करके कंपकंपी को दबाकर बैठ गया। परिणाम यह हुआ कि घंटे भर बाद आंच में जैसे गेहूं-जौ भुने जाते हैं वैसा टेम्परेचर चढ़ा। साढ़े छह डिग्री। अचानक गिजुभाई मेरे पास आए। मेरी शक्ल देखी। पीठ पर हाथ फिराते हुए बोले : भले कच्छी मानुष ! इस सीमा तक कच्छी उज्जड़ होते हैं? चलो अपने निवासस्थान में।' ऐसा कहकर मुझे बाहों में उठाकर निवास स्थान पर ले गए।

'शाम को साढ़े छह बजे जब मैंने आंख खोली तो मेरे बिस्तर पर, माथे बर्फ घिसते हुए गिजुभाई और पांवों की तरफ मां का प्यार भरा हाथ फिराते ताराबेन को सामने देखा। दोनों ने प्यार से पूछा : 'अब कैसी तबियत है?'

'मुझको लगा कि जैसे बुखार भाग गया।'[1]

कितने ही प्रसंग हैं। किन-किन को याद करें, किन-किन को छोड़ें। महान आत्मा के जीवन का प्रत्येक पल महान होता है।

इसीलिए श्री विजुभाई दवे तथा श्री चन्दुभाई भट्ट आदि विद्वान लिखते हैं कि 'सबों के साथ हार्दिक सम्बन्धों के कारण गिजुभाई सबों के हृदय तक पहुंच जाते और उस हृदय में बालभक्ति का दीप प्रज्वलित कर देते।' गिजुभाई के अनेक शिष्य आज बाल-कल्याण के कार्य को जीवन-कर्म के रूप में अंगीकार कर चुके हैं। उसका रहस्य यह है।

1. स्मरणांजलि : प्रभुलाल धोलकिया।

सभाओं के आयोजन

गिजुभाई अपने छात्राध्यापकों द्वारा गलियों में सभाएँ आयोजित करके बाल-शिक्षण का प्रचार कार्य करवाते थे। इन सामूहिक आयोजनों में 'बालकों को पीटें नहीं', 'बालकों कों डरायें नहीं', बालक हमारी अमूल्य सम्पत्ति है', "बाल सेवा ही ईश्वर पूजा है' आदि सूत्रों का उपयोग करते हैं। विद्यार्थियों को इस प्रकार के प्रयोजनों से प्रत्यक्षतया यह जानने को मिल जाता कि किस समाज में जाकर उन्हें काम करना है, और इसके लिए उन्हें कितनी व कैसी कैसी मंजिलें पार करनी हैं।

नूतन बाल शिक्षण संघ

गिजुभाई के शिष्य गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, मध्यप्रदेश, सिन्ध आदि स्थानों में जाकर अपना कार्यक्षेत्र स्थिर करने लगे। उनके आसपास धीरे-धीरे बाल-शिक्षा के नये विचार फैलने लगे। गिजुभाई का विचार अब महतो मही-यान् बना। नूतन बाल-शिक्षण की भावना की इन समस्त विविध शक्तियों को समेकित करके बाल-शिक्षण के निमित्त व्यवस्थित रीति से उत्साहपूर्वक कार्य करने वाला एक विराट शक्ति-स्रोत बनाने का उन्होंने विचार किया।

बाल-शिक्षण की नई पद्धति के समस्त समर्थकों को उन्होंने भावनगर में दक्षिणामूर्ति बालमन्दिर के प्रांगण में आमंत्रित किया। प्रथम मोंटेसरी सम्मेलन श्रीमती सरला देवी साराभाई की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। सभी उपस्थित बाल-शिक्षा प्रेमियों ने वैज्ञानिक दृष्टि से इस नई विचार-पद्धति की चर्चा-परि-चर्चा की और अन्त में बाल-शिक्षण संघ की स्थापना हुई।

गिजुभाई तथा ताराबेन संघ के मंत्री बने। संघ के मुखपत्र के बतौर इन्हीं दोनों के संपादकत्व में "शिक्षण पत्रिका" मासिक प्रकाशित कराना तय किया गया। नई पद्धति के अनुरूप बाल-साहित्य के सृजन की सार्वजनिक घोषणा की गई। मोंटेसरी शिक्षण के उपकरण विदेशों से मंगाकर काम में लाना खर्चीला पड़ता था। शिक्षण को व्यापक बनाने के मार्ग में यह एक मुख्य अवरोध था। इसके समाधान की दिशा में भी चर्चा चली।

इस सम्मेलन में गिजुभाई का प्रवचन अत्यन्त प्रेरणास्पद तथा हृदयवेधक था : 'मोंटेसरी पद्धति महज एक शिक्षण-पद्धति नहीं, न यह मात्र शिक्षा का एक प्रखर क्रांतिकारी विचार है; यह वैज्ञानिक दुनिया का मात्र एक नया सत्य ही नहीं है, न यह मात्र आर्थिक संकटों का एक-अकेला समाधान, और न ही आज की राजनीतिक उलझनों का सफल समाधान है—यह एक दृष्टि है, नया प्रकाश है। जीवन अखण्ड और अविभाज्य है; इसके कई पहलू हैं। शिक्षण, समाज आदि अनेक पहलू हैं। यह नया प्रकाश समग्र जीवन को आलोकित करता हुआ इन तमाम पहलुओं पर अपनी नयी किरणें प्रकाशित करता है।'

'शिक्षण में यह एक नयी विधि का सूत्र पात है। इससे शिक्षा में नये आदर्शों की स्थापना होती है। शिक्षक की पदप्रतिष्ठा में क्रांति की सूचक है। इसके माध्यम से समाज की भूमिका नए सिरे से रची जाती है; मानसशास्त्र में नया दृष्टिकोण निर्मित होता है; व्यक्ति-व्यक्ति, समाज-समाज, तथा राष्ट्र-राष्ट्र के बीच के सम्बन्धों को नयी शृंखला से जोड़ता है। मनुष्य की शक्ति की तथा चारित्र्य की सफलता की नयी कीमत आंकता है।

यह पद्धति सादी है। इसकी वांछायें नम्र हैं। स्वतन्त्रता देकर स्वयं स्फुरित प्रवृत्ति करने दें। बालक में विश्वास रखें। उसे प्रेम से पालें-पोषें। यह समझ लें कि किसी अन्य को निर्मित करना ईश्वर के सिवा किसी अन्य के अधिकार में नहीं है। लेकिन इसमें मानवीय-उद्धार के सभी तत्वों का समावेश हो गया है। इन तत्वों की सिद्धि में भले ही युगों के युग व्यतीत हो जायें पर इनकी प्राप्ति हेतु चेष्टा करना ही कर्त्तव्य है। हमारा आज यह तत्व क्षीण-प्रवाह भागीरथी जैसा है, जो हिमालय से अभी निकली ही है। काल के प्रवाह के साथ-साथ यह स्रोत अधिकाधिक व्यापक, विस्तृत एवं मनुष्य-पावनकर्ता बनेगा। हम कम संख्या में हैं, हमारे प्रयत्न सीमित हैं, लेकिन हमारी आशाएं महान् हैं। हम मानव-उद्धार के यज्ञ की पहली आहुति डालकर अपना जीवन सार्थक बनायेंगे। जीवन उद्धार का काम करेंगे तो हमारे जावन का भी उद्धार होगा।'[1]

किसी ऋषि की आर्षवाणी तथा योद्धा का आह्वान-सा प्रतीत होता है यह कथन।

संघ का दूसरा अधिवेशन गुजरात की राजधानी अहमदाबाद में सम्पन्न हुआ। अध्यक्ष थे गिजुभाई। शारदा मन्दिर के प्रांगण में सभी बाल शिक्षाविद् एकत्र हुए। गिजुभाई ने हृदय खोलकर समस्त आगंतुक संभागियों से बातचीत की। उस बातचीत में बालकों की वकालत तथा बाल दुनिया की नयी उषा का दिग्दर्शन था। अन्त में उन्होंने सबों का आह्वान किया : 'बालक को उसका वांछित स्थान देने-दिलाने के लिए आइए हम तैयार हो जाएं। हजारों हाथ मिलकर संघर्ष करें। बालकों की राह में आने वाले तमाम अवरोधों को हटा दें। विकास-विरोधी वस्तुओं का समूल उन्मूलन करके जला डालें। जो बालक के लिए है, वह हमारे लिए है। आओ हम आज की दुनिया को आंदोलित कर डालें, खंड-खंड और अशांत कर डालें।'

'शिक्षकों तथा माता-पिता द्वारा किया गया, तथा बालकों के अधिकारों के लिए किया गया संघर्ष चाहे इतिहास में भले ही न हुआ हो, पर हम तो करें। इस संघर्ष में हम जाति बिरादरी को भुला दें, चमड़ी का फर्क भुला दें, सिर्फ

1. "बाल शिक्षण मने समझायुं तेम" : गिजुभाई।

बालक के लिए, समग्र मानव जीवन की आशा-आकांक्षा के लिए समग्र मानव जीवन की मानवता के लिए विजयी युद्ध करें। यह युद्ध हम अपनी संकीर्णता, मताग्रह, अज्ञान, गुलामी, भेदभाव तथा नास्तिकता के विरुद्ध लड़ेंगे।'

'आइए हम एक हो जायें और अपने कार्य की सफलता के लिए तेजोमय से तेज प्राप्ति की, चेतनामय से चेतनता की तथा अनंत विजय से विजय प्रदान करने की प्रार्थना करें।'

गुजरात के विचारशील लोगों को बाल शिक्षण की दिशा में मोड़ने के लिए इस सम्मेलन ने जबर्दस्त भूमिका अदा की। गांधीजी के पदार्पण के पश्चात् कांग्रेस के अधिवेशन जनजागृति के कितने सशक्त माध्यम बन गए थे। ठीक वैसे ही सभी विचारशील लोगों को बालकों की तरफ उन्मुख करने के लिए नूतन बालशिक्षण संघ के इन अधिवेशनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और उसका योगदान है।

बाल सम्मेलन

गिजुभाई ने अपने बालमन्दिर में एक नए प्रकार का सम्मेलन आयोजित करना शुरू किया। यह था बाल सम्मेलन। बालमन्दिर में पढ़े हुए बालक फिर से अपनी मातृसंस्था में आकर सबों से मिलते और गिजुभाई उन सबके मध्य नाचते-कूदते।

इन सम्मेलनों के मंत्री बालक ही होते। अध्यक्ष वही तय करते। कार्यक्रम भी वे ही अपनी रुचि के अनुरूप तैयार करते। भाषण का उसमें नाम-निशान नहीं होता। दीप दर्शन, प्रदर्शन, रंगोलियां, नाटक: समूह भोजन, डांडिया रास, बालकों के साथ गिजुभाई की बातचीत आदि उनमें मुख्य कार्यक्रम होते। बालकों के ऐसे सम्मेलनों का सफल सूत्रपात करके गिजुभाई ने कमाल का काम किया था। ऐसे सम्मेलनों में बालकों के साथ गिजुभाई की बातचीत का विवरण नानाभाई भट्ट के शब्दों में इस प्रकार है :

'बालकों के साथ उनकी बातचीत अद्भुत थी। जैसे कोई कुशल व्यक्ति कौवे को बुलाए और कौवे इकट्ठे हो जाएं, मोर की आवाज करे और मोर जवाब दे, तोते की बोली का अनुकरण करे और सारे तोते हाजिर हो जाएं वैसे ही गिजुभाई ने पोपटलाल की भाषा निर्मित की। 'हमारी बुढ़िया है···है न··· है न!' और हट्टाकट्टा पोपटलाल सीधा तन गया। भगवानलाल को बुलाया तो भगवानलाल हाजिर। ताराबेन के चित्रों को याद किया तो बारह वर्ष की तारा शर्माती-शर्माती खड़ी हुई। त्रिकमलाल के पराक्रम की बात सुनाई तो मोटे-ताजे त्रिकमलाल बड़ी कठिनाई से खड़े हुए और प्रणाम किया। रात्रि को···में गिजुभाई ने कहा :'तुम सब बड़े हो जाओगे तो बाद में यहां पर कौन आएगा? उंगली ऊपर!' सभी उंगलियां ऊपर। 'तुम्हारे घर में बच्चे पैदा होंगे

तो उनको लेकर कौन-कौन आएगा? उंगली ऊपर!' सभी उंगलियां ऊपर। तुम्हारे बेटों के बेटे पैदा होंगे और तुम बड़े सेठ बन जाओगे, तब कौन-कौन आएगा? उंगली ऊपर!' सभी उंगलियां ऊपर उठीं।

भावी नागरिकों के हृदय में उनकी शिक्षण संस्था—मातृभाषा के साथ आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने में ऐसे सम्मेलन कितना अमूल्य लाभ प्रदान करते हैं? ऐसा आत्मीय सम्बन्ध शैक्षिक-विकास में कितना सहयोग प्रदान करता है?

शिक्षा विस्तार प्रवृत्तियां

गिजुभाई ने शिक्षा विस्तार कार्यक्रमों की एक नई प्रवृत्ति भी शुरू की थी। ऐसी प्रवृत्तियों को हम एक्सटेंशन सर्विसेज के नाम से पहचानते हैं। आज से 30-40 वर्ष पहले की अवधि में ऐसी प्रवृत्तियों की कल्पना तथा सफलतापूर्वक उनका संचालन करना गिजुभाई के विचारों की मौलिकता एवं क्रान्तिकारी दृष्टि का परिणाम ही था। उनके इतने वर्षों पश्चात् हमारे यहाँ एक्सटेंशन सर्विसेज की प्रवृत्ति अमेरिकी अनुकरण पर शुरू हुई हैं—यह कैसी विसंगत बात है? क्या हम आज की इन प्रवृत्तियों द्वारा आत्म-संतोष का अनुभव करते हैं? लगता है जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शैक्षिक पहलू तो रह ही गए।

गिजुभाई ने नए-नए बालमन्दिर शुरू करने की दिशा में प्रयत्न किये थे। राजकोट, पोरबन्दर, जामनगर, सुरेन्द्र नगर, नडियाद, पाटण, दादर, अहमदाबाद, इन्दौर आदि अनेक स्थानों पर उन्हीं के प्रयासों से बालमन्दिर खुले थे। ये सभी बालमन्दिर अत्यन्त व्यवस्थित रीति से चलते रहें इसके लिए वर्ष में एकाध बार वे जाकर देख आते। बहुधा इन बालमन्दिरों के संचालकों के पत्रों द्वारा उनकी समस्याओं के समाधान अथवा छोटे बड़े प्रश्नों में मार्गदर्शक विचार लिख भेजते। उस अवधि में इन्दौर का बालमंदिर चलाने वाले श्री चन्दुभाई भट्ट ने घंटों पास बैठकर अत्यन्त भावुकता एवं आंतरिक उल्लास से अनेक संस्मरण सुनाये थे। पाठ्यक्रम निर्माण में तथा आवश्यकता होने पर कम से कम खर्च में मोंटेसरी पद्धति का प्राण सुरक्षित रखते हुए बालमंदिर कैसे चलाएँ—इन सब बातों में गिजुभाई मार्गदर्शन प्रदान करते। कोई-कोई निजी संस्था अपने विद्यालय में नयी पद्धति का शिक्षण संयोजित करने के लिए गिजुभाई को रूबरू बुलाती। वे वहाँ पर जाते तथा नई दृष्टि के अनुसार कार्य संचालन किस प्रकार से किया जाना चाहिए, इसकी रूपरेखा बनाते। लीमड़ी की कन्या शिक्षा तथा बढ़वाण की बाल-शिक्षा संस्थाओं को गिजुभाई तथा ताराबेन ने जो मार्ग-दर्शन प्रदान किये वे आज भी 'दक्षिणामूर्ति' की पुरानी फाइलों में उपलब्ध हैं।

'श्री मच्छु लोहाणा शिक्षा मंडल ने अपनी व्यासेक संस्थाओं के लिए गिजु-

भाई से मार्गदर्शन चाहा तो वे ठठ कच्छ जाकर उन सभी संस्थाओं का अवलोकन करके नये सिरे से सारा काम जमा आए। रातों-रात जागकर भाई प्रभुलाल धोलकिया के लिए उन्होंने पाठ्यक्रम तैयार कर दिया। अगले वर्ष इसी मंडल के शिक्षकों का एक अध्यापन-वर्ग भी चला। कच्छ की हजार मील की मुसाफरी करते हुए श्री सुरजीभाई ने लिखा है : 'रातों जागकर, ठंड या धूप, रहने की व्यवस्था या अव्यवस्था, किसी भी बात की परवाह किए बगैर उन्होंने यह मुसाफरी की थी। मोटर, रेल, तांगा, ऊंट तथा बैलगाड़ी—सभी वाहनों को उन्हें इस प्रवास में अनुभव मिला था। नदी-नालों अथवा ऐसे स्थलों पर जहां मोटर धंस जाती वहां मोटर को धक्के मारने, पहिए के नीचे घास काटकर डालने तथा ऐसे सभी कार्यों में वे दूसरे लोगों के साथ अपने पुत्र नरेन्द्रभाई को भी सबसे आगे रखते। वे घंटों तक अनथक भाव से काम करते रहते और शाम पड़े उनके चेहरे पर वैसी की वैसी निखालिस मुस्कान तैरती मिलती।' वसो गांव में एक माह का शिक्षण-शिविर श्री मोतीभाई अमीन के आमंत्रण पर चलाकर वे अपने गुरु ऋण से उऋण हुए। ऐसा ही एक वर्ग बाद में कच्छ के वांकु गांव में चलाया था।

पाटन तथा कराची के बाल मेले में अध्यक्ष के रूप में उन्होंने उत्तम मार्गदर्शन दिया था। कराची प्रवास में सिंध भी हो आए, जहां अनेक बाल शिक्षकों को नूतन बाल-शिक्षण का सन्देश सुनाया। गर्दभप्रिय गिजुभाई ने सिंध के प्रवास में गधे की सवारी का मजा लिया था। उनका वह फोटो आज भी आनन्द एवं भावोद्रेक से हमारे नयन-कोरों को भिगोने में सक्षम है।

भावनगर के समीपस्थ गांव की कुछ शालाओं को राज्य ने दक्षिणामूर्ति संस्था के सीधे मार्गदर्शन में सुपुर्द किया था। गिजुभाई नानाभाई तथा ताराबेन इन समस्त शालाओं को मार्गदर्शन प्रदान करते थे कि गांवों में इस नई शिक्षा पद्धति को एवं नए शैक्षिक विचारों को किस प्रकार से क्रियान्वित करना चाहिए। सुदूर पंजाब के मोगा की एक प्रगतिशील संस्था तथा कलकत्ते की भी एक ऐसी ही प्रसिद्ध संस्था को गिजुभाई तथा हरभाई मार्गदर्शन प्रदान करते थे।

गिजुभाई का व्यक्तित्व कितना अधिक व्यापक दिखाई देता है। प्रातःकाल नवल प्रकाश का दाता सूर्य उदित होता है तो चारों तरफ अपनी हजारों-हजारों किरणें प्रकाशित-प्रसारित करता है ना ! ईश्वर ने गिजुभाई को भी नए शैक्षिक प्रकाश-प्रवर्तन में निमित्त बनाया था।

मोंटेसरी पद्धति के उपकरणों का निर्माण

बाल शिक्षण की नूतन पद्धति के अनुसार ज्यों-ज्यों बालमन्दिरों की संख्या बढ़ती गई वैसे-वैसे कार्य संचालन के लिए मोंटेसरी पद्धति के उपकरणों की

जरूरत एक समस्या बनकर उभरती गई। विदेशों से उपकरण मंगाना व्यय साध्य था और फिर तत्काल मिल भी कहां जाते ! गिजुभाई को बाल शिक्षण संघ का पहला निर्देश स्मरण हो आया और उन्होंने श्री चमनभाई वैष्णव के साथ अपने यहां ही उपकरण तैयार करने की बात की। और अन्त में श्रीचमनभाई की देखरेख में वढ़वाण में इन उपकरणों के निर्माण की योजना तैयार हुई। 'उस जमाने में यह एक बड़ी उपलब्धि थी। बाल विकास को अवरुद्ध करने वाली तमाम शक्ति के विरुद्ध अनवरत युद्ध लड़ने वाले योद्धा वे थे !'[1]

आर्ष दृष्टि

गिजुभाई इतने विराट कार्य को तथा इतनी विविधतामयी विशाल प्रवृत्तियों को पार पाने में सक्षम थे। इसके पीछे थी उनकी आर्षदृष्टि ! यह दृष्टि भावों के गर्भ में बहुत दूर-दूर तक पहुंचने में समर्थ थी। इसके द्वारा उन्हें तत्काल निर्णय लेने में बड़ी मदद मिलती थी। आर्षदृष्टि तथा सूक्ष्म विवेक दोनों उनके अगुआ बल थे।

उस काल में (सन् 1920 से 1940) ब्रिटिश सरकार से हमारा संघर्ष जारी था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए हम आमरण-संग्राम लड़ रहे थे। ब्रितानी हुकूमत के विरुद्ध देश में एक प्रचंड बवण्डर उठ खड़ा हुआ था। उस समय में स्वदेशी तथा विदेशी की भावना भारतीय जनता के हृदय में बहुत नाजुक थी। और इसीलिए मोंटेसरी की नई दृष्टि की तरफ भी कितने ही लोग "यह तो विदेशी पद्धति है", "इसके उपकरण तो विदेशों से मंगाने पड़ते हैं" "यह तो पाश्चात्य संस्कृति की शिक्षा है", "यह भारतीय संस्कृति को रास नहीं आएगी" कह-कहकर विरोध करने लगे थे।

'उस समय गिजुभाई ने निर्भीकतापूर्वक अपने विरोधियों को कितनी ही बातें साफ-साफ सुना दी थीं, साथ ही साथ अपने देश के लिए अनुकूल मोंटेसरी पद्धति का चित्र खींच दिखाया।'[2]

'हमारी मोंटेसरी को हिन्दुस्तान में अपनाने के लिए इसे भारतीय प्राणों से अलंकृत करना होगा। इसके लिए मोंटेसरी शाला को प्रयोग की भावभूमि बने रहना होगा, तभी वह हिन्दुस्तान के छप्पर नीचे, हिन्दुस्तान की जमीन के ऊपर, हिन्दुस्तान के आसन पर बैठ पाएगी। हम मोंटेसरी के टेबिल-कुर्सी के स्थान पर बाजोट (लकड़ी की चौकी) पर ही बालकों को स्वयं-स्फुरित चित्रकला बनाने को बिठा देंगे। हिन्दुस्तान के मोंटेसरी बालक नाश्ता लेंगे अवश्य मगर टेबिल-कुर्सी और जूते पहने बगैर। मोंटेसरी गृह में बालकों को कला का वातावरण हम देंगे अवश्य पर हमारी पुष्पसज्जा मिट्टी की लुटिया, आँवळे-

1. व 2. बाल शिक्षण प्रणेता गिजुभाई : रा. ना. पाठक।

बबूल तथा नीम के पत्तों से ही हो सकेगा।'

भारतीय मोंटेसरी शाला के बालकों के हाथ में इकतारा तथा मंजीरे हों, प्लास्टीसिन के स्थान पर कुम्हार की सादी माटी से ही बालक अपने हाथों तरह-तरह के खिलौने बनाते हों, हमारी शाला के आंगन में बालक राई, मैथी, तुलसी, मरवा, कनेर, बारहमासी के बीच ही फिरते हों, यहाँ के बगीचे में आंवल भी हो, लेकिन इस "देसी" शाला में हाथ पोंछाने के लिए टुवाल अवश्य हो, पैर पोंछाने के लिए पायदान बिना नहीं चलेगा; हाथ धोकर ही खाने बैठेंगे, मलमूत्र त्यागने के लिए पक्के स्थान होने चाहिए।'

'हमें मोंटेसरी-प्रयोगशाला तैयार करनी होगी, और उसे हमारी अपनी आबोहवा में ही। अपने ही बालकों को हमें शास्त्रीय दृष्टि से अवलोकन करके उन आंकड़ों के ऊपर देश के बाल-मनोशास्त्र के अभ्यास को चलाना चाहिए। स्वतंत्रता तथा स्वयंस्फूर्ति का वातावरण (प्रयोग भूमि की स्वाभाविक आधार भूमि) हमारे यहाँ भी होना चाहिए। शास्त्रीय शोध के वास्ते सत्यनिष्ठा, तटस्थता, मताग्रह का अभाव, तथा समाज, रूढ़ि, धार्मिक कट्टरता से मुक्ति होनी चाहिए। साथ ही साथ बाल विकास का मापन करने वाले एवं विकास के साधन रूप ऐसे तमाम उपकरणों का अनिवार्य स्थल यह प्रयोगशाला चाहेगी ही।'

'यह प्रयोगशाला धर्म, जाति, अथवा देश के फर्क को स्वीकार नहीं करेगी। भारतीय बालक आज शरीर एवं मन से कहां हैं, अगला चरण कहां है, इसकी खोज यह प्रयोगशाला भारतीय दृष्टि से करेगी। स्पेन, स्विटजरलैंड तथा आयरलैंड आदि अपने वातावरण की दृष्टि से मोंटेसरी पद्धति का अर्थ ग्रहण करते हैं। वैसे ही हम करेंगे।'

'शिक्षा राष्ट्रीय होनी चाहिए अथवा शास्त्रीय 'इस मुद्दे पर उन दिनों बड़ी चर्चा थी। वातावरण भी खूब गरम था। दोनों पक्ष कभी-कभार विवेक तक खो बैठते। सबों को समझाते हुए गिजुभाई ने कहा कि 'अशास्त्रीय शिक्षण कभी राष्ट्रीय नहीं बन सकता और शास्त्रीयता के नाम पर यदि हम अपने देश व समाज की वर्तमान परिस्थिति को विस्मृत कर देते हैं, तो यह उचित नहीं।'

एक अन्य भ्रमोत्पादक चर्चा का विषय यह खड़ा हुआ कि 'मोंटेसरी पद्धति शहरों के सम्पन्न वर्ग के बालकों के वास्ते ही है। भारत के लाखों ग्रामीणों के लिए यह पद्धति निरर्थक है।' गिजुभाई ने बातों के माध्यम से इस समस्या का समाधान करने की अपेक्षा प्रत्यक्ष कार्य करके दिखलाया तथा समाधान को साकार किया। श्री दक्षिणामूर्ति बालमंदिर के सामने की बस्ती में कृषकों तथा मजदूरों के बालकों के लिए उन्होंने बाल-विद्यालय शुरू किया।

ऐसे ही हरिजन बस्ती में भी शुरू किया, जिसे श्रीमती ताराबेन मोडक संचालित करती थीं। इन्हीं दिनों में गिजुभाई ने रामभाई पाठक को जो, एक पत्र लिखा था, उससे कुछ जानकारी मिलती है: 'जानकर तुम्हें प्रसन्नता होगी कि अभी हाल ही में मोहल्ले के कृषक-मजदूरों के लिए छोटा-सा काम शुरू किया है, जिसे श्रीमती ताराबेन दिन-प्रतिदिन सुधार रही हैं। हमारे यहां तुम्हारे जैसे व्यक्ति की आवश्यकता है, तुम्हारे जैसों से गरीबों में मोंटेसरी पहुंचेगी। क्यों, कमर कसनी है ना?'

आज हमारे सामने प्रत्यक्ष है कि श्रीमती ताराबेन ने कोसबाड़ (जिला थाना) में, तथा श्री जुगतराम ने वेड़छी-मढी के आदिवासियों में अनेक प्रयोग करके ग्रामीण गरीब बालकों के लिए बालवाड़ियां स्थापित कीं।' गांधीजी ने भी इन प्रयोगों को समुचित प्रेरणा एवं मार्गदर्शन प्रदान किया था। इन बालवाड़ियों का साक्षात्कार अत्यन्त आनंददायी एवं प्रेरणास्पद है। इसका साक्षी मैं भी हूँ। आदिवासी क्षेत्रों में पिछड़े हुए बालकों के बीच चलने वाली इन नयी शिक्षा पद्धति की बालवाड़ियों को देखकर आत्मा प्रसन्न हो उठती है। गिजुभाई की आत्मा यह सब देखकर कितनी प्रसन्नता अनुभव कर रही होगी!

'लेकिन गिजुभाई! वर्धा योजना के बारे में आपके विचार जानने की इच्छा है हमारी।' एक व्यक्ति ने प्रश्न किया।

'लो, वर्धा योजना हिन्दुस्तान के लिए आशीर्वाद-स्वरूप है।' गिजुभाई ने उत्तर दिया। पर इतने से प्रश्नकर्त्ता को संतोष नहीं हुआ। उन्हें पता था कि शिक्षा के संबंध में गिजुभाई गांधीजी से भिन्न विचारों के थे। गांधीजी ने यरवदा जेल के प्रवास में बालकों के लिए एक पुस्तक लिखी थी, जिसे उन्होंने गिजुभाई को अवलोकनार्थ भेजी थी। गिजुभाई तथा जुगतराम दवे ने उसे "नापास" कर दिया था, एतदर्थ कदाचित् वर्धा योजना के बारे में भी वे कुछ ऐसी ही बात कहेंगे, ऐसी उनकी धारणा थी। संक्षिप्त उत्तर से उन्हें संतोष नहीं मिला, इसलिए खुलकर विचार व्यक्त करने का उन्होंने गिजुभाई से आग्रह किया। तब तो बातचीत शुरू हुई।

'अपने मंतव्य को विस्तारपूर्वक स्पष्ट करते हुए गिजुभाई ने कहा: 'भैया, गांधीजी तो जीवन दृष्टा हैं। अत्यन्त श्रद्धा के साथ देश के जीवन की परख रखते हैं तथा ऐसे-ऐसे अनिवार्य जीवन-निर्माण की दिशा में ले जाते हैं। उसी के परिणामस्वरूप यह वर्धा योजना उभरी है, ऐसी मेरी मान्यता है। बापू ने यह दृष्टि प्रदान करके देश पर बड़ा ही उपकार किया है। अब शिक्षकों और शिक्षाविदों का कर्त्तव्य है कि बापू की इस दृष्टि को आत्मसात् करके तदनुरूप प्रयुक्त करें।'

'....जल्दी गांव-गांव में ऐसी शालाएं स्थापित नहीं की जा सकतीं। वैसे,

हमारे बापू ने शिक्षा का जो दृष्टिकोण परिवर्तित किया है, उससे कालांतर में हिन्दुस्तान को नवजीवन प्राप्त होगा ।'

गिजुभाई इस चर्चा में इतने तल्लीन हो गए कि रात के तीन बज गए ।

हम जानते हैं कि लगभग पचास वर्ष पूर्व कहे गए गिजुभाई के ये शब्द कितने सही प्रमाणित हुए हैं । हमने शिक्षकों तथा शिक्षाविदों का उक्त कर्त्तव्य बापू के चले जाने के पश्चात् ताक पर रख दिया है । उनके द्वारा प्रदत्त नई शिक्षा पद्धति को आत्मसात् करके प्रयुक्त करने की बजाय हम उस पद्धति को भी सर्वथा भूल गए । भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन ने, जो बुनियादी तालीम के आद्य प्रणेताओं में से थे, आंतरिक छटपटाहट के साथ बहुत सही कहा था कि बुनियादी शिक्षा को ऐसी निकम्मी बना देने से तो बेहतर होगा यदि देश इसे प्रयुक्त ही न करे !

इस प्रकार गिजुभाई ने बाल शिक्षा की एक विशाल लहर खड़ी करने का अथक प्रयास किया । उनके प्रयासों में कितनी बहुविधता है ? सहकर्मियों, शिक्षकों, माता-पिता, बालकों, समाज सबों को जागृत करके सबों का ध्यान नूतन शिक्षण पद्धति तथा बालकों की ओर उन्मुख करना ।

श्री रामनारायण वि० पाठक ने लिखा है कि : 'बाल शिक्षा की दिशा में गिजुभाई ने जिन दिनों सोचना-विचारना एवं प्रयोग करना प्रारंभ किया था, उनसे पहले इन प्रश्नों पर गिने-चुने शिक्षाकारों के अतिरिक्त कोई और विचार नहीं करता था । कितने आश्चर्य की बात है कि उनके चिंतन की भावभूमि पर गुजरात का लगभग प्रत्येक विचारशील व्यक्ति चिंतन की स्थिति में हैं, इस सफलता के मूल में गिजुभाई का गहन एवं अनथक परिश्रम कारणस्वरूप विद्यमान था ।'

इसी वजह से काका कालेलकर ने उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए कहा था : 'इस युग में गिजुभाई तथा ताराबेन मोडक ने जो काम किये हैं उन पर कोई भी समाज गर्व का अनुभव कर सकता है । बालकों के उद्धारकर्त्ता गिजुभाई ने असंख्य माता-पिता को बालस्वातंत्र्य, बालभक्ति, तथा बालपूजा की दीक्षा प्रदान की थी । बाल-भक्ति का पागलपन लगा देने वाले इन दोनों मिशनरियों ने मध्यम वर्ग का तमाम स्वरूप ही बदल डाला, तथा गुजरात भर में असंख्य बालमंदिरों का बीजारोपण कर दिया है ।'

अधूरे सपने

गिजुभाई के दो अधूरे सपनों की बात करके इस प्रकरण को पूरा करेंगे ।

'शाम ढल गई थी । संध्या की लालिमा क्षितिज पर बिखरने लगी थी । बालमंदिर के बरामदे में गिजुभाई चक्कर लगा रहे थे । उनके सहकर्मी श्री शंकर भाई शाह अपना काम संपादित करके गिजुभाई के साथ घूम रहे थे ।'

'देखो शंकर भाई !' बालमंदिर की दाहिनी तरफ खाली जगह की ओर

अंगुली दिखाते हुए गिजुभाई ने कहा : 'हम इस स्थान पर बालकों का विद्यापीठ (चिल्ड्रंस युनिवर्सिटी) स्थापित करेंगे ।'

सुनकर, क्षणभर को शंकर भाई स्तंभित रह गए । बाल-विद्यापीठ ? गुजरात विद्यापीठ अथवा बम्बई विद्यापीठ आदि शब्द तो सुने थे—बड़ी उम्र के विद्यार्थियों उच्च शिक्षा के विद्यापीठ की बात तो सुनी थी, लेकिन बाल-विद्यापीठ की तो स्वप्न में कल्पना भी नहीं की थी । गिजुभाई ने आगे कहा : 'देखिए, यहां पर हम अलग-अलग जाति के बालकों की पढ़ाई की व्यवस्था रखेंगे । बाल-मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए जो अनेक प्रकार के प्रयोग किये जाते हैं वे सब हम इस विद्यापीठ के माध्यम से करेंगे । अंधे, लूले, अपंग बालकों को रखेंगे । उनके मन पर उनकी शरीरिक अक्षमता का क्या प्रभाव पड़ता है, यह पता लगायेंगे, ऐसी ही मानसिक—न्यूनताओं पर भी हम शोध-सर्वेक्षण करेंगे । अलग-अलग वर्गों से आने वाले बालकों की अलग-अलग विशेषताओं-आदतों का भी अध्ययन किया जा सकता है ।'

'लगभग आधे-पौन घंटे तक गिजुभाई ने अपनी सम्पूर्ण योजना शंकर भाई के समक्ष प्रस्तुत की । शंकर भाई तो हैरानी से हतप्रभ हुए सुनते ही रहे । सचमुच, विद्यापीठ की यह कल्पना अद्भुत थी ।'

'ऐसा ही गिजुभाई का दूसरा स्वप्न था बाल-ज्ञानकोष बनाने का (चिल्ड्रंस एनसाइक्लोपीडिया) । इस संबंध में तो उन्होंने कुछ पूर्व तैयारी भी कर रखी थी । उसका शुभारम्भ कर दिया था । एक छोटा-सा कार्यालय भी उन्होंने शुरू किया था । पर वह स्वप्न भी अधूरा रहा ।' मृत्यु ने उन्हें खींच लिया ।

क्या हम सब उनके ये स्वप्न साकार करने को कटिबद्ध होंगे ?

●

7

गिजुभाई का योगदान-4

साहित्य-सर्जक के रूप में

"गिजुभाई कहते : 'मुझ पर सरस्वती की कृपा है।' उनके साथ वर्षों के अनुभवों के आधार पर कह सकता हूं कि यह कथन बिल्कुल सही है। बालकों के लिए पढ़ने हेतु अथवा उनके शिक्षण की समस्याओं पर लिखने का प्रसंग हो—यह उनके लिए आह्लादक कार्य था। हाथ में कलम थामकर बैठते वक्त अथवा किसी को लिखाते वक्त कहते : 'लिखो' और तब अबाध विचारप्रवाह बहने लगता। भाषा में अथवा विचार में कहीं सुधारने अथवा सोचने के लिए उन्हें रुकना पड़ा हो, यह मुझे याद नहीं। थोड़े से वर्षों में अन्य अनेक व्यवसायों तथा दिन भर की सतत व्यस्तता के बावजूद जितना भी समय आपको मिलता उसी में उन्होंने ढेर सारा साहित्य सिरजा है।"

—श्री गोपालराव विध्वांस

"बालक तो ऐसी आत्माएं है जिनमें राष्ट्र की उज्ज्वलता एवं महत्ता निहित रहती है। बालकों के सार्वदेशिक विकास के लिए जितना भी हो, उतना ही कम है।

—श्री आसफ अली
(दिल्ली बाल सम्मेलन के अध्यक्ष
पद से—1937)

त्रिपथगा साहित्यधारा

पतित पावनी भागीरथी जब महार्णव से मिलने जाती है तो अनेकमुखी बन जाती है। शतशत धाराओं में वह जलधि की तरफ वेग से दौड़ती है।

गिजुभाई के जीवन में भी यही उपमा सार्थक होती प्रतीत होती है। बाल-कल्याण में सदा-सर्वदा निरत रहने वाला उनका व्यक्तित्व शतशत प्रयत्नों के

माध्यम से बाल-कल्याण की प्राप्ति हेतु संघर्षशील था।

वे आदर्श पिता बने तथा उत्तम शिक्षक बने। अपने सहकर्मियों को उन्होंने शिक्षित किया तथा शिक्षक-समुदाय को नई दृष्टि प्रदान करने हेतु कटिबद्ध बने। अनेक नए-नए बालमन्दिर स्थापित किए तथा अपने अविश्रांत मार्गदर्शन द्वारा उसे सफलतापूर्वक संचालित किया। अध्यापन मन्दिर चलाया तथा नई दृष्टि सम्पन्न शिक्षक-वर्ग तैयार किया। उनके लिए छोटे-बड़े शिक्षण शिविर चलाए। माता-पिता एवं समाज को जगाकर बालकों के प्रति उनके दृष्टिकोण को बदल डाला। अनेक बाल सम्मेलन तथा अनेक शैक्षिक प्रवास आयोजित किए। अनेक संस्थाओं का मार्गदर्शन किया तथा अनेक रजवाड़ों के शिक्षा विभागों को शिक्षण की यह नई दृष्टि अंगीकार करने की राह सुझाई। नूतन बाल-शिक्षण संघ स्थापित करके अखिल भारतीय स्तर पर काम शुरू किया। बाल-कल्याण निरत उनके व्यक्तित्व की ऐसी-ऐसी अनेक प्रयत्न-धाराएं थीं।

इन्हीं प्रयत्न-धाराओं में एक अत्यन्त तेजोमय प्रखर धारा भी थी। इस धारा के पवित्र सीकरों के संस्पर्श से अनेक विद्वानों की दृष्टि बदल गई थी। अनेक राष्ट्रीय नेताओं को नई दृष्टि प्राप्त हुई थी। अनेक अस्पष्ट दृष्टि वाले शैक्षिक कार्मिकों को स्पष्ट जीवन-दृष्टि उपलब्ध हुई थी। जिस धारा ने हजारों सागरपुत्रों का उद्धार किया था, वह थी गिजुभाई की साहित्य धारा।

जह्नुपुत्री जाह्नवी त्रिपथगा कही जाती है। गिजुभाई की यह साहित्यधारा भी त्रिपथगा कही जाती। बालकों के लिए निर्मित साहित्य; तथा माता-पिता एवं समाज को अपने मताग्रहों से मुक्त करके बाल-व्यक्तित्व की महत्ता दिलाने वाला साहित्य। इस प्रकरण में हम गिजुभाई की इसी त्रिविध साहित्य सम्पत्ति का अवलोकन करेंगे।

साहित्यकार के रूप में उनकी क्षमता के दर्शन वैसे छुटपन की रचनाओं से ही हो जाते हैं। अफ्रीका जाने से पहले वे "विनायक" उपनाम से कविताएँ लिखते तथा उन्हें मासिक पत्रों में प्रकाशित कराते थे। "सुन्दरी प्रबोध" तथा "गुजरात शाला पत्र" में महिलाओं के उद्धार विषयों पर लेख लिखकर वे भेजते थे।

पर बालप्रेम की कुदाल से जब गिजुभाई का अंतस्तल—आंतरहृद टूटा तो साहित्य गंगा का जो वेगवान प्रवाह प्रकट हुआ वह सचमुच अद्भुत था। 'गिजुभाई रात्रि-दिन की परवाह किए बगैर मूसलाधार लेखन प्रवाह बहाने लगे और गंगा के इस प्रवाह को छोटी-बड़ी पुस्तकों रूपी नहरों के माध्यम से श्री गोपालराव विध्वांस गाँव-गाँव तक पहुंचाने लगे।'[1]

1. बाल शिक्षण प्रणेता गिजुभाई : रा. ना. पाठक।

गिजुभाई का बाल साहित्य

इनके द्वारा प्रणीत सम्पूर्ण साहित्य में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है उनका बाल-साहित्य। इसके माध्यम से वे बालकों के बीच अत्यन्त लोकप्रिय बने तथा विद्वत्समाज में भी उन्हें सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ।

वह समय गौर करने का है। याने 1920-25 का काल। बालकों के लिए पठनीय अच्छी पुस्तक तक उपलब्ध नहीं थीं। बचकानी भाषा में लिखी पुस्तकों को बाल साहित्य में शामिल किया जाता था। कहानी के अतिरिक्त अन्य-अन्य विधाओं में भी बाल-साहित्य रचा जा सकता है, यह बात उनके लिए अभी रहस्य के आवरण में थी। लिखने वालों में भी बाल-मनोविज्ञान को पहचान कर तथा बाल दुनिया को समझने वाले थे भी कौन? एक भी नहीं। गुजराती भाषा की बात छोड़ भी दें अन्य भारतीय भाषाओं में यही स्थिति थी।

इस परिस्थिति में गिजुभाई का बाल-साहित्य प्रकट हुआ। इसी वजह से काका कालेलकर ने इन्हें 'बाल साहित्य का ब्रह्मा' का विरूप प्रदान किया था। किसी ने इन्हें 'बाल साहित्य का पिता' कहा। लेकिन गुजरात ने उनके इस कार्य का सम्मान उन्हें "बाल सम्राट" के रूप में रणजितराम स्वर्णपदक प्रदान करके किया।

सर्वप्रथम सन् 1920-21 में गिजुभाई ने "चालणगाड़ी" तैयार की। सहलेखक थे श्री जुगतरामभाई। गिजुभाई से मिलने श्री जुगतराम आते थे–उन दिनों इस पुस्तक का सृजन हुआ। नवजीवन प्रेस में उसकी प्रथम आवृत्ति प्रकाशित होकर सामने आई। एक-एक पाठ के एक-एक शब्द को उन्होंने बाल मन के तराजू पर तोला था। बाद में गुजरात के समर्थ चित्रकार श्री रविशंकर रावल ने उसे अपनी कला द्वारा सज्जित किया। और यह गाड़ी घर-घर दौड़ने लगी। बालक उत्साह-उमंगपूर्वक इस "चालणगाड़ी" से चलने लगे, तभी उक्त दोनों लेखकों ने मिलकर "मोटीबेन" तैयार की। बड़ी बहन की अंगुली थाम कर बालक दौड़ने लगे। तभी सामने आये "सुन्दर पाठ"। इसके पश्चात् "भेरू" बालक भी इस नवीन साहित्य को पढ़कर खुश हुए। इसी बीच तैयार हुआ "आंबावाडियुं"। गुजरात के बालकों के ये दो सखा फिर तो रंग में आ गए। फल, फूल, पशु, पक्षी, नदी, पर्वत—बस सभी कुछ इसमें देख लो।

इस प्रकार से बाल-साहित्य का सृजन होने लगा।

बालमन्दिर की किस परिस्थिति के वशीभूत विवश होकर वे साहित्य-लेखन की तरफ धकेले गए थे, इस सम्बन्ध में गिजुभाई की एक टिप्पणी पठनीय है: 'बालकों को वाचन का अभ्यास कराने की शुरूआत की थी, मात्र शुरूआत। परन्तु प्रकाशित पुस्तकों के अक्षर बारीक थे। उन्हें वे पुस्तकें रुचि नहीं। पढ़ने की इच्छा थी पर आंखों को पसन्द नहीं आए। वस्तु पक्ष भी नहीं रुचा। पाठों की बातों का अनुभव उन्हें था नहीं। वे सभी बालकों को दृष्टि में रखकर लिखी गई थीं, इसलिए जीवन्त कम थी। आलेखन तथा शैली भी आनन्ददायी नहीं लगी। संक्षेप में, अक्षर, वस्तु तथा शैली तीनों चीजें बालकों के वाचन में अवरोधकारी बन गए।'

'मुझे हस्तलिखित पाठ लिखकर देने की बात सूझी। मैंने आसपास के वातावरण से वस्तु ली। बालकों की क्षमता को ध्यान में रखते हुए पाठ तैयार किया। पाठों को कहानी का रूप प्रदान किया और उन्हें "नानी-नानी वार्ताओं" जैसा नाम दिया। काम आगे बढ़ाया।'[1]

इसी छोटे से निर्झर ने आगे चलकर बाल-साहिए की विशाल गंगा का स्वरूप धारण किया।

फिर तो प्रकट हुए "बाल साहित्य माला", "बाल साहित्य गुच्छ", "बाल साहित्य वाटिका", "बाल वार्ताओ", "किशोर कथाओं", "ईसपनां पात्रो", "गिजुभाई ना पाठो", "हजीय मने सांभरे छे" आदि-आदि। इस प्रकार थोक बन्द साहित्य सामने आने लगा।

भाषा के तो गिजुभाई सम्राट् थे। हम बड़ी उम्र के लोग भी इन पुस्तकों को देखने लगे तो एक दो पंक्तियां पढते-पढ़ते ही उनमें इस कदर फिसल पड़े कि पुस्तक पूरी पढ़ चुकने पर ही उसके पंजों से छूटना हो।

एक-दो नमूने देखें।

हिमालय नाम का पर्वत है। ऊंचे-ऊंचे शिखर, नीची-नीची घाटियां। माथे पर विशाल नदियां हैं। पैरों में विशाल वन है। देवता का यह धाम है। गिरिवर इसका नाम है। धरती का यह पति है। पर्वतों में यह मणि है। पर्वतों का यह 'पर्वतराज' है। भारत का यह ताज है। कैलाश इसका शिखर है। कैलाश शिखर पर शिवजी रहते हैं। पार्वती जी उनके साथ रहती हैं। एक देव और एक देवी।

'लड़का नहीं, बच्चा नहीं, अड़ौसी नहीं, पड़ौसी नहीं, आना नहीं, जाना नहीं, एक उमा और दूसरे शिवजी। दो आदमियों की जोड़ी। खेलें-कूदें, खायें-पीयें और मजे करें।

'ऐसे करते-करते दिन बीते, महीने बीते, युग बीते।'

'शिवजी बैठे विचार करने लगे : चलकर अब तपस्या करूं। वन में जाकर ध्यान जमाऊं! और काया का कल्याण करूं!'

'शिवजी का क्या? उठे और लंगोटी ली? न डिगें, न उलझें। घर-द्वार क्या और वन-बीहड़ क्या? महल में है तो क्या और मसान में रहे तो क्या?

1. दक्षिणा मूर्ति ऊँ मासिक—1926।

गौरी के पास रहे तो क्या और गुफा में रहे तो क्या ?'

'भूत-प्रेत ? तो कहने लगे घर के हैं । सांप-सांपिन ? तो बोले गले लिपटा लिये । शिवजी को किसका भय ?'

'ठंड पड़े तब भी ठीक, और धूप पड़े जब भी ठीक ! वर्षा बरसे तो बोले भले ही बरसे ना ! वे ध्यान जमाकर बैठे !'

'शिवजी बोले—पार्वतीजी, पार्वतीजी ! मैं तो चला वन में । मालिक का ध्यान करने, तथा काया का कल्याण करने ।'

'प्रत्युत्तर में पार्वतीजी बोलीं—'वे कौन से मालिक हैं ? मालिक के भी मालिक ? शिवजी को भला ध्यान कैसा ? ध्यानी को भी ध्यान ? तपस्वी को भी तप ?'

इसी पुस्तक से एक और उदाहरण देखिए—

'कितने ही वर्ष बीत गए ।'

'नारदजी स्वर्ग में रहते । एक हाथ में तम्बूरा और दूसरे में करताल । नारायण का नाम लें और पूरी दुनिया में चक्कर लगायें ।'

'घूमते-घूमते शिवजी के पास आये ।'

'नारदजी ने पूजन किया, अर्चन किया, नमन किया । नमस्कार को स्वीकार करके शंकर भगवान बोले—पधारिये देव ! आप किधर से पधारे ?

'नारद ने उत्तर दिया—मैं तो समाचार देने आया हूं । पार्वतीजी तथा बाल-गोपाल मजे में हैं । कैलाश से आया हूं ।'

'महादेवजी तो आगे की बात भूल गए । अचरज से बोल उठे—घर भूल गए दिखते हैं ! यह मैं शिवजी हूं ! मेरे वहां बालगोपाल कैसे ! या तो आपने कोई दूसरी पार्वती देखी है, या फिर किसी और के बच्चे देखे हैं ! वापिस जाइए और पता लगाकर आइए ।'

'नारद बोले—नहीं भोलेनाथ ! भूला तो बिल्कुल नहीं । सच मानना हो तो मानें, नहीं तो मैं अपने घर चला ।'

'नारद तो चले गए ।'

'महादेव ने सोचा—'हमारे घर में बच्चे किसके होंगे ? चलो देख आएं ।'

'महादेवजी गए कैलाश की ओर !'

एक और उदाहरण "कबाट" पुस्तक से देखिए । जंगल के वृक्ष अपनी बात कहते हैं :

'फिर तो गरमी आती और लू चलती । धूप पड़ती और हम कुम्हलाते, पर गरमी पतझड़ नहीं है, कुछ रोज तपाती है लेकिन रात में फिर से, मधुर हवा । मां की तरह हमारे तपे हुए डाल-पात पर हाथ फेरे । रात भर ठंडी हवा लेकर

सुबह तपने को फिर से तैयार हो जाते हैं ।'

'इस तरह करते-करते गरमी बीत जाती है और वर्षाकाल आता है । घटाटोप बादल और पूरे वन में दिन-दहाड़े घोर अंधकार ! एकाएक ऊमस होने लगती है और कुछ देर में वर्षा टूट पड़ती है । हम तो नहाने और पानी पीने लग जाते हैं । तने से लेकर ठेठ ऊपर के पत्तों तलक भीग जाते हैं । धूप की गर्मी कहीं चली जाती है ।'

'इस प्रकार की कितनी ही ऋतुएं हमारे ऊपर से गुजर गईं । हर ऋतु के नये अनुभव थे और हर एक अनुभव आखिरकार तो एक मजे की चीज ही है ।'

'इस तरह हम रहते थे । बाल-बच्चों को साथ रखकर खड़े थे । एक विशाल कुटुम्ब बनकर बैठे थे । लड़ते नहीं थे । क्लेश नहीं था । एकता थी । चैन था, सुख और शान्ति थी ।'

'लेकिन फिर भैया ! क्या हुआ, यह कहने की बात नहीं ।'

गिजुभाई के साहित्य में उनकी भाषा सचमुच अद्भुत चीज है । छोटे-छोटे वाक्य । शब्दों के मांडनों में रंग भरता जाता है तथा अर्थ की आकृति उभरती जाती है । जैसे एक शान्त, निर्मल, निर्झर, कलकल निनाद करता बहता जाता है । फूल जैसी कोमल तथा हल्की शैली बालकों के हृदय के इस पार से उस पार तक स्वतन्त्रता से निकल जाती है । बुद्धि को खिलाती है, भावनाएं विकसाती है तथा दृष्टि को व्यापक बनाती है ।

गिजुभाई के इस बाल-साहित्य के पीछे एक बाल-शिक्षक की सतर्क वैज्ञानिक दृष्टि विद्यमान थी । प्रत्येक पुस्तक, उसका प्रत्येक पाठ, प्रत्येक वाक्य तथा प्रत्येक शब्द इसी दृष्टि से छानबीन करने के बाद पुस्तक रूप में प्रकाशित होते । अत्यन्त विवेक के साथ बालक के मन की भूमि को ध्यान में रखकर ये पुस्तकें लिखी जातीं । "संपादकोनु कथन" पुस्तक में गिजुभाई की यह दृष्टि ब्योरेवार आलेखित है । एकाध उदाहरण देखें :

'स्वदेश प्रेमियों को कदाचित् इस पुस्तक में कहीं कोई राष्ट्रीयता न मिले । लेकिन राष्ट्रीयता की हमारी कल्पना भिन्न है । 'मेरा देश' 'मेरा देश' करते रहने से सच्चा देश प्रेम नहीं सधता । कारण, 'देश' मात्र एब्स्ट्रेक्ट वस्तु बन जाता है । इसके विपरीत 'देश' याने क्या ? वही कह दें तो उसके परिचय के साथ-साथ प्रेम सधता है ।'

'मेरा देश' याने मेरे देश के खेत, मेरे देश की गायें, भैंसें, मेरे देश के कृषक, मेरे देश के कुम्हार-लुहार, मेरे देश के नदी-पहाड़, मेरे देश के पशु-पक्षी —यह भावना जागृत होनी चाहिए । मुझे किस पर प्रेम व्यक्त करना है उसका अता-पता न हो, मेरा देश याने क्या ? यह कल्पना न हो, वहां देश के प्रति प्रेम-भाव गहन तथा हृदय से उपजा हुआ नहीं होता । इन पुस्तकों के पीछे यही दृष्टि विद्यमान है । बेशक तात्कालिक महत्त्व के अथवा आज के चालू प्रश्न

को स्थान नहीं, और बालकों की दुनिया में उसकी आवश्यकता भी नहीं। राष्ट्रीय भावों के शाश्वत तथा बाल-मनोविज्ञान पर गहन प्रभाव अंकित करने वाले तत्व इन पुस्तकों में अवश्य हैं।'[1]

कैसा आत्मविश्वास तथा बालमन को समझाने वाली कैसी एक समग्र दृष्टि है यह!

बाल-साहित्य की पुस्तकों में विषयगत विविधता भी पर्याप्त है। पौराणिक कहानियाँ—'गणपति बापा', 'हरिश्चन्द्र', 'चेलैयो', 'गोपीचन्द' आदि : विज्ञान तथा प्रकृति परिचय, मानव जीवन परिचय, भाषा शिक्षण, कहानियां तथा सादे पाठ, भूगोल, विनोद-चातुर्य, बालप्रवास, ऐतिहासिक कहानियां, नाटक, पत्र साहित्य, लोक-कहानियां, संक्षिप्त साहित्य, अनुवाद, तुकबंदियां, खेल-तुकबन्दी, कहावतों तथा कहावतों के मूल, कविता तथा दोहे-सोरठे—ये अनेक प्रकार की विविधताएं गिजुभाई के बाल-साहित्य में देखने को मिलती हैं। गिजुभाई बालकों के सर्वतोमुखी विकास में इन तमाम चीजों को बहुत जरूरी समझते थे।

बाल-साहित्य के सम्बन्ध में गिजुभाई आगे लिखते हैं : 'बालकों के वाचन में बड़ों के साहित्य की तमाम विशेषताएं हो सकती हैं, और होनी भी चाहिए। सिर्फ स्तर परिवर्तन होना चाहिए, वस्तु की भिन्नता हो, भाषा की भिन्नता भी हो—लेकिन वह साहित्य तो हो ही। उसमें शैलीगत रमणीयता हो, भाषा की छटा हो, समृद्धि हो, कला-विधान हो। बाल-साहित्य में भाषा की कोमलता हो, गौरव हो; भाषा का रुमझुम करता संगीत हो, तथा विचारों की सूक्ष्मता हो। हृदय को आंदोलित करने जैसा दोलन हो तथा साथ ही सुन्दर सन्तुलन हो।' गिजुभाई ने मात्र सैद्धांतिक चर्चा ही नहीं की है, अपितु कथन के अनुरूप साहित्य का सृजन कर दिखाया है।

रस वैविध्य की दृष्टि से ये पुस्तकें कैसी हैं?

'जरा हँसो', तथा 'विनोद टूचका' में हास्य है, तो 'मंगेशनो पोपट, करुण-रस जगाता है। 'मकनो राक्षस' में अद्भुत रस है तो 'गणपति बापा' में धीर गम्भीर शान्त रस। कहीं-कहीं कल्पना की उड़ान है तो 'छेल्लो पाठ' देश-प्रेम का पाठ पढ़ाता है। 'मामानी जाळ्य' अंधविश्वास को मिटाकर वैज्ञानिकता का पाठ पढ़ाता है तो 'छेटां रेजो मां बाप' सामाजिक कुरीतियों की ओर अंगुलि—निर्देश करता है।

गिजुभाई के बाल-साहित्य में इन्हीं गुणों के कारण दीवान बहादुर कृष्ण-लाल मोहनलाल झवेरी ने कहा था : 'गिजुभाई द्वारा प्रणीत बाल-साहित्य की पुस्तकें बेजोड़ हैं। बाल-समुदाय इन्हें पढ़ते थकते नहीं। पढ़ते हैं और उपदेश ग्रहण करते हैं, हँसते हैं, मनोविनोद करते हैं।'

1. संपादकोनुं कथन : गिजुभाई तथा ताराबेन मोडक।

'ऐसे दूसरे गिजुभाई गुजरात तथा काठियावाड़ को दशकों के दशक गुजरने पर मिलें तो मिलें।'

साहित्य की विशेषता

गिजुभाई की एक खास विशेषता तो हमें स्वीकारनी ही पड़ेगी। स्वयं उन्होंने तो बाल-साहित्य का सृजन किया ही, पर अपने साथ के समकालीनों को भी इस दिशा में प्रेरित किया। ताराबेन, मोंघी बेन, कमला बेन, शंकर भाई, हेमुभाई, विष्णुभाई; गिरीशभाई ने कहानियाँ लिखीं तो बचुभाई ने 'उदयपुर-मेवाड़' की हँसती-खेलती प्रवास-कथा सिरजी। सोमाभाई ने बाल-काव्य लिखा तो नरेन्द्रभाई लाये पक्षियों का सुन्दर वृत्तान्त। और तो और, बाल-मन्दिर के छोटे-छोटे विद्यार्थी भी अपने लेख ले आये। गिजुभाई के स्वभाव का वर्णन करते तारा बेन लिखती हैं कि 'गिजुभाई तो साक्षात् प्रदीप्त अग्नि-पिंड थे। जो भी कोई उनके पास आता उसी को वे सुलगा देते थे।' जोत से जोत जलती आई है!

उनके बाल-साहित्य की सर्वोत्कृष्ट विधा बाल-कहानियां हैं। उन्होंने तथा उनके सहकर्मियों ने ये कहानियां लोक जीवन से बटोरी थीं, और तब क्रमबद्ध करकेउन्हें अलग-अलग भागों में प्रकाशित किया था। इन कहानियों में से कोई (कूकड़ी पड़ी रंग मां) पंजाब से आई थी तो कोई महाराष्ट्र से(नको, नको राजा) कोई बंगाल से, तो कोई (गोळकेरी भींतरड़ी) कर्णाटक से आई थी। गिजुभाई का महत्वपूर्ण योगदान था इन्हें गुजराती वातावरण प्रदान करना।

वर्षों से ये कहानियां समाज के जुदा-जुदा भागों में बालकों के वाचन एवं ज्ञानार्जन हेतु प्रचलित थी। गिजुभाई ने इन कहानियों की शक्ति को पहचाना और तभी बालकों के समक्ष उन्हें प्रस्तुत किया। पुस्तकों की प्रस्तावना में उन्होंने शिक्षक समुदाय को ताकीद के साथ निर्देशित कर दिया कि "बड़े पंडित बनकर कहानी न कहें। ज्ञान बघारने न बैठ जाएँ। तटस्थ रहकर कहानी न कहें। कहानी में स्वयं भी नहायें और बालकों को भी नहलायें।

'बालक उत्साह-उमंग के साथ बार-बार ये कहानियां सुनेंगे। लेकिन उन्हें याद न कराना, उनसे न बुलवायें। परीक्षा के लिए तो हरगिज न पढ़ायें।'[1]

किशोर साहित्य

समय के साथ-साथ बच्चे किशोरावस्था में पहुंचे तो गिजुभाई ने उनकी क्षमता एवं रुचि के अनुरूप साहित्य तैयार किया। बाल-साहित्य गुच्छा बाल-साहित्य वाटिका, किशोर कथाएँ, रखडु टोली आदि-आदि उनकी किशोर साहित्य

1. बालवातांओ, भाग—1 : गिजुभाई।

की पुस्तकें हैं। किशोर साहित्य के सृजन में नानाभाई भट्ट, माधवजीभाई, मूलशंकर मो भट्ट आदि का भी सहयोग रहा। प्रख्यात ब्रिटिश शिक्षाविद् ए० एस० नील की मनोवैज्ञानिक शैली में कहानी कहने की रीति से गिजुभाई अत्यन्त प्रभावित थे। इसी प्रभाववश बालकों के लिए रखडु टोली तैयार की गई। इन कहानियों का उन्होंने अपने बाल मन्दिर में उपयोग किया था। इस सम्बन्ध में उन्होंने "झालतां चालतां" पुस्तक में पर्याप्त बातें लिखीं हैं। 'गधे के पराक्रम' मूल रूसी पुस्तक है, जिसे अंग्रेजी से पढ़कर गिजुभाई ने गुजराती में ढाला। ईसप की कथाओं को भी भाषांतरित किया। नानाभाई ने "रामायण तथा महाभारत के पात्र" तथा "हिन्दूधर्म की आख्यायिकाएँ" नामक पुस्तकें लिखीं। माधवभाई लाये भीम-घटोत्कच की दिलचस्प कथाएँ तथा शेरलॉक होम्स की डिटेक्टिव कहानियां। मूलशंकर मो भट्ट ने जुले वर्न आदि यूरोपीय कहानीकारों की पुस्तकों के अनुवाद किये। हमें यह बात ईमानदारी से स्वीकार करनी चाहिए कि इतने वर्षों की अवधि व्यतीत हो जाने के बावजूद उक्त किशोर साहित्य का आकर्षण जरा भी कम नहीं हुआ है। बल्कि आज भी यह किशोर साहित्य अपने उच्चतर सोपान पर अवस्थित है।

शैक्षणिक साहित्य

यह कितनी उच्च कोटि की मेधा है कि बाल-साहित्य के सृजन के समानांतर गिजुभाई शिक्षकों के निमित्त भी साहित्य-सृजन में तल्लीन रहते थे।

अपनी पुस्तक की एक प्रस्तावना में उन्होंने लिखा है, 'जब हम चतुर्दिक नजर डालते हैं तो पता चलता है कि नयी शिक्षा पद्धति के पदचिन्ह अंकित हैं। पुरानी शिक्षा के साढ़े ग्यारह बज चुके हैं, धीरे-धीरे बारह ही बजेंगे। शिक्षा के भवन को नींव से शुरू करके निर्मित करने की आवश्यकता है। इस भवन की चिनाई में कतिपय नई दिशा दृष्टि वाली पुस्तकों की आवश्यकता पड़ेगी।

वर्तमान परिस्थिति तथा भावी चिन्हों का कैसा स्पष्ट दर्शन हुआ था उन्हें! इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए नयी दिशा-दृष्टिपरक शैक्षिक पुस्तकें लिखने हेतु वे स्वयं तैयार हुए थे।

इस भगीरथ कार्य में उन्होंने समस्त शिक्षक भाई बहनों से नम्रतापूर्वक सहयोग मांगा था। 'मेरा कथन ही अन्तिम कथन हैं' ऐसा जड़तापूर्ण आग्रह उन्होंने कभी पाला नहीं। 'शिक्षक इन्हें स्वागत-सम्मान देंगे ऐसी मैं आशा करता हूँ। वे इन विचारों को अपने निजी अनुभव में ढालें और अगर आश्वस्त हो जायें कि ये उपयोगी होंगे तो इनका प्रसार करें।'

'सुधार-संशोधन की बहुत गुंजाइश रहती है। पाठकों तथा प्रयोगकर्ताओं के अनुभवों को समादरपूर्वक स्वीकार करके ही मैं अपने कार्य में आगे बढ़ने की आशा रखता हूं।'

'अपने इस काम में प्राथमिक शाला के सभी शिक्षक भाई बहनों की सहायता चाहता हूं।'

"मोंटेसरी पद्धति" शिक्षण-शास्त्र का ग्रन्थ है। मेडम मोंटेसरी की शिक्षण पद्धति को गुजराती में रूपांतरित करने का काम कठिन था। मेडम के विचारों को गिजुभाई ने अत्यन्त ईमानदारीपूर्वक अत्यन्त कष्ट सहकर भी पूरा किया। इस महान् कार्य द्वारा गुजरात को गिजुभाई की वैज्ञानिक एवं तलस्पर्शी बेधक दृष्टि का परिचय मिला।

उन्हीं के मार्गदर्शन से ताराबेन ने 'मोंटेसरीज ओवन हेंडबुक' पुस्तक का 'मोंटेसरी प्रवेशिका' नाम से अनुवाद किया। अंग्रेजी न जानने वाले तथा मोंटेसरी पद्धति को हृदयंगम करने के इच्छुक गुजराती-शिक्षकों के लिए ये दोनों पुस्तकें अत्यधिक उपादेय सिद्ध हुई।

"बाल-शिक्षण मने समझायुं तेम" नामक गिजुभाई की दूसरी शैक्षिक पुस्तक हर पाठक को बाल-शिक्षण की दिशा में उन्मुख बनाने की क्षमता से युक्त है। मोंटेसरी पद्धति का अध्ययन-अध्यापन करते-करते उन्होंने मोंटेसरी-पद्धति का जो तात्विक दर्शन किया था उसे इस पुस्तक में शब्द-बद्ध किया है। पूरी पुस्तक में स्थान-स्थान पर गिजुभाई की काव्यमय भाषा के दर्शन होते हैं।

"वार्तानुं शास्त्र" भाग 1–2 तथा "कला-करीगरीनुं शिक्षण" भाग 1–2 गिजुभाई के शोध ग्रंथ हैं। ये शिक्षा क्षेत्र में नई दृष्टि को प्रकाशित करने वाले है। "वार्तानुंशास्त्र" के प्रकाशन के समय "साहित्य" के मन्त्री श्री मटुभाई ने कहा था कि 'दस पन्द्रह वर्षों पश्चात् कहीं मुश्किल से अध्ययन-चिन्तन तथा शास्त्रीयता को प्रस्तुत करने वाला ग्रंथ देखने में आया है। इस ग्रंथ में प्रस्तुत विचार आज भी नवीनता लिए हुए तथा उपादेय हैं। सन् 1963-64 में यूरोप के शिक्षाविदों का दिल्ली में सेमिनार हुआ था। उसके व्याख्यानों में कहानी कहने पर विचार केन्द्रित किया गया था, लेकिन आश्चर्य कि उक्त पुस्तक में अभिव्यक्त किये गए विचारों से वहाँ एक भी बात नयी नहीं थी। बल्कि उन लोगों का कहना था कि 'आप लोग इस क्षेत्र के पुरोधा हैं, हमारे पास सिखाने करने को कुछ भी तो नहीं।'

इस पुस्तक की दूसरी विशेषता यह है कि मात्र सैद्धांतिक चर्चा के स्थान पर गिजुभाई ने इसमें प्रचुर मात्रा में दृष्टांत दिये हैं। कहानी कहने की विधि वो नहीं, यह है! ऐसा लिखने वाला व्यक्ति उदाहरण अवश्य देगा ही। छोटे बालकों को रामायण की कहानी सुनानी हो तो विधि यह है, और उसका उदाहरण तत्काल प्रस्तुत कर देते हैं। अनुभव, अध्ययन एवं मौलिक चिंतन की दृष्टि से यह ग्रंथ वस्तुतः गुजराती साहित्य में अमूल्य चीज है। इसीलिए काका साहब कालेलकर ने इसकी प्रस्तावना में कहा है: मैं निःसंकोच भाव से कह सकता हूं कि "वार्तानुं शास्त्र" की रचना में गिजुभाई सफल हुए हैं। शिक्षण-

शास्त्र के क्षेत्र में यह एक बेशकीमती योगदान है। व्यक्ति जब शिक्षक बन जाता है तो किन-किन दृष्टिकोणों से उसे विचार करना चाहिए, ये तमाम तथ्य इस ग्रंथ के माध्यम से अध्यापकों को उपलब्ध कराये गये हैं। क्या हम काका साहब के इस कथन से आश्वास्त हो जायेंगे, अथवा किसी विदेशी शिक्षाविद् की टिप्पणी की प्रतीक्षा करेंगे ?

"कला-कारीगरीनुं शिक्षण" पुस्तक में चित्र, संगीत, सीना-बुनना-कढ़ाई, मिट्टी का काम, कागज का काम, कैंची का काम, रंगोली तथा प्रदर्शनी, संग्रहालय, शाला की सज्जा, शांति का खेल आदि-आदि विषयों से संबंधित प्राथमिक विद्यालयों में इनका शिक्षण कैसा होना चाहिए, इन बातों की चर्चा की गई है। दक्षिणामूर्ति बालमन्दिर में गिजुभाई ने जो प्रयोग किये थे उनके अनुभव तथा अनुभवों के निष्कर्ष इस पुस्तक में व्यक्त किये गए हैं। इसके आधार पर उन्होंने इंगित किया है कि अमुक-अमुक विषयों का शिक्षण इन-इन रीतियों से वांछनीय है।

प्राथमिक शाला में भाषा शिक्षण "प्राथमिक शाला में शिक्षण पद्धति" तथा 'चिट्ठी वाचन' ये गिजुभाई के अनुभवों को व्यक्त करने वाले व्यावहारिक ग्रंथ हैं। शिक्षक के दैनंदिन शिक्षण कार्य में ये ग्रंथ मार्गदर्शक है। नयी दृष्टि से शिक्षण-कार्य कैसे किया जाता है, इन बातों का पूर्ण ब्यौरा इनमें विद्यमान है।

"प्राथमिक शाला में शिक्षक" पुस्तक में गिजुभाई ने हमारे प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की स्थिति का यथातथ्य वर्णन किया है। अन्त में वे लिखते हैं 'मैं तुम्हारे में से ही एक हूं। अपने व्यवसाय के लिए, अपने चारित्र्य एवं उन्नति के लिए भिन्न-भिन्न अवसरों पर मैंने जो विचार किये हैं उन्हें मैं आप लोगों की सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूं।"

'हम लोग आज के दलितों में से एक हैं। दलितों के उदय की उषा उग चुकी है। जितने जोश से दुनिया के दलित कूच कर रहे हैं उतने ही जोश से हम भी उठेंगे।'

'स्वयं में विश्वास तथा ईश्वर में आस्था रखकर यदि हम अगला कदम उठाते हैं तो हम भी उठेंगे।'

"शिक्षक हो तो" एक और अद्भुत ग्रंथ है। इस ग्रंथ में भी गिजुभाई के शिक्षण-काल के अनुभव हैं, साथ ही बालकों सम्बन्धी निष्कर्ष भी हैं। सरल एवं सहज भाषा में लिखी यह पुस्तक चटपटी शैली में प्रणीत है। शिक्षकों को जितनी रोचक लगेगी उतनी ही उपयोगी भी।

"स्वतंत्र बाल-शिक्षण" "बाल वार्ताओनो विनोद" "शहरमां मोंटेसरी पद्धति" आदि पुस्तकें भी शिक्षक-समुदाय के हितार्थ लिखी गई हैं।

और 'दिवास्वप्न ?' जीवंत अनुभवों की भूमिका पर गिजुभाई ने कैसा भव्य

स्वप्न प्रस्तुत किया है ? 'इस स्वप्न के रंग में कितने ही बाल-शिक्षक रंग चुके हैं और अब भी यह पुस्तक अपना रंग दिखा रही है।' अहमदाबाद की एक कालेज के प्रिंसिपल कहते थे : 'गिजुभाई ने कुछ और न किया होता, मात्र यह "दिवास्वप्न" पुस्तक ही लिखी होती तब भी वे अमर हो जाते।'[1] यंत्रवत स्तब्ध बने फटी आँखों से इस "दिवास्वप्न" पुस्तक को आज भी सुनते मैंने कितने ही शिक्षकों को देखा है।

श्री हरिभाई त्रिवेदी ने इस पुस्तक के सम्बन्ध में लिखा है : 'पूरी पुस्तक बिगत कल की प्राथमिक शिक्षा की लघु समालोचना है तथा आने वाले कल की नवीन प्राथमिक शाला का मनोहर एवं स्पष्ट दर्शन है। कहानी की शैली में लिखी गई है, यह इसकी विशेषता है। गिजुभाई मेरे परम मित्र हैं। उनकी रचनाओं पर मैं हमेशा बाज जैसी दृष्टि साधे बैठा रहता हूं। उनकी किसी रचना से शत-प्रतिशत आह्लादित होऊं, ऐसा कभी-कभी ही होता है। इस पुस्तक ने तो सचमुच मुझे विमोहित कर दिया।' ["दिवास्वप्न" की प्रस्तावना से]

गिजुभाई का शिक्षा सम्बन्धी साहित्य विपुल मात्रा में है तथा अनेक मौलिक विचारों से भरपूर है। इसमें गिजुभाई की आर्ष दृष्टि के दर्शन मिलते हैं। व्यवहारपरक शास्त्रीयता इसमें समाहित है, भाषा की मधुरता तथा मंजुलता इसमें है 'साथ ही आत्मा का प्रखर बल भी विद्यमान है।'

इस सम्पूर्ण शैक्षिक साहित्य को गुजरात के शिक्षक समुदाय ने आंतरिक उल्लास से ग्रहण किया था, साथ ही अत्यन्त सम्मानपूर्वक अपने जीवन में इसका उपयोग भी किया था। गुजरात के कई जिलों के सुदूरवर्ती गांवों की प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों ने ये पुस्तकें मंगाकर पढ़ीं। शिक्षण कार्य में उन्हें नयी दृष्टि प्राप्त हुई तथा शिक्षण हेतु नया अनुराग जागा यह बात मैं एक शिक्षक के पुत्र होने के नाते प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा साक्षीस्वरूप कह रहा हूं। मैंने बहुत दूर-दूर के—ठेठ जबलपुर एवं गोंदिया की शाला के अध्यापकों के हाथों में गिजुभाई की लिखी यह पुस्तक देखी है। आज भी युवा शिक्षक इस पुस्तक को रुचिपूर्वक पढ़ते हैं।

माता-पिता का साहित्य

गिजुभाई ने शिक्षकों के अलावा माता-पिताओं तथा समाज के लिए भी साहित्य रचा था। उनकी मान्यता थी कि नूतन शिक्षा की सफलता तभी संभव है जबकि बालकों के प्रति माता-पिता का नजरिया बदले और हमारे कार्य में उनका योगदान प्राप्त हो। उनकी कई पुस्तकें मात्र इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए रची गयी हैं। "मां-बाप थवुं आकरूं छे", "आ ते शी माथाफोड़ी", "मां

1. गुजरात विद्यापीठ शिक्षण महाविद्यालय के प्रिंसिपल श्री पुरुषोत्तमभाई पटेल से वार्तालाप के आधार पर।

बापो ने" "हालतां-चालतां" आदि ऐसी पुस्तकें ही हैं।

"मां-बाप थवुं ग्राकरूं छे" तथा "आ ते शी माथाफोड़ी" दोनों पुस्तकें माता-पिताओं का बालकों के प्रति अपना दायित्व जताने वाली तथा स्पष्ट मार्गदर्शन प्रदान करने वाली हैं। सरल एवं सहज भाषा, छोट-छोटे प्रसंग तथा बात करने की गिजुभाई की निराली शैली, अभिभावक इन्हें उत्साह-उमंग के साथ पढ़ते तथा गिजुभाई की बात उनके हृदय के ग्रारपार निकल जाती। 'मारी साथे केम नहिं' "बापानी साथे क्यारे मळवुं ?" 'शामजी भाई ने घरें', 'बचुने त्यां' आदि प्रसंग तो सचमुच अद्‌भुत हैं। आज भी इन पुस्तकों की प्रासंगिकता कम नहीं हुई। बालकों के पालन-पोषण में प्रेमयुक्त पारिवारिक जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है, यह बात इस पुस्तक में रोचक तरीके से निरूपित है।

'उम्मीद है कि गुजरात के सभी जाति के वाचकों के लिए ये पुस्तकें उपयोगी रहेंगी।'

सच पूछो तो चिंतनशील प्रकृति के सभी पाठकों को, सभी अभिभावकों एवं माता-पिताओं को चाहे वे गुजरात में रहते हों या देश के अन्य भागों में गिजुभाई की उक्त पुस्तकें उपयोगी लगेंगी।

सहायता प्रदान करने वाली पुस्तकें मुख्यतया ये हैं—'मां-बापो ने', 'मां बापो ना प्रश्नो,' 'वार्ता कहेनार' ने 'घरमां बाळके शुं करवुं ?'

गिजुभाई द्वारा संपादित पत्रिकाएँ

'शिक्षण पत्रिका' तथा 'दक्षिणामूर्ति' दोनों पत्रिकाओं को भी हमें गिजुभाई के शिक्षण साहित्य में समाहित करना चाहिए।

नूतन बाल-शिक्षण संघ का मासिक मुखपत्र था 'शिक्षण-पत्रिका'। इसमें बाल-शिक्षण विषयक विविध प्रश्नों का विवेचन होता था। गिजुभाई तथा तारा बहन अपने प्रयोगों की बातों पर अत्यन्त सहजता से, साथ ही शास्त्रीय रीति से चर्चा करते थे। गुजरात के सैंकड़ों विद्यालयों, पुस्तकालयों तथा माता-पिता तक यह पत्रिका पहुंची थी। इस पत्रिका का योगदान इस रूप में भी स्पष्ट है कि माता-पिताओं का बालकों के प्रति दृष्टिकोण बदलने में, इसने जबर्दस्त भूमिका अदा की थी।

इस पत्रिका को देशव्यापी बनाने की दिशा में गिजुभाई ने सघन प्रयास किये थे। दादर (बम्बई) से मराठी 'शिक्षण पत्रिका' शुरू की थी तथा इंदौर से हिन्दी "शिक्षण पत्रिका"। इसी प्रकार राजस्थान, मध्यप्रदेश, तथा महाराष्ट्र की जनता को गिजुभाई अपने नये विचारों के रंग से रंगने लगे थे, लेकिन अन्य-अन्य भाषाओं द्वारा इस कार्य को प्रसारित करें इससे पहले ही ईश्वर ने उन्हें हमारे बीच से उठा लिया।

'वसन्त बाल शिक्षण प्रचार माला' तथा 'मोंटेसरी शिक्षण प्रचार माला' के माध्यम से गिजुभाई तथा ताराबेन ने बालकों की तथा नूतन शिक्षण की बातें समझाने वाली छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ लिखी थीं। 'बाल चारित्र्य', 'मोंटेसरी शिक्षणदृष्टि, 'बाल जीवन मां डोकियुं', 'बाल मन्दिर मां', 'बालकोनो पहरेवेश' आदि पुस्तकें अत्यन्त रोचक हैं। ये पुस्तकें घरों में जा जाकर माता-पिताओं एवं शिक्षकों के सामने स्वत: बालकों की वकालत करने लगी थी।

'हालतां चालतां' एक भिन्न दृष्टि से लिखी हुई पुस्तक है। महादेव भाई देसाई के इस मित्र की पुस्तक को पढ़ते-पढ़ते हमें महादेव भाई की डायरी का स्मरण हो आता है। यह पुस्तक भी गुजराती साहित्य में एक विशिष्ट विधा की परिचायक है। इसका बहुत ऊंचा स्थान है।

इसकी प्रस्तावना में गिजुभाई लिखते हैं: 'सुबह से शाम तक मेरे चारों ओर कितनी ही घटनाएं घटती हैं। प्रत्येक घटना एक-न एक विचार को जाग्रत करती है। विचार-जागृति के अलग-अलग समय की बातें ही 'हालतां-चालतां' में समाहित हैं।'

'हालतां-चालतां की घटनाएं सच्ची हैं। अध्ययन तथा अनुभव के साथ निकाले गए निष्कर्ष मेरे हैं।'

'शिक्षा की दुनिया में मैं मात्र अमुक एक व्यक्तित्व अथवा सिद्धांत का उपासक नहीं हूं। परन्तु प्रमुख व्यक्ति तथा सिद्धांत की उपासना के साथ सत्य के चेहरे का दर्शन करने हेतु स्वानुभव से पुरुषार्थ कर रहा हूं।'

'इसलिए 'हालतां-चालतां' किसी मत अथवा पंथ को नहीं अपितु मात्र मेरी निजी विचार दृष्टि को प्रस्तुत करती है।'

'दक्षिणामूर्ति' त्रैमासिक दक्षिणामूर्ति संस्था के मुखपत्र के रूप में प्रकाशित होता था। नानाभाई, हरभाई, गिजुभाई, ताराबेन समस्त कार्यकर्ता इसमें लिखा करते थे। लेकिन गिजुभाई का योगदान इन अंकों में भी अपेक्षया अधिक रहता था। आज से 60 वर्ष पूर्व प्रकाशित होने वाला यह त्रैमासिक आज के किसी भी शैक्षिक पात्र को टक्कर मारने जैसा है। विषयगत विविधता, अपार विचार समृद्धि, विश्वव्यापी दृष्टि तथा चिंतन मनन की उत्कृष्ट भूमिका की वजह से यह त्रैमासिक आज भी हमें स्तंभित कर देता है। इसमें प्रकाशित अनेक लेख तथा लेखमालाएं काल के गर्त में नष्ट हों इससे पहले ही वे ग्रंथाकार प्रकाशित हो सकें तो श्रेष्ठ रहें। आगे भी हमें वह उत्कृष्ट शैक्षिक सामग्री उपलब्ध रहेगी।

गिजुभाई का चिंतनात्मक साहित्य

'शांत पलों में' तथा 'प्रासंगिक मनन' ये दोनों गिजुभाई के गहन चिंतनपरक ग्रंथ हैं। आप इन्हें भावगीत कहें, भाव अथवा बोध कथा कहें, अथवा रम्य-रचना कहें। बाहर से प्रवृत्ति प्रधान व्यक्तित्व के धनी प्रतीत होने वाले गिजुभाई आभ्यंतरिक रूप से कितने गहन चिंतक एवं शांतिप्रिय महर्षि जैसे थे, इसका पता हमें उक्त दोनों पुस्तकों से चलता है। उनकी चित्तवृत्ति का झुकाव रहस्यवाद

की ओर था। हालांकि उनकी धार्मिकता जड़ अथवा अंधश्रद्धा की ओर उन्मुख नहीं थी, फिर भी उनके मित्रों ने उन्हें वर्षों तक माला फेरते देखा था। उनके इस अध्यात्मनिष्ठ हृदय से निर्झर की तरह यह चिंतन सृष्टि प्रवहमान हुई है।

श्री नानाभाई ने कहा था : 'जीवन के कटु-तिक्त प्रसंगों से थक कर जब व्यक्ति अपने ही अंतर की ओर लौटता है तो ऐसे 'शांत पल' ही उसकी थकान हर सकते हैं। संक्षिप्त-सी जिंदगानी में कतिपय ऐसे पल व्यतीत करना जीवन का आनन्दमय लाभ है।'

इस प्रकरण की समाप्ति से पूर्व गिजुभाई के एक-दो चिंतन-कणों का, आइये, आस्वादन करें :

'अपने शिक्षक भाई-बहनों से अभी तो मैं इतना ही कहूंगा कि दुनिया के उत्थान एवं पतन का आधार इसके प्रारम्भ से लेकर अब तक मात्र शिक्षकों पर ही निर्भर रहा है। जब-जब शिक्षक अपने पवित्र कार्य के प्रति वफादार रहे हैं तब-तब दुनिया आगे बढ़ी है। और जब-जब वे बेवफा बने है तब-तब दुनिया पीछे हटी है। शिक्षक जब सत्ता तथा सम्पत्ति के तले दब कर अपना व्यक्तित्व कमजोर बनाते हैं तो प्रगति के पैर पीछे हटते हैं और जब वे इन दो शक्तियों के सामने खड़े रहकर इन्हें ठोकरें मारते हैं तो प्रगति का पैगाम आगे बढ़ता है।'

"जब निस्सीम आकाश में एक भी तारे का हल्का-सा प्रकाश नहीं रहता,
जब दूर या पास के किनारे पर एक भी आकाशदीप का प्रकाश नहीं दिखता,
जब सागर की लहरें भी काल रात्रि में काली डम्बर सी बनती जा रही हैं,
और ऐसी बेला में, जबकि मेरा दिग्भ्रमित पोत सागर तरंगों पर इधर-उधर आंदोलित हो रहा है—

तब, ओ मेरे प्रभु ! यह एक नन्हा-सा दीपक मेरे बिकट मार्ग को प्रकाशित कर रहा है और इसकी रोशनी में मैं अपना पोत निश्चिन्त होकर बहाये ले जा रहा हूं।

यह मेरा नन्हा दीपक, भगवन ! तुम्हारे प्रति मेरी अखंड तथा निस्सीम श्रद्धा है।"

लगती है न किसी गुजराती रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि !

गिजुभाई की कृतियों की हजारों-लाखों प्रतियां गुजरात में बिकी हैं। उनके साहित्य की लोकप्रियता का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता है। गुजरात के बालकों, शिक्षकों, अभिभावकों—सबों ने उनके साहित्य को रुचि एवं प्रेमपूर्वक पढ़ा है तथा अपने हृदय के किसी एकांत कोने में गिजुभाई को एक आसन प्रदान किया है—अमर बनाया है।

8

गिजुभाई का योगदान—5
राष्ट्रीय शिक्षक के रूप में

कई लोगों की मान्यता है कि आज कृष्ण-सुदामा जैसे विद्यार्थी कहां हैं ? गुरु के वास्ते लकड़ियाँ बीनने जाने की उमंग आज कहां ?

पर आज अब सुदामा तथा कृष्ण के आदर्शों की आशा रखना अच्छा नहीं। आज तो लेनिन की तरह विद्यार्थियों के साथ ज्वार की रोटियां खाकर गुरुजन घूमेंगे और बालकों को शिक्षा प्रदान करेंगे तभी वे दुनिया में टिक सकेंगे, अन्यथा उनका जल्दी ही नाश हो जायेगा।

—गिजुभाई

स्वतन्त्रता संग्राम का काल

सन् 1920 का काल। भारत का जनजीवन अत्यन्त अशान्त था। खलबली मची थी चारों ओर। एकाएक राजनीति के मंच पर बापू अवतीर्ण हुए। पूरे देश पर उनके पदार्पण का एक जादुई प्रभाव व्याप्त हो गया। पंजाब के जलियांवाला कांड की दुर्घटना तथा बिहार के 'नीलवरों'[1] के प्रश्न पर गांधीजी को नये तरीके से काम करते देखकर लोगों में कोई आश्चर्यजनक चेतना का प्रसार होने लगा था। सम्पूर्ण देश जैसे आलस त्यागकर उठ बैठा हो। मातृभूमि के मुक्तियज्ञ में अपना कुछ न कुछ योग देने के लिए देश के स्त्री-पुरुष प्रयत्नशील हो उठे थे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सुलगती हुई आग के साथ लोक जागृति की

1. नीलवर याने बिहार में नील (एक वनस्पति) की खेती करने वाले अंग्रेज जमींदार। ज्यादा मुनाफा हड़पने के लिए वे गरीब किसानों पर जुल्म ढाते थे। दक्षिण अफ्रीका से स्वदेश लौटने पर गांधी जी ने यह प्रश्न अपने हाथ में लिया। लोगों को उन्होंने इतना जागरूक तथा संगठित किया कि अंत में अंग्रेज जमींदारों (नीलवरों) को अन्य व्यवसायों की ओर मुड़ना पड़ा और किसानों को उनके त्रास से मुक्ति मिली।—लेखक

चेतना धीरे-धीरे शहर-शहर, गांव-गांव, तथा घर-घर फैलने लगी थी। एक के बाद एक बीतते गए और भारतीय लोक-प्राण अज्ञान एवं जड़ता को झटक कर स्वयं में ज्ञान एवं शक्ति का संचय करके कटिबद्ध होता गया।

इस प्रकार करते-करते सन 1930 का वर्ष आया और स्वातंत्र्य-संग्राम की रणभेरी बज उठी। बापू ने दांडीकूच शुरू किया तथा इसे उन्होंने अंतिम संघर्ष[1] कहा—'कौवों और कुत्तों की तरह भले ही निस्सहाय मरूं, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्त किए बगैर वापिस साबरमती में नहीं लौटूंगा।' इस सिरे से उस सिरे तक पूरा देश सुलग उठा था। आबाल-वृद्ध सभी संग्राम में जाने को उद्यत थे। विद्यार्थी और अध्यापक, व्यापारी और कर्मचारी, किसान और कारीगर सभी के सभी युद्ध मैदान में जा पहुंचे।

गिजुभाई की निजी विचार-पद्धति

टेकरी वाले बालमन्दिर में बैठे-बैठे गिजुभाई सोचने लगे कि यह सत्य तथा न्याय का अन्तिम संग्राम है। हमारे बापू कहते हैं कि 'इस अहिंसक संग्राम में स्त्री-पुरुष, युवा, वृद्ध, और तो और नन्हें बालक भी भाग ले सकते हैं।' मैं एक शिक्षक हूँ। बाल-शिक्षक हूँ। अपने देश के मुक्ति यज्ञ में किस प्रकार से अपना योग प्रदान करूँ!

ऐसे अवसरों पर गिजुभाई हमेशा अपनी मौलिक रीति से ही विचार करते थे। उनकी राष्ट्रीय आत्मा के मौलिक विचार-मंथन से हमारे सामने कतिपय अभिनव योजनाएँ प्रकट हुई। वे थी—'अक्षर ज्ञान योजना', 'बाल क्रीडांगण योजना', 'वानर सेना ना कामो', 'बालवाड़ी—आँगणवाड़ीनी प्रवृत्तियों'। इस अध्याय में गिजुभाई को राष्ट्रीय आत्मा के रूप में योगदान देखना है हमें।

अक्षर ज्ञान योजना

1930 के स्वतन्त्रता संग्राम की शुरूआत हुई, और शिक्षक गिजुभाई की राष्ट्रीय आत्मा सोचने लगी—'स्वतन्त्रता के यज्ञ में मेरी आहुति क्या हो? मैं शिक्षक हूँ। चलो, लोगों को अक्षर-ज्ञान सिखाकर लोक-शिक्षण का काम करें। स्वतन्त्रता की सच्ची तथा गहरी भावना जागृत करने की दृष्टि से तथा लोगों को स्वतंत्रता के लिए कटिबद्ध करने की दृष्टि से यह बात कम महत्त्व की थोड़े ही है।'

इस प्रकार अक्षर ज्ञान योजना का शुभारम्भ हुआ।

योजनाएँ बनानी अत्यन्त सहज हैं, ठोस प्रयासों द्वारा उन्हें क्रियान्वित एवं परिपूर्ण करना अत्यन्त कठिन है।

1. यह प्रतिज्ञा करके गांधी जी दांडी कूच के लिए चल दिये थे। और इसीलिए दांडी कूच के पश्चात् वे वर्धा के पास सेवाग्राम में रहने गए, अहमदाबाद आश्रम में नहीं आये।
—लेखक

बिजली के पंखे के नीचे आरामकुर्सी में पड़े-पड़े गिजुभाई ने यह योजना नहीं सोची थी। यह कर्मयोगी गिजुभाई की योजना थी। तय की हुई बात को सांगोपांग रीति से पूरा न करे तो गिजुभाई कैसे।

लपेट में आया बालमन्दिर का चौकीदार बीजल। बीजल को पास बिठाकर स्लेट-पेंसिल दी और एक महीने के अन्दर-अन्दर पढ़ने योग्य बना दिया। पठन-क्षमता के प्रयोग से गिजुभाई ने 'वालो वांचिये' नामक पुस्तक तैयार की।

पुस्तिका तैयार होने पर गिजुभाई ने गुजरात के युवजनों का आह्वान किया: 'यह अक्षर ज्ञान योजना' प्रत्येक भारतीय जन के लिए है, इसके माध्यम से प्रत्येक अनपढ़ गुजराती को साक्षर बनाना है।

'इस योजना को शुरू करने का दायित्व हम समस्त साक्षरों एवं शिक्षितों का है। युवक तथा युवा छात्र रात्रि पाठशालाएं संचालित करें, गांव-गांव में अक्षर ज्ञान शालाएं चलायें, गलियों और मोहल्लों में भी चलाएं। रात में अथवा दिन में सुविधानुसार बहनों तथा भाइयों के लिए अक्षर-ज्ञान योजना चलाई जाए। चीन के युवकों ने एक ही वर्ष में अपने देश के निरक्षरों को साक्षर बना दिया। युवक समुदाय निश्चय कर ले तो गुजरात में निरक्षरता कितने दिन टिक पाये।

'हम सब युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष जो शिक्षित हैं तथा पढ़ाना जानते हैं, मैदान में कूद पड़ें तथा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष तरीके से वर्षों से हमें पीड़ित करने वाले अज्ञान को मिटाने के लिए जूझ पड़ें।'

'ईश्वर हमारे प्रयत्न पूरे करेगा।'[1]

योजना शुरू हुई और गाँव-गाँव में अक्षर ज्ञान योजना चल पड़ी। भावनगर राज्य ने पूरी तरह से वांछित सहयोग दिया तथा गिजुभाई व ताराबेन अपने सभी साथियों समेत तलाजा तथा महुआ तक घूमने लगे।

अध्यापक गिजुभाई ने अपनी योजना के प्रत्येक बारीक से बारीक पक्ष पर भली प्रकार से चिंतन किया तथा शिक्षा देने वाले सभी भाई-बहनों को मार्गदर्शन देते रहे। पाठ्यपुस्तक कैसे पढ़ायें तथा प्रौढ़ों से कैसे व्यवहार करें। किस तरह से पढ़ाने वालों की रुचि स्थिर रहती है और वे ऊबते नहीं—इस सम्बन्ध में तमाम सूक्ष्म बातों को लिखकर उन्होंने शिक्षा देने वालों के लिए पुस्तिका तैयार की—'कसे सिखायें'। मानवशास्त्री तथा मानवप्रेमी गिजुभाई इस पुस्तक में साकार विद्यमान हैं।

'रोजाना पढ़ाने से पूर्व (1) उपस्थिति पत्र में उपस्थिति लगायें (2) शिक्षा-

1. "केम शीखववुं": गिजुभाई [अक्षरज्ञान योजना की संक्षिप्त रूपरेखा]

थियों के समाचार जानें-पूछें (3) उन्हें या तो एकाध छोटी कहानी सुनाएँ, कविता सुनाएं या कोई उत्तम अंश पढ़कर सुनाएं। गायन-वाचन के अंश अपने श्रोतावर्ग को ध्यान में रखकर चुनें।

'पढ़ाने के बाद अपने सामने उसे व्यवहृत करें, सवाल या समस्यायें सामने रखें। कविता, गीत या तुकबन्दियों की अन्त्याक्षरी करें और अन्त में कीर्तन कराकर छोड़ें।'

'पढ़ाते समय मन में खूब शान्ति रखें। अगर किसी को न आए तो अकुलाना नहीं चाहिए। यह सोचें कि उसे क्यों नहीं आया। न आए तो उलाहना न दें, उसका मजाक न उड़ाएं। कोई दूसरा व्यक्ति अगर उन पर हँसता हो तो अपनी अरुचि व्यक्त करें। समझ में न आने वाले को उत्साहित करें। थोड़ा-थोड़ा-सा आने लगे तो प्रेमपूर्वक उसको प्रोत्साहित करें।। वाह, ठीक है, बढ़िया— इन उत्साहपरक शब्दों का बार-बार प्रयोग करें। मूर्ख, उज्जड़ बे-अक्ल, अब आया है—आदि शब्दों को मजाक के बतौर में प्रयुक्त न करें।'

'पुस्तक में जो क्रम रखा है, यथासम्भव उसी के अनुसार पढ़ायें।'

'जल्दबाजी न करें। दृढ़ता से चलें। बात अच्छी तरह समझ में आई या नहीं, इसकी पूछताछ करने के बाद ही आगे बढ़ें। पिछले काम का पुनरावर्तन करने के बाद ही आगे बढ़ें। सिखाने के उत्साह में पुनरावर्तन को न भूल जायें।'

'गम्भीर मुख मुद्रा बनाकर ही न पढ़ायें, बीच-बीच में मनोविनोद भी करते रहें। पढ़ने वालों को आनन्दपूर्वक आराम देते हुए सिखाना चाहिए।'

'कईयों को मात्र आंखों से देखकर पढ़ना माफिक नहीं आएगा। उन्हें पट्टी अथवा श्यामपट्ट को देखकर रेत में वैसा का वैसा बनाने को कहें। अथवा श्यामपट्ट या बोर्ड पर थोड़ी देर अंगुली दूर रखकर अक्षर पर चॉक या बरता फिराने को कहें। पर यह विधि तो उन लोगों के लिए ही है जिन्हें दृष्टि से देखने के साथ ही आकृति समझ में न आए तब व्यवहार में लाने की है।'[1]

'जो लोग पढ़ने में थोड़े पिछड़ जाएं उन्हें कक्षा छोड़ने के बाद कुछ देर रोककर अधिक परिश्रमपूर्वक पढ़ाना चाहिए। सबों को साथ-साथ रखना कठिन है, फिर भी सबों के साथ-साथ चलना चाहिए, तभी पढ़ाना बेहतर रहता है।'

'अक्षरों की बनावट सुंदर हो। शुरू-शुरू में एक सरीखे बनायें ताकि आंखों को भ्रम न हो। प्रत्येक पाठ एक-एक दिन में पूरा होगा ही, ऐसा नहीं समझना

1. बालक या प्रौढ़ सामान्यतया जब पढ़ना सीखते हैं तो अक्षरों को आंखों से देखते जाते हैं और पढ़ते जाते हैं, लेकिन जिन्हें आँखों से पूरा नहीं दिख पाता उन्हें सिखाने के लिए स्पर्शेन्द्रिय की मदद लेनी पड़ती है। पहले वह अक्षरों को देखते है फिर धूल में अंगुली से उसका आकार बनाते हैं और तभी याद रख पाते हैं याने मात्र दृश्येन्द्रिय ही नहीं स्पर्शेन्द्रियसे भी पढ़ना सीखते हैं। इस प्रकार सभी इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त शिक्षण अधिक सक्षम बनाता है।-लेखक

चाहिए। सीखने वाले की क्षमता के मुताबिक चलना चाहिए। अगर कोई एकाधिक पाठ सीख लेता है तो उसे आगे चलने दें।'

कैसी सूक्ष्म जानकारियाँ हैं? ससुराल जाने वाली पुत्री को माता-पिता इतनी स्पष्टता तथा ब्यौरेवार मार्गदर्शन प्रदान करते हैं क्या कभी?

पाठ्यपुस्तक तैयार करने में भी गिजुभाई की दृष्टि कितनी विवेक सम्मत तथा स्पष्ट है?

'अनपढ़ लोग गांवों में बहुत संख्या में है। इसलिए अपेक्षया कृषि जीवन के पाठ ज्यादा मिलेंगे। फिर भी ये पाठ ऐसे हैं कि दूसरे प्रौढ़ भी रुचिपूर्वक समझ सकते हैं। अर्थात् कृषकों के सर्वसाधारण जीवन के पाठ हैं।'

'इस पुस्तक में घरेलू जिंदगी के शब्द तथा सम्बन्धवाची शब्द अधिक लिए गए हैं, क्योंकि नजदीक के शब्द होने से पढ़ने में रुचि बनी रहती है और तत्काल याद हो जाते हैं।'

'सारे वर्ण तथा वर्णमाला सीखें तब तक उन्हें पढ़ने देने से वंचित रखने की बजाय पहले ही पाठ से "आज कुछ सीखा" "हमने कुछ पढ़ा" ऐसा आनन्द तथा विश्वास लेकर घर जाएँ, ऐसी रचना की है।'

'पुस्तक को पढ़ना रोचक लगे तथा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रीति से उपादेय रहे, यह मैंने ध्यान में रखा है। लेकिन उपदेशात्मक वस्तु ज्यादा देने का मैंने आग्रह नहीं रखा है। लोकगीत तथा कविताएं वाचनकर्त्ता को वाचन में सहयोग देंगी।'

प्रयोगकर्त्ता गिजुभाई भी हमारी दृष्टि के समक्ष उपस्थित होते हैं:

'पढ़ाते समय जो कठिनाइयाँ दरपेश आती हैं पढ़ने वालों को हवाला देकर बतायें, लिखकर बतायें—विशेषतया 1. शिक्षार्थी की ग्राह्य शक्ति की कठिनाई 2. उच्चारण कौशल की कठिनाई, 3. पुस्तक के क्रम सम्बन्ध की कठिनाई, 4. पुस्तक की रचना सम्बन्धी कठिनाई, 5. पुस्तक के वस्तु पक्ष की कठिनाई।'[1]

'पुस्तक रोजाना पढ़ने पर कितने दिनों में पूरी होगी, इसके बारे में जानना महत्त्वपूर्ण है। एक व्यक्ति को सिखाने में तथा समूह को सिखाने में कितना-कितना समय जाया होता है, यह ध्यान रखना है।'

'उपस्थित पत्रक में उपस्थिति अवश्य अंकित करें। इससे कितनी ही बातों का अध्ययन हो सकेगा। जैसे, किस वर्ग के, किस जाति के, किस उम्र के तथा किस स्थिति के लोगों ने पढ़ने में भाग लिया। ऐसे ही किस वर्ग के लोगों ने इस काम में, पढ़ाकर अपना सहयोग दिया, आदि बातें इस उपस्थिति पत्रक से जानने को मिलेंगी।'

शिक्षाशास्त्री—गिजुभाई को भी देखें।

1. "कैम शीखवर्दु": गिजुभाई।

'इस पुस्तक के शिक्षण में शिक्षण की किस पद्धति को स्वीकार किया गया है, यह भी जानना चाहिए ।'

'अक्षर सिखाने के लिए इसमें Sight and Sound याने 'इंगित एवं उच्चारण' पद्धति प्रयुक्त की गई है। पहले दो अक्षर (जोड़ा) दिखाना, फिर नाम बताकर पहचान कराना, और तब नाम पूछना । इस पद्धति में सर्गेई के तीन चरण हैं । बारहखड़ी सिखाने में वह पद्धति काम में ली है जो बालमन्दिर में प्रयुक्त है । संयुक्ताक्षरों के शिक्षण में बीडन पद्धति की शब्द सीखने की विधि उपयोग में ली गई है, अर्थात् "शब्द दर्शन" पद्धति को अंगीकार किया है ।'

अक्षर ज्ञान योजना शुरू हुई और गुजरात सौराष्ट्र के गांव अक्षर ज्ञान शालाओं से गूंजने लगे । 'मजदूर और किसान, रैबारी-अहीर और कारीगर, स्त्री और पुरुष, वृद्ध और अधेड़ सब के सब पढ़ने लगे ।'

"चालो वांचीअे" पुस्तक पूरी होने के बाद गिजुभाई ने "आगळ वांचो-1" तैयार की । इसके तत्काल बाद तारा बेन मोडक ने "आगळ वांचो-2" तैयार की । यह प्रकाशित हुई कि गिजुभाई ने "आगळ वांचो-3" तैयार कर डाली । इसके बाद में अनुपूरक वाचन के लिए गिजुभाई का बाल एवं किशोर साहित्य तैयार था ही ।

इस योजना के संचालन में साथियों की आवश्यकता अनुभव की, तो गिजुभाई ने "ग्राम अध्यापन मंदिर" शुरू कर दिया । ईश्वर भाई, चंद्रशंकर याज्ञिक तथा त्रिभुवन व्यास आदि अनेक साथियों को प्रशिक्षण देकर अक्षर ज्ञान योजना का एक-एक केन्द्र इन्हें सौंप दिया ।

गिजुभाई की इस अक्षर ज्ञान योजना की क्रान्तिकारिता श्री बाला साहेब खेर के दिल में बैठ गई । सन 1937-38 में बम्बई राज्य में प्रान्तीय स्वराज्य स्थापित हुआ और श्री बाला साहेब खेर मुख्य मन्त्री चुने गए । उस समय उन्होंने गिजुभाई को बम्बई राज्य का प्रौढ़ शिक्षा विभाग संचालित करने हेतु आमन्त्रण भेजा कि 'छह वर्ष से ऊपर के प्रत्येक स्त्री-पुरुष को लिखना-पढ़ना सिखा दें ।'

परन्तु बालकों के शिक्षक गिजुभाई बालकों के कार्यक्रम को कैसे त्याग सकते थे ! यह उनके स्वभाव से विपरीत बात थी । उन्होंने विनम्रतापूर्वक असहमति प्रेषित कर दी ।

शरणार्थी शिविरों में निवास : वानर सेना, मांजर सेना[1]

अक्षर ज्ञान योजना अपनी गति से जारी थी । उधर सन 1930-31 में

1. दस-बारह वर्ष के बालकों की सेना का नाम वानर सेना रक्खा तथा पांच-सात वर्ष के नन्हें-मुन्नों की सेना का नाम मांजर सेना (याने बिल्ली सेना) रखा ।

देश का वातावरण अत्यन्त अशान्त बन चुका था । दांडी पहुंचते ही बापू पकड़ लिए गए थे । धरासना, वडाला तथा सम्पूर्ण देश में दमनचक्र शुरू हुआ ।[1] धर पकड़ तथा जुल्मों का सिलसिला शुरू हुआ । नानाभाई भट्ट, संस्था के अनेक कार्यकर्त्ता तथा विद्यार्थी जेल के सींखचों में डाल दिए गए ।

गिजुभाई से रहा नहीं गया । 'मैं एक बाल-शिक्षक हूं । इस समय मुझे क्या करना चाहिए ।' तारा बेन तथा मोंघी बेन को लेकर निकल पड़े ।

श्री जुगतराम भाई भी साथ थे ।

बारडोली जिले के शरणार्थी किसान नवसारी जिले में आकर वनों में तंबू डालकर रहते थे । गिजुभाई ने इन लोगों की स्थिति का अवलोकन किया । इन लोगों की तकलीफें देखीं । उन्होंने इन शरणार्थियों के बीच में ही रहना तय किया । तंबू तानकर इन्हीं के बीच रहे ।

बाल-शिक्षक गिजुभाई ने दूसरे ही दिन से शिविर में अपना शिक्षण-कार्य शुरू कर दिया । बड़े सवेरे उठकर छोटे-छोटे बालकों को इकट्ठा करना, नहला-धुलाकर उन्हें साफ करना, खेलाना, गीत गवाना, कहानी सुनाना, लिखना-पढ़ना सिखाना । बड़े-बुजुर्ग लोगों को भजन, तथा कथा-कहानी सुनाना । गिजुभाई के आगमन से शरणार्थियों को आश्रय मिला । उन लोगों में हिम्मत आई । रोज शाम ढ़ले मोंघी बेन अपने सुरीले कंठ से भजन सुनाती ।

"हरिने भजतां हजी कोई नी लाज जती नथी जाणी रे ।
जेनी सुरता शामळिया साथ, वदे वेद वाणी रे ।।"

स्त्री-पुरुष-बच्चे पूर्णा के तट पर डेरा डालकर बैठ जाते । गाँव से कुछ दूर खेतों में शिविर डालकर रहने वाले वे शरणार्थी देर रात गए तक भजन सुनते रहते और सबों के बीच अपने दुःखों को भूल जाते ।

'गिजुभाई तथा उनके साथी तंबू-तंबू घूमते । रोटियां पकती होतीं, चूल्हे पर दाल चढ़ी होती, कहीं भैंसें दुहाती होतीं, दीयों का मंद प्रकाश तंबुओं में रोशनी फैलाता होता । जंगल में हिंस्र पशु तथा विषैले जीव-जंतु भी प्रचुर मात्रा में थे । पर वे एक-एक तंबू में जाकर सबों की कुशल-क्षेम पूछते । लोगों तक गाँधीजी के तथा सरदार पटेल के समाचार सुनाते, उन्हें धन्यवाद देते और

1. दाँडी यात्रा के समय गाँधीजी ने यह तय किया था कि अहमदाबाद से सूरत के पास दाँडी ग्राम जाकर सागर तट से मुट्ठी भर नमक लेना और इस प्रकार सरकारी नियम का उल्लंघन करना । वे जब चलते-चलते दाँडी ग्राम के पास आये, कि पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया तब गुजरात के धरासना और बंबई के वडाला में जनता ने इसी प्रकार से नमक लिया और सरकारी नियम को तोड़ा । इस अवसर पर पुलिस ने जनता पर जबरदस्त जुल्म ढाये थे ।—लेखक

प्रयाण करके आगे बढ़ जाते । शरणार्थियों को इस अवांछित प्रवास के कष्टों को सहन करने का प्रोत्साहन भी प्रदान करते ।'

'इसी अवधि में गिजुभाई ने धीरे-धीरे गाँव-गाँव तथा शहर-शहर में बालकों की "वानर सेना" तथा बिल्कुल नन्हें-मुन्नों की "मांजर-सेना" प्रवृत्ति शुरू की। गुजरात के एक सिरे से दूसरे छोर तक वानर सेना के शोरगुल से वातावरण गूंज उठा । वानर सेना तथा मांजर सेना बड़े सवेरे प्रभात फेरी निकालती, सभा की सूचना प्रसारित करती, जुलूस में सबसे आगे चलती, शराब के ठेकों तथा विदेशी कपड़ों की दुकानों में पिकेटिंग करती। दुकानदार तथा पुलिस सब तोबा करने लगते ।'

स्वाधीनता याने क्या ? किस लिए हम अंग्रेजों से इंग्लैंड चले जाने की बात कहते हैं ; क्यों हम विदेशी कपड़े न पहनने की बात कहते हैं ?—ऐसी ऐसी अनेक बातों के बारे में गिजुभाई वानर-सेना को समझाते । सूरत में गुजरात के सभी वानरों की एक वानर परिषद् उन्होंने आयोजित की तथा मुख्य वानरपति के रूप में स्वयं गिजुभाई ने उसका सुन्दर संचालन किया । 'सत्याग्रह की लड़ाई में बालक भी भाग ले सकते हैं ।' ऐसी बात सत्याग्रह-शास्त्र के आचार्य गांधीजी ने एक बार कही थी । पर गिजुभाई ने तो इस बात को व्यवहार में उतार कर दिखला दिया था । कामाचारू[1] तथा थियासा[2] के रूप में आज भी ये वानर तथा मांजर अपने प्रमुख-वानर गिजुभाई को प्रेमपूर्वक याद करते हैं ।

एक दिन सूरत की वानर-महापरिषद् में गिजुभाई वानरपति सुग्रीव की भाँति विशाल कार्य दिखाई दिये तो एक अन्य दिन छोटे-से गाँव में नन्हे-मुन्ने मांजरों के बीच में बैठकर कहानी सुनाते बाल-शिक्षक के वामन स्वरूप में दिखाई दिये । सरकार उनकी शक्ति का अनुमान भी नहीं लगा सकती । उन्हें कैद करने का विचार करती और फिर स्थगित कर देती । गाँधी-इर्विन समझौता होने के बाद गिजुभाई वापिस अपने दल-बल समेत दक्षिणामूर्ति लौटे तथा अपने काम में लग गए ।

बालवाड़ी-आंगनवाड़ी

'...गाँवों के लिए हमें मोंटेसरी पद्धति त्याज्य प्रतीत होती, यदि वह निर्भयता की शिक्षा देने वाली न होती, स्वावलंबी बनाने वाली न होती, निर्मल

---

1. **कामाचारू**—वे जापान के एक अध्यापक थे । जापानी इतिहास तो बालकों को पढ़ाते ही थे, साथ ही स्वाधीनता का पाठ भी पढ़ाते थे। रूस ने जब जापान पर आक्रमण किया था, तब अपने विद्यार्थियों को लेकर वे रूस के विरुद्ध लड़े थे
2. **थियासां**— तिब्बत में भूगोल शिक्षक थे । भूगोल पढ़ाते- पढ़ाते हजारों तिब्बती बालकों को उन्होंने देश-प्रेम की शिक्षा दी थी ।

ज्ञानदात्री न होती तथा गुलामी से मुक्ति प्रदान करने वाली न होती !'

रोम के अकिंचन मजदूरों के मोहल्लों में बालकों के लिए ही तो मोंटेसरी पद्धति का जन्म हुआ था । तब यह कैसे कहा जा सकता है कि यह धनिकों के लिए ही है !

मोंटेसरी पद्धति से विद्यालय को चलाने में बहुत खर्च होता है । गिजुभाई ने सोचा : अगर देश के लाखों गाँवों तक इसको पहुंचाना हो तो कैसे पहुँचाएँ ! मोंटेसरी पद्धति का प्राण भी जहाँ सुरक्षित-संरक्षित रह सके तथा गरीब गाँव जहां उसे अपने वहां विकसित कर सके, ऐसा मोंटेसरी शाला का स्वरूप कैसा होना चाहिए ?

और गिजुभाई तथा ताराबेन ने प्रयोग शुरू किये । दक्षिणामूर्ति बाल-मंदिर के सामने की बस्ती के किसानों-मजदूरों के बच्चों के लिए तथा हरिजन-वास में बालवाड़ियाँ संचालित की गई । इन दोनों ने ही इनमें सुधार-संशोधन किये । जुगतराम भाई कभी-कभार आकर इन्हें देख जाते थे ।

फिर तो ताराबेन दक्षिणामूर्ति संस्था से मुक्त हो गए तथा गिजुभाई को भी ईश्वर ने हमारे बीच से उठा लिया ।

लेकिन जुगतरामभाई ने अपने वहां वेड़छी-मढ़ी में आदिवासी बालकों के मध्य प्रयोग शुरू किये । सन् 1945-46 में ताराबेन ने भी महात्माजी की प्रेरणा से बोरड़ी (थाना जिला) में ग्राम बालशिक्षा केन्द्र की स्थापना की । वर्षों की तपश्चर्या के पश्चात् गिजुभाई के इन दोनों साथियों ने गाँवों के क्षुद्र बालकों के लिए बालवाड़ी-आंगनवाड़ी-मोहल्लावाड़ी शुरू की । धीरे-धीरे उन्हें गुजरात-व्यापी बनाया तथा राष्ट्रव्यापी बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं ।

आज से 35-40 वर्ष पूर्व राष्ट्रीय जीवन के नवनिर्माण को ध्यान में रखते हुए गिजुभाई ने इस राष्ट्रव्यापी प्रयोग की कल्पना की थी । आज उस कल्पना को अपने साथियों के हाथों सम्पन्न होते देखकर उनकी आत्मा कितनी प्रसन्नता का अनुभव करती होगी !

बाल क्रीड़ांगण योजना

सन् 1927-28 का काल । देश के राजनीतिक क्षितिज पर समाजवादी शक्तियों का क्षीण रंग उभरने लगा था । गाँधीजी ने भी उत्कल में दरिद्र-नारायण के दर्शन करने के पश्चात् घुटनों तक की धोती धारण कर ली थी । उनकी देश के प्रति जो भी विचारणा थी वह देश के भूखे-प्यासे 40 करोड़ आदमियों को नजरों के समक्ष रखकर ही थी ।

गिजुभाई की विचार धारा में भी इसी बात का प्रतिबिंब पड़ने लगा । उनकी दृष्टि के सामने देश के छोटे-छोटे गलियों में भटकते लाखों बालक तैरने लगे । इनके लिए क्या करना चाहिए ?

'…मोंटेसरी पद्धति को हमें स्थान-स्थान पर संचालित करने का प्रयास करना चाहिए। मोंटेसरी शाला याने एक शब्द में 'स्वतंत्र' शाला। स्वतंत्रता के अभिलाषी देश में स्थान-स्थान पर ऐसी ही शाला होनी चाहिए। इसके लिए खर्च का प्रश्न ही नहीं होना चाहिए। एक दिन ऐसा आना चाहिए कि जब गाँव-गांव में मोंटेसरी शाला हो।

गिजुभाई व्यग्रता पूर्वक सोचते हैं: "लेकिन आज ?" भारत के विकास की गति को धीमा देखकर अधीनता से व्याकुल हो उठने वाले पं० नेहरू को हम क्यों नहीं देखते ?

गिजुभाई अधीर बने सोचते हैं: 'आज देश में लाखों बच्चे गलियों और घरों में सड़ते हैं। उनके प्राणों का हवन होता है। अधिक से अधिक शालाओं को बढ़िया बनाने में तो समय लगेगा। वैसी शाला तो स्थापित करनी ही होगी, यह निश्चित है। लेकिन इस समय ? इस समय क्या लाखों बालकों को घरों में मार खाने दें ? इस समय इन बालकों को घरों में क्रिया-विहीन व्यथित होने दें ?'

'तीन वर्ष, और इससे ऊपर के हजारों बालकों को कहां डालें ? उनका दिन किस प्रकार शुरू करायें ? वे प्राथमिक शालाओं में पढ़ने लायक हों तब तक उनके शरीर तथा मन को कैसे विकसित करें ?'

'हमारे सामने लाखों बालकों का प्रश्न है, उसे व्यापक स्तर पर सुलझाना चाहिए। बेकार बालकों की इस सेना को अगर हम आज उनकी स्थिति में से उबारेंगे तो कल वे महातेजस्वी युवक, तथा परसों प्राणवान नागरिक बनेंगे!'

'यह किसी एक व्यक्ति का प्रश्न नहीं है। पूरी प्रजा का हैं और इसे इसी विधि से सुलझाया जा सकता है।' गिजुभाई ने विस्तृत योजना प्रस्तुत की।

'हमें स्थान-स्थान पर "बाल-क्रीडांगण" स्थापित करने चाहिए। इनके माध्यम से बालकों के विकास के पोषक तथा विकासपरक खेल उपलब्ध हों।' बाल क्रीड़ागण प्रत्येक गाँव में हो। बड़ा शहर हो तो मोहल्ले मोहल्ले में हो।

बालक्रीड़ागण का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए गिजुभाई ने लिखा है:

'तीन से सात से सात वर्ष के याने प्राथमिक शाला में जाने योग्य हों तब तब तक की उम्र में बालकों को गलियों की विविध बुराइयों से बचा लेना चाहिए। ऐसे ही माता-पिता के प्रति लाड-प्यार अथवा लापरवाही अथवा हुकम उदूली अथवा अयोग्य वातावरण से निकालना चाहिए। इसके साथ ही साथ बालक की विकासमान इन्द्रियों को पोषित करने वाला सुखी तथा तंदुरुस्त वातावरण एवं क्रियाएं उपलब्ध होनी चाहिए जिसमें शिक्षा की मुख्य भूमिका हो।'

ऐसे क्रीडांगण प्रत्येक गांव के सीमांत में स्थापित होने चाहिए। गांव के बालक वहां इकठ्टे हों तथा शिक्षक उन्हें भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियां प्रदान करें। "क्रीडांगण" याने मात्र खेल-कूद के स्थान ही नहीं। क्रीडांगण की सामान्य प्रवृत्तियाँ निम्न प्रकार की हो चाहिए:

(अ) अंग रक्षण तथा स्वच्छता प्रेरक प्रवृत्तियाँ, जैसे कि हाथ मुंह धोना सिखाना, कपड़े पहनना सिखाना, गन्दे तथा फटे हुए कपड़े अच्छी बात नहीं, यह उनके ध्यान में लाकर अरुचि पैदा करना; बाल, आँख नाक, कान, दाँत, आदि स्वच्छ रखना सिखाना।

नन्हे बालकों को ये सब बातें अत्यन्त प्रेम से तथा आत्मीयता से सिखानी चाहिए। प्रत्येक क्रीड़ांगण प्रातःकाल अनगिनत बालकों को स्वच्छ करके उन्हें शरीर तथा मन की स्वच्छता का आनन्द प्रदान करेगा तो देश के वातावरण में एक भिन्न प्रकार का परिवर्तन पैदा होगा। इतने सारे बालक स्वच्छ और प्रफुल्लित होंगे; गन्दगी से भरे हमारे देश के लिए यह कोई छोटी घटना नहीं होगी। न यह ऐसी-वैसी पढ़ाई है, यह तो बहुत बड़ा प्रतिष्ठा का मार्ग है।

(आ) दूसरी प्रवृत्ति है शारीरिक बल, स्फूर्ति तथा आनन्द की कसरतें तथा क्रीड़ाएं। जैसे कि, रेत का अखाड़ा, जिसमें बालक दौड़ें, कूदें, लोटें और पड़े रहें, दौड़ कूदने की प्रवृत्ति, चढने-उतरने की नसैनियां, प्रयाण, गलियों की लोकक्रीड़ा आदि-आदि।

छोटी वय के बालकों के शरीर को बढने देने के लिए जितना ज्यादा ध्यान दिया जाय उतना कम हैं। प्राथमिक शाला में जाकर पढ़ने लगें उससे पहले उनके शरीर पुष्ट एवं बलवान हो जाने चाहिए। गिजुभाई ने प्रत्येक बिन्दु पर विस्तारपूर्ण बातें लिखी हैं।

(इ) बालकों को सामाजिक जीवन के योग्य बनाने हेतु कितनी ही शिक्षाप्रद जानकारी देना, जैसे कि "कैसे बैठें" "किस तरह से औरों के साथ आदरपूर्वक बात करना", "कैसे औरों से चीजें मांगना", "कचरा आदि कहां डालें", "परस्पर कैसे बतियायें, एक दूसरे की चीज को कैसे सराहें।" इस सम्बन्ध में शिक्षक स्वयं चलाकर बालकों को बताये कि कैसे क्या करना चाहिए और फिर ऐसी व्यवस्था को कि बालक खेल-खेल में बारी बारी से तदनुरूप व्यवहार करें। बालकों हो यह सब बहुत अच्छा लगेगा। छुटपन से ही उनमें दायित्व निर्वहन का भाव जागेगा। लेकिन इस प्रसंग में कृत्रिमता को जरा भी अवकाश नहीं देना चाहिए।

(ई) बालकों के बौद्धिक विकास तथा बालमन के लिए रोचक प्रवृत्तियां आयोजित करना, जैसे कि कहानी कहना-सुनना, गीतों कविताओं का कथन-श्रवण, प्रकृति परिचय, चित्रों का दर्शन।

कहानी कविता एवं गीतों से बालकों की भाषा निर्मित होती है, समृद्ध होती है। प्रकृति परिचय—आकाश, बगीचा, वन, पर्वत, नदी, पशु, पक्षी, तितलियाँ, कृमि-कीट आदि के अवलोकन से बालकों की पर्यवेक्षण शक्ति बढती है, इन्द्रियों का विकास होता है तथा साथ-साथ बुद्धि भी पोषित होती है।

(उ) क्रीड़ांगण याने संस्कार भूमि। बालकों पर घर के अच्छे संस्कार यदि नहीं पडे तो उन्हें सुदृढ़ करने का प्रयास करना तथा कच्चे संस्कारों को छुड़ाना, इसके लिए क्रीड़ांगणों में व्यवस्था की जानी चाहिए। क्रीड़ांगण याने स्वच्छता का नमूना। क्रीड़ांगण याने बालकों का परस्पर हिलने-मिलने तथा मैत्री साधने का स्थान। क्रीड़ांगण याने शिक्षकों तथा बालकों के प्रेम का सुसंगम; क्रीड़ांगण याने स्वाभाविक धर्म तथा सुनीति का वातावरण।

खासक खेलकर, कहानियां सुनकर, प्रार्थना करके, शिक्षकों तथा अन्य जनों को नमस्कार करके घर जायें। ऐसे क्रीड़ांगण याने शाला एवं घर के बीच सेतु।

इन क्रीड़ांगणों में क्या-क्या सामग्री होनी चाहिए, इसकी सूची भी गिजुभाई ने तैयार की है।

'ये क्रीड़ांगण याने नये प्रकार की शाला। हर कोई इनका शिक्षक नहीं हो सकता। इनमें मोंटेसरी अध्यापक न मिले तो कोई बात नहीं। वह सीनियर या प्रशिक्षित शिक्षक ही हो, यह भी नहीं। इन सबके बावजूद वह मनमाने रास्ते पर निकल जाने वाला व्यक्ति तो हर्गिज न हो।'

'क्रीड़ांगण याने मात्र ढोरों को बाँधे रखने के बाड़ों जैसा बालकों को अमुक समय तक एकत्र करके रखने का स्थान नहीं। न वह उनसे अब यह करो, अब वह करो, ऐसे बिना सोचे-समझे कहने-कराने का स्थान है। जिस प्रकार बाग-बान मिट्टी गमले के में उगे पौधों को आत्मीय भाव से संभालकर समुचित खाद्य-पानी से पालता-पोषता है ठीक वैसे ही यहाँ पर शिक्षक को इन नन्हीं वय के कोमल बालकों के लिए करना पड़ेगा।'

'इस काम के लिए शिक्षक तैयार करने होंगे। प्रत्येक राज्य शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए अध्यापन-मन्दिर स्थापित करते हैं। वहां प्रत्येक गाँव से एक-दो व्यक्तियों स्त्री-पुरुषों को चुनकर ऐसा प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। इन स्त्री-पुरुषों की योग्यता में विशेषतया शील, बालकों के प्रति ममता, अन्य प्रपंचों से मुक्ति आदि मुक्त चीजें होनी चाहिए। वह कितना पढ़ा हुआ है, इस पर योग्यता का मापन नहीं होगा। उसका उत्साह कितना है, उसके स्वभाव में धैर्य कितना है, बालप्रेम कितना है, सरलता कितनी है—इन पर उसका तोल निर्भर है।'

'ऐसे स्त्री-पुरुषों को तीन माह तक इकट्ठा करके राज्यों के शिक्षाशास्त्री, जो विषय क्रीड़ांगणों में रखे गए हैं, उन्हें लेने की विधि समझाएं। पुस्तकें न पढ़ाये अपितु मुंह से बोल कर गले उतारें तथा कैसे-क्या करना चाहिए ये सब बतायें। जो लोग योग्य लगें उन्हें गाँव गांव भिजवा दें।'

'पूरे राज्य के ऐसे तमाम शिक्षकों पर राज्य के शिक्षा विभाग की देखरेख रहे। उसके प्रतिनिधि क्रीड़ांगणों का बार-बार निरीक्षण करें तथा देखें कि उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में वे कैसे चल रहे हैं।'

'वर्ष के अंत में हर साल मुख्य अधिकारी तमाम शिक्षकों का सम्मेलन बुलाएं तथा सलाह दें कि उन्हें भविष्य में क्या करना है।'

'ऐसे क्रीड़ांगण स्थान-स्थान पर, जैसे नगरपालिका की तरफ से बत्तियों का इंतजाम किया जाता है, वैसे ही स्थापित किये जाने जरूरी हैं।'

'राज्य तथा प्रजा का दायित्व है यह। जिन्हें अपनी भावी पीढ़ी तथा प्रजा को सुशिक्षित संस्कारवान बनाना है, उनका काम है यह![1]

इस प्रकार देश के लाखों बालकों की विद्यालय-पूर्व प्रवृत्तियों (प्रि-स्कूल एक्टीविटीज) की सांगोपांग योजना बनाकर गिजुभाई ने लोक के समक्ष प्रस्तुत की।

मात्र योजना बनाकर बैठें, तो गिजुभाई कैसे ? उन्होंने तो तत्काल काम शुरू कर दिया। भावनगर राज्य ने भी सहयोग दिया तथा गांवों में बाल-क्रीड़ांगण' स्थापित करने लगा। इसके लिए अध्यापन मन्दिरों में अध्यापक भी तैयार किये गए श्री स्वामीराव (सरदार पृथ्वी सिंह), बहाउद्दीन भाई आदि इस प्रवृत्ति के मुख्य सहकर्मी थे।

इस प्रवृत्ति की महत्ता तथा इसके मूल में विद्यमान गिजुभाई की क्रांतिकारी आर्ष दृष्टि का अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि हमारे देश में प्रि-स्कूल शिक्षण की अब भी कोई व्यवस्थित स्थिति निर्मित नहीं हो पाई है। दिल्ली का बालकल्याण विभाग इस संबंध में विचार कर रहा है। विद्यालय-पूर्व शिक्षा का राष्ट्रीय स्वरूप अब भी निर्मित नहीं हो पाया है। कई राज्यों में तो इस दशा में कहीं कोई राजकीय प्रयास नहीं हैं। कमोबेश निजी शिक्षण संस्थाएं अवश्य कार्यरत हैं। पर वे भी बाल कल्याण की दृष्टि से शिक्षण कार्य कर रही हैं, कहना कठिन है। जो संस्थायें हैं उनमें से भी ज्यादातर तो दुकानें मात्र हैं। औद्योगिक-प्रगति के इस युग में तरह-तरह के उपकरणों की कमी कहाँ ? पर क्या मात्र उपकरण शिक्षा के पूरक अथवा विकल्प हैं !

गिजुभाई ने आज से 40-45 वर्ष पूर्व बाल क्रीड़ांगण की कैसी अनुपम योजना

1. 'दक्षिणामूर्ति" वर्ष:1927-28, गिजुभाई का लेख 'बाल क्रीडांगणों'।

बनाई थी। जबकि उनके जमाने में साधनों का सर्वथा अभाव था। तथापि जैसे-तैसे विरल साधन भी उन्हें उपलब्ध हो पाये, उन्हीं की मदद से उन्होंने अपने साथियों सहकर्मियों को भी तैयार किया तथा योजना को क्रियान्वित करके दिखा दिया।

किसी-किसी व्यक्ति की दृष्टि काल को बेधकर उस पार दूर-दूर तक अवलोकन कर लेती है। गिजुभाई ऐसे महापुरुषों में से एक थे। वे हमारे बहुत करीब थे। बाह्याडंबर से मुक्त। एक साधारण- से आदमी की तरह हमारे इतने पास थे कि हम उनकी विशिष्टताओं की महत्ता को समझ नहीं पाये। और जब तक समझे तब तक समय गुजर गया।

विवेकानन्द तथा रवीन्द्रनाथ को भी तो पहचानने में हमारी दृष्टि ने साथ कहां दिया था। वो तो यूरोपीय मार्ग (Via Europe) से हम समझ पाये! स्वाधीन भारत में अपनी इस राष्ट्रीय आत्मा को पहचानने के लिए क्या हम यूरोपीय मार्ग की प्रतीक्षा करेंगे? क्या हम उनकी अधूरी योजनाओं को पूरा करने के लिए सही वक्त पर काम में लग जायेंगे?

●

9

गिजुभाई का योगदान-6

एक जीवंत व्यक्तित्व

……गिजुभाई जाज्वल्यमान अग्नि-पिंड की तरह थे। तभी तो जो कोई भी उनके समीप जाता उसी को दीप्तिवान कर देते थे। तभी तो इतने कम समय में वे इतना अधिक कार्य कर सके। वे अद्वितीय प्रचारक थे। इसका रहस्य उनके भीतर विद्यमान महाअग्नि में निहित है—महा ज्योति में निहित है। ज्योति से ज्योति प्रादुर्भूत होती है वैसे ही वे जहां-जहां जाते वहाँ पांच-पच्चीस व्यक्तियों को अपने विचारों का रोग लगा कर ही लौटते।

—तारा बेन मोडक

'तुज संगे को वैष्णव थाये, तो तु वैष्णव साचो,
तारा संग नो रंग न लागे, त्हां लगी तु काचो।"

—दयाराम

किसी भी देश में जब नवोत्थान का काल आता है तो एक विशेष बात यह देखने में आती है कि उस काल-विशेष के युग पुरुष ऐसी विलक्षण शक्ति से युक्त होते हैं कि उनके द्वारा अनेकानेक लोगों का जीवन निर्मित होता है, परिणामत: वे नये लोग भी समाज को तैयार करने के कार्यों में संलग्न हो जाते हैं और इस प्रकार सम्पूर्ण देश तैयार हो जाता है।

बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में हमारे यहां यही अनुकरणीय दृष्टांत देखने को मिलता है। जो भी व्यक्ति तिलक अथवा गोखले के सम्पर्क में आते, वे सब के सब धीरे-धीरे उन्हीं के रंग में रंग जाते थे और आगे चलकर उन्हीं के कार्यों को आगे बढ़ाने में लग जाते थे। सन 1920 में जब गांधीजी आए तो उनका व्यक्तित्व भी ऐसा प्रेरणास्पद रहा। साबरमती आश्रम में गेहूँ साफ करते-करते वल्लभभाई ने उनसे दीक्षा प्राप्त की थी, तथा पाखाने साफ करते-करते विनोबाजी ने भी अहिंसा का सूक्ष्म मर्म प्राप्त किया था और इस प्रकार प्रथम सत्याग्रही बनने की योग्यता अर्जित की थी। नेहरू का अत्यन्त तेजस्वी तथा

अधीर व्यक्तित्व गांधीजी के साथ लड़ते-झगड़ते भी अपना आकार ग्रहण कर रहा था। अंग्रेजों के समक्ष हिंसक क्रांति को वाजबी समझने वाले हमारे गुजराती साहित्यकार श्रीकिशनसिंह चावड़ा ने भी गांधी के सिर-पाँव चांपते-चाँपते अहिंसा की शिक्षा आत्मसात की थी। अत्यधिक काम करते-करते थक कर सो जाने वाले महादेव भाई को बापू प्यार से चाय बनाकर पिलाते तो वहाँ भी महादेव भाई को प्रेम, करुणा, सहानुभूति तथा मानव सम्मान के पाठ सीखने को मिलते। कल्याणकारी काम करने वाले प्रख्यात वकील श्री राजेन्द्र बाबू चम्पारन में गांधी से मिलने गये तो उनकी वकालत ही नहीं गई अपितु वे स्वयं कट्टर गांधीवादी बन गए। गांधी के ग्रामोद्योग के अर्थशास्त्र पर आलोचना करने को जोसेफ कुमारप्पा यहां आकर किस क्षण ग्रामोद्योग के झंडाबरदार बन गए, इसका पता ही नहीं लगा। जबकि श्री कुमारप्पा यूरोप से नए-नए पढ़कर आए थे और कोट-पतलून में हर समय सजे-संवरे रहते थे। याने जो कोई भी उनके चक्कर में चढ़ा कि गया……।

महाकवि तुलसी का दोहा चरितार्थ होता है, 'एक घड़ी, आधी घड़ी, आधिहुं ते पुनि आध/तुलसी संगत आधु की……।'

रूस में लेनिन का व्यक्तित्व याकि गेटिसबर्ग में भाषण देते अमेरिकी प्रेसिडेंट अब्राहम लिंकन का व्यक्तित्व भी ऐसा ही था।

युग पुरुषों के जीवन में यह शक्ति अथवा सामर्थ्य कहाँ से आती है? सच पूछो तो उनके हृदय में चेतना की अग्नि हर क्षण प्रदीप्त रहती है। इस अग्नि के समीप आने वाले सभी नन्हें-नन्हें दीपक स्वत: ही जल उठते हैं। गांधी जी के हृदय में भी सम्पूर्ण मानव जाति के प्रति ऐसी ही अग्नि प्रदीप्त थी और तभी तो जेल के जंगली काले वार्डर तक उनके साथ मानवता से पेश आते थे।

यह अग्नि एक मात्र युग पुरुष के ही हृदय में नहीं होती अपितु उस युग-विशेष में काम करने वाले प्रत्येक छोटे-बड़े कार्यकर्ता के हृदय में अंश के रूप में विद्यमान रहती है। तभी तो वे लोग अपने-अपने क्षेत्रों में अनेकानेक लोगों को तैयार करते हैं। वल्लभभाई तथा ठक्कर बापा के पास कितने-कितने कार्यकर्त्ताओं ने शिक्षा हासिल की है।

गिजुभाई के हृदय में भी इस युग पुरुषपन का एक अंश विद्यमान प्रतीत होता है। बालकों के कल्याण की एक नित्य जाज्वल्यमान अग्नि उनके हृदय में सुलगती थी। तभी तो जो कोई भी उनके परिचय-क्षेत्र में आया, उन सबों को उन्होंने बाल-कल्याण की दृष्टि से सोचना सिखा दिया। कितने ही लोगों का उन्होंने जीवन बदल डाला, और वे लोग जीवन भर बालकों के मध्य काम करने लग गए।

इस अध्याय में ऐसे ही कतिपय व्यक्तित्व हैं। ये जीवन्त व्यक्तित्व गिजुभाई द्वारा हमें सौंपी गई अमूल्य सम्पत्ति है।

श्रीमती तारा बेन मोडक

सन् 1922-24 की अवधि। ताराबेन राजकोट में बार्टन महिला प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रिंसिपल थीं। उन दिनों महिलाओं में ग्रेजुएट इने-गिने थे। इस कारण तारा बेन का स्थान ऊँचा और महत्त्वपूर्ण था। इसी बीच उनकी अपनी पुत्री की पढ़ाई का प्रश्न आ खड़ा हुआ और उनकी नजर भावनगर के बालमंदिर की ओर उठी। वे भावनगर आईं। गिजुभाई से उन्होंने बाल-शिक्षण का मन्त्र लिया और फिर इसी कार्य के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया।

तारा बेन गिजुभाई के सान्निध्य में कैसे आईं और कैसे उनसे प्रेरणा ग्रहण की, वह सब हृदयस्पर्शी वर्णन तारा बेन के शब्दों में ही पढ़िये :

'मेरे जीवन का वह एक सौभाग्यशाली क्षण था कि जब मैं भावनगर में पहुंची।'

'उस समय मैं अपने बारे में कुछ नहीं सोच रही थी, मात्र अपनी पुत्री की पढ़ाई की बात सोच रही थी। मेरा चिन्तन शिक्षण-पद्धति पर था। काल्पनिक से प्रतीत होने वाले शिक्षण-सिद्धान्तों को व्यवहार में कैसे ढाला जाय, इस दिशा में विचार करती थी। उस समय खयाल भी नहीं आया कि बालमन्दिर के आचार्य मेरे जीवन-गुरु बन जायेंगे, कि यहीं से मुझको जीवन दिशा मिलने वाली है, याकि जीवन भर का कार्य मिलने वाला है।'

'मैं भावनगर गई। मेरी पुत्री के लिए एक उत्तम शाला मिल गई, इसी खुशी में विभोर थी मैं। मुझको शिक्षण कार्य का अध्ययन करने का अवसर मिला है, यही खुशी थी मुझे। और फिर श्री नाना भाई भट्ट तथा गिजुभाई जैसीविभूतियों का सत्संग मिलना भी मेरे हर्ष का कारण था।

'मैं वहां रहकर अध्ययन करने लगी। शिक्षण-सिद्धान्तों की चर्चा में गहरे पैठने लगी। नूतन बाल-शिक्षण के तमाम सिद्धान्त एकाएक गले उतरने वाले नहीं थे। और फिर, मेरा अपना महाराष्ट्रीय दिमाग! भावना से सब कुछ स्वीकार कर लेने जैसी मेरी उद्यतता नहीं थी। इसलिए रोजाना पढ़ना, मनन करना तथा खूब चर्चा का नियमित क्रम चलता था।'

'डॉ० मोंटेसरी के शिक्षा-सिद्धान्तों के जीवन व्यक्तित्व का दर्शन मुझे उन दिनों में हुआ। नए शिक्षा-सिद्धान्तों की विशालता ज्ञात हुई। मेरे कितने ही अस्पष्ट विचार स्पष्ट हुए। अधूरे विचार पूरे हुए, सतहीं विचारों को त्यागकर मैं अधिक गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगी।'

'पू० गिजुभाई की मान्यता थी कि मोंटेसरी के सिद्धान्तों को यदि कोई अच्छी तरह से हृदयंगम कर ले तो मनुष्य में एक बदलाव आ जाता है। गिजुभाई स्वयं डॉ० मोंटेसरी के जितने अनन्य भक्त थे, वैसा ही उन्होंने मुझे बना

दिया। और हम लोग उत्साहपूर्वक बालमन्दिर के कार्यों के बाबत सोचने लगे, उन्हें व्यापक बनाने लगे, पागल बनकर उनके पीछे जुट गए। गिजुभाई स्वयं पागल बनें थे और जो भी कोई उनके पास आता उसे भी पागल बना देते। मुझे भी उन्होंने रोग लगा दिया था। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं।

'पर मुझे तो उन्होंने कायमी—कभी न मिटने वाला रोग लगा दिया था। उन्होंने जीवन लक्ष्य प्रदान किया था मुझे। वह जीवन कार्य सौंपा था मुझे, जो मेरे साथ निरन्तर रहा है।'

'आठ-नौ वर्ष पहले (सन 1934 में) मैंने भावनगर छोड़ दिया, इस कार्य-प्रदेश को भी छोड़ने की बात सोची थी। कई निरर्थक प्रयासों के उपरान्त फिर से शिशु-विहार में आ गई। मराठी की "शिक्षण पत्रिका" को ही लेकर बैठी। मैंने हरिजनों का काम हाथ में ले लिया। नारी जाति का काम संभाला तथा परिस्थितिवश द्रव्योपार्जन की ओर निकल पड़ी। कहीं भी मन को शान्ति नहीं मिली। आखिरकार नूतन बाल शिक्षण से जाकर जुड़ गई और उसी में स्थिर हो गई। उस वक्त जाकर भरोसा बंधा कि गिजुभाई ने मुझे पुख्ता दीक्षा प्रदान की थी।'

'पूज्य गिजुभाई के माध्यम से जिस प्रकार मैंने डॉ० मोंटेसरी के सिद्धांतों का रहस्य जाना-समझा तथा परिणामस्वरूप एक जीवन-व्यापी दृष्टिकोण प्राप्त किया, वैसे ही एक और रहस्य पूज्य महात्मा गांधी के सिद्धांतों का प्राप्त किया।'

'उन दिनों "नवजीवन" प्रकाशित हो रहा था। प्रति सप्ताह बापू किसी न किसी प्रश्न पर अपने कुछ विचार व्यक्त करते थे और उन्हें लेकर हमारे यहां चर्चा होती।'

'बापू के विचारों तथा कार्यों की महत्ता मुझे गिजुभाई ने बताई। बताये बगैर न मालूम क्यों मेरी श्रद्धा जमती भी नहीं थी। इस सम्बन्ध में मेरा दिमाग बिल्कुल महाराष्ट्रीय था। नितांत अश्रद्धावान! क्या तो खादी है और क्या अपरिग्रह है? पहले-पहल तो अहिंसावाद भी शत-प्रतिशत गले नहीं उतरता था। संयम आदि अनेक बातों का अच्छी तरह से अर्थ भी समझ में नहीं आता था। स्वदेशाभिमान था, लेकिन बापू की बातें तो मोंटेसरी की तरह ही बिल्कुल भिन्न लगतीं। यद्यपि सन् 1920 में नागपुर कांग्रेस से ही महात्मा जी के राष्ट्रीय नेतृत्व को मैंने स्वीकार किया था और उनके भाषणों तथा लेखों के प्रति सम्मोहित होती गई थी लेकिन फिर भी भीतर से तो मैं अच्छी तरह से रंगी हुई नहीं थी। वह रंग तो मुझ पर गिजुभाई ने ही लगाया था।"

'इस प्रकार वर्तमान दो महान विभूतियों की फिलोसफी का रहस्य समझने

की दीक्षा देने वाले गुरु गिजुभाई थे। इसीलिए उन्हें जीवन गुरु कहती हूं।'

'चाहे मैं विलायत घूम आती, शिक्षण की डिग्री ले आती, चाहे कितना ही शिक्षण कार्य क्यों न कर लेती, और शिक्षण कार्य के निमित्त अमुक मात्रा में स्वार्थों को भी तिलांजलि दे देती, तब भी इस गुरु से मंत्र प्राप्त किये बगैर इतनी बात सही है कि विचार-आचार की स्थिरता तथा संतुलन किसी भी स्थिति में प्राप्त नहीं कर सकती थी। कारण यह है कि गिजुभाई द्वारा प्रदत्त ज्ञान केवल चर्चा अथवा व्याख्यान से नहीं बल्कि उनके अपने जीवन से मिला था। कितनी ही बार हम चर्चा करते-करते थक जाते थे। मुझको जब तक समझ में नहीं आता था, तब तक मैं हां नहीं कहती। गिजुभाई सखेद बात को छोड़ देते। मैं चिंतित होती कि मुझको बात समझ में क्यों नहीं आई। अगर मैं सही थी तो अपनी बात गिजुभाई को क्यों नहीं समझा सकी! आखिरकार हम विषय को ही छोड़ देते और तब गिजुभाई के किसी आचरण द्वारा, किसी कृति द्वारा किसी प्रसंग द्वारा स्वतः वह बात मेरी समझ में आ जाती।'

'इस प्रकार गिजुभाई की निकटता और साथ-साथ काम करने का मुझे जो अमूल्य लाभ मिला वह मेरे जीवन में परिवर्तन लाने वाला तथा जीवन में आश्रय प्रदान करने वाला सिद्ध हुआ।'

ताराबेन ने अभी कुछ अर्से पहले सत्तर वर्ष पूरे किये हैं, लेकिन इस वय में भी बाल-कल्याण कार्यों में अपना जीवन सम्पूर्णतया बिता रही हैं। गुजरात तथा महाराष्ट्र के प्रदेश वासी बाल कल्याण की इस आजीवन संन्यासिनी को अत्यंत आदर की दृष्टि से देखते हैं। भारत सरकार ने भी इनके कार्यों को मान्यता प्रदान करने के लिए इन्हें कुछ समय पूर्व "पद्मभूषण" से अलंकृत किया था। वैसे जीवन भर त्याग तथा स्वयं को होम देने का मूल्यांकन करना अत्यंत कठिन होता है, कदाच इसीलिए जब इन्हें अलंकृत किया गया तो अनेक लोगों ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि स्वयं यह अलंकार इनके द्वारा आज धन्य हुआ है। (ताराबेन का सन् 1974 में देहान्त हुआ।)

श्रीमती मोंघीबेन बधेका

गिजुभाई के सन्निध्य में जिनका अंतर्दीप जाज्वल्यमान हुआ ऐसा दूसरा व्यक्तित्व है श्रीमती मोंघीबेन। सात वर्ष की छोटी-सी उम्र में वैधव्य के भीषण साये ने इन्हें घर दबोचा था। वैधव्य का समाचार मिलते ही अपने भाई को दौड़कर कहने गई। "भैया मैं तो रांड़ बन गई।" इतनी नन्हीं उम्र में जीवन की विकट विडंबनाएं कैसी कराल बन जाती हैं! लेकिन बाल-विधवा मोंघीबेन दिन भर घर के काम में निस्पृह भाव से लगी रहती तथा रात को दीये के मंद-मंद प्रकाश में कहानी की किताब पढ़ती रहती।

गिजुभाई की नजरों से यह बात छिपी नहीं रही। एक दिन उन्होंने अपनी

इस भतीजी को बुला भेजा और मोंघीबेन बाल-देव की उपासना में अपने वैधव्य को दीप्त करने तथा जीवन को सार्थक बनाने हेतु आ पहुंची।

मोंघीबेन कम पढ़ी-लिखी थी। बाहर की दुनिया तथा शिक्षण के नये-नये विचारों से नितांत अपरिचित थी। वे गिजुभाई के पास रहने लगी तथा गिजुभाई जो-जो काम बताते करने लगी।

'मोंघी, ले इस कागज की नकल उतार ला, 'मोंघी चल बैठ हम इस "शिक्षण पत्रिका के अंकों पर पते-ठिकाने लिखें ?'

'मोंघी कल एक-दो बाल कहानियां कहीं से सुनते हुए आना। हम बच्चों को सुनायेंगे।' दिन भर यह क्रम चलता रहता और मोंघीबेन उमंग से प्रत्येक काम पूरा करती।

उन दिनों को याद करती-करती मोंघीबेन लिखती हैं—'बाल मंदिर की टेकरी पर चढ़ने के बाद गिजुभाई बाल मंदिर के अलावा पूरी दुनिया को भूल जाते। उस समय उनके सगे संबंधी अथवा परिचितों को लगता था कि गिजुभाई उन्हें जानते-पहचानते भी हैं या नहीं! और वही लोग जब घर पर पहुंचते तो गिजुभाई उनके आतिथ्य में कोई कोरे-कसर नहीं रखते।'

'जब मैं बाल-मंदिर से जुड़ी थी तब पहले ही दिन उन्होंने मुझसे कहा था देख मोंघी! बाल-मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ आने के बाद हम बिल्कुल भुला दें कि हम चाचा-भतीजी हैं। बाल-मंदिर में तो हमें काम करना है।'

'काम-काज करने-कराने कला की उनके पास अद्भुत थी। वे आज्ञा देकर बैठ नहीं जाते थे, वरन साथ-साथ काम में लग जाते थे। शिक्षण पत्रिका के रेपर तथा टिकटें लगाने के लिए हम लोग रात के दो-दो ढाई-ढाई बजे तक जागते रहते थे, लेकिन उनकी विनोदपूर्ण बातों से न तो हम थकान अनुभव करते और न ही यह पता चलता कि इतना वक्त कैसे किधर गुजर गया।'

'भजन सुनने उन्हें बहुत अच्छे लगते। काम-काज से जरा सा भी अवकाश मिलता कि तत्काल बुलाकर कहते! मोंघी एक दो भजन तो सुना। यह काम तो फिर करना ही है बाद में।' और भजन सुनते-सुनते उनका गला भर आता।'

गिजुभाई के सान्निध्य में मोंघीबेन की अनेकानेक विशेषताएं विकसित हुई। उन्होंने धीरे-धीरे बंगला भाषा सीखी तथा बंगला से कई बालोपयोगी पुस्तकों का गुजराती में रूपांतरण किया। उनके गीतों, लोक गीतों तथा भजनों से बाल-मंदिर का वातावरण गूंज उठा। उनकी कहानियों और बाल-क्रीड़ाओं से बालक मुग्ध हो जाते थे। गिजुभाई के अनेक प्रकार के कार्यों का बोझ उठाने के लिए वे उनकी आजीवन सहायक बनी रही।

मोंघीबेन अपनी विशिष्टताओं से बाल मंदिर की श्रेष्ठ अध्यापिका बनी। दिन भर बाल-मंदिर व्यवस्थित रीति से कैसे चले, इसकी सूक्ष्म-सूक्ष्म बातों पर

वे पहले से ही सोच-विचार कर निर्णय कर लेती थी। पूर्व तैयारी की सूझ उनकी मौलिक विशेषता थी।

बाल-मंदिर को सजाने का काम हो, चाहे छोटे-छोटे बालकों को प्रवास में ले जाना हो, मोंघी बेन की सूक्ष्म दृष्टि स्वत: अपना काम करती रहती। बालक को इतनी ही सहायता दी जाय इससे ज्यादा नहीं, और अगर हम करेंगे तो उसको नुकसान होगा, इन बातों की सूक्ष्म विवेक दृष्टि मोंघी बेन में जबर्दस्त थी। अच्छे-अच्छे शिक्षाशास्त्री इन बातों में चक्कर खा जाते हैं।

मोंघीबेन की इन्हीं विशेषताओं के कारण जिन दिनों डॉ० मोंटेसरी ने अहमदाबाद में बाल-शिक्षण की कक्षाएं चलायी थी, तब प्रत्यक्ष बाल-मंदिर चलाने के लिए उन्होंने मोंघीबेन को आमंत्रित किया था। साबरमती आश्रम में उन्होंने अपनी सूझ एवं क्षमता से छोटे-छोटे हरिजन बालकों का बाल-मंदिर इतना व्यवस्थित तथा उत्तम रीति से संचालित किया कि स्वयं डॉ० मोंटेसरी तथा महात्मा गांधी ने उनकी प्रशंसा की थी।

सन् 1959 में उनका देहावसान हुआ। जीवन भर उन्होंने बालकों के निमित्त कार्य किया तथा यह काम करते-करते ही उन्होंने अपनी जिंदगी होम दी। ऐसे-ऐसे जीवन-दीप प्रकाशित करने तथा समाज-कल्याण के प्रवाह में उन्हें तैरता छोड़ने के लिए समाज पर गिजुभाई का कितना ऋण रहेगा!

श्रीमती नर्मदाबेन रावल

गिजुभाई के ज्ञान-दीपक से जिसका जीवन-दीप प्रज्वलित हुआ था, ऐसा तीसरा व्यक्तित्व है श्रीमती नर्मदाबेन रावल। हमारे यशस्वी चित्रकार रविशंकर रावल की बहन। वे भी छोटी वय में विधवा बन गई थी। गिजुभाई तथा नानाभाई भट्ट ने इनके पिता महाशंकर भाई से आग्रह किया था कि 'क्यों न बहन हमारे बालमन्दिर में आकर काम करें!'

और नर्मदाबेन आ गई गिजुभाई के बालमन्दिर में। बालमन्दिर में उन्होंने चित्रकला तथा संगीत सीखे। बालमन्दिर के छोटे-बड़े कामों में भी धीरे-धीरे निष्णात बनी। सबसे बड़ी बात तो जैसाकि वे स्वयं स्वीकार करती हैं, उन्हें जीवन में आत्मविश्वास प्राप्त हुआ। परिणामत: जीवन में छोटी-बड़ी विद्याएं विकसित होने लगीं।

वे गिजुभाई के पास छ: वर्षों तक रहीं और उस अवधि के दरमियान उन्हें बालकों के साथ काम करने में सुन्दर सूझ तथा दृष्टि प्राप्त हुई। फिर तो वर्षों तक नर्मदाबेन ने अपने घर में ही स्वतन्त्रतया बालगृह संचालित किया। बालकों को अपने वहां पर रखकर नवीन तथा सूक्ष्म दृष्टि से उनके साथ काम किया। उनके वे अनुभव उन्हीं की जबानी सुनें तो स्तब्ध रह जायें। बालकों के साथ काम करने की इनकी दक्षता के कारण ही भावनगर के महाराजा ने अपने बालकों की शिक्षा के लिए राजमहलों में बालमन्दिर चलाने का काम

वर्षों तक इन्हीं को सौंपा था। अपने गुरु गिजुभाई की ही तरह राजकुमारों को बालमन्दिर में शिक्षा प्रदान करते देखकर महाराजा बहुत प्रसन्नता अनुभव करते थे।

अपने गुरु गिजुभाई को स्मरण करते-करते आज भी इनका हृदय गद्‌गद् हो उठता है।

श्री चन्दुभाई भट्ट

वे गुजरात विद्यापीठ से नये-नये स्नातक होकर आए थे। अपने मामा गिजुभाई से मिलने को वे एक बार उनके पास आए।

'क्यों चन्दु ! आजकल क्या कर रहे हो ?'

'कुछ भी नहीं कर रहा। सोच रहा हूँ कि क्या करना चाहिए।'

'तुम्हारी इच्छा हो तो अध्यापन मन्दिर में चले आओ।'

और चन्दुभाई आ पहुंचे अध्यापन मन्दिर में।

'देख चन्दु ! यहां संस्था में काम करते समय तुम भूल जाना कि मैं तुम्हारा मामा हूँ और तुम मेरे भानजे।' पहले ही साक्षात्कार में गिजुभाई का यह निर्देश मिला, और फिर शुरू हुई शिक्षा।

उस अध्ययन काल में अनेकानेक संस्मरणीय बातें बनी जिन्हें आज भी चन्दुभाई भावप्रवणता तथा श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं। आइए हम उन्हीं के शब्दों में एक-दो प्रसंगों का जायजा लें :

'एक बार बालकों को पत्र डालने वाला डाक का बक्सा उन्होंने मुझे मरम्मत के लिए दिया। उसके ऊपर कागज चिपकाना था। मैं चिपका लाया। वह उन्हें पसन्द नहीं आया। इसलिए ऊंची टेकरी से बक्से को फेंक दिया। उसके बाद कितने ही दिन निकल गए।'

'मैंने तो पढ़ाई छोड़कर भाग जाने का इरादा कर लिया है। फेंक देने का यह कैसा तरीका ? अपनी पढ़ाई अपने पास रखिए। मैं तो चला।'

'अरे भला, पागल हो गए हो ! अच्छी तरह से काम करके क्यों नहीं लाए थे तब ? अब तुम मेरे पास से जा क्यों रहे हो ?' और उनके प्रेमपूर्ण व्यवहार में मैं आबद्ध हो गया। मुझे अपना निर्णय त्यागना पड़ा।'

'प्राचीन काल के गुरुजन जिस तरह से अपने शिष्यों को तंग करते थे और इसके बावजूद शिष्यगण विद्याध्ययन के निमित्त गुरुजनों के कठोर आदेशों-व्यवहारों को निभाते थे वैसा ही गिजुभाई के प्रति मुझे कभी-कभी लगता था। लेकिन यह सब तभी सम्भव है कि जब परस्पर प्रेमपूर्ण भावनाओं के प्रवाह को एक-दूसरे के हृदय ने पहचान लिया हो।'

'हम लोग दक्षिणामूर्ति विनयमन्दिर में अध्ययन करते थे उन दिनों गिजुभाई के बालमन्दिर को बालकों के पोषण की शाला समझते थे, लेकिन गिजुभाई के सामीप्य में जब आए तो ज्ञात हुआ कि बाल-शिक्षण की गहराई अथाह है !'

इन्दौर में जब मैं बालमन्दिर चलाता था तब बालमन्दिर के छोटे-बड़े अनेक प्रश्नों में उनका मार्गदर्शन मांगता था। वे निस्संदेह विस्तारपूर्वक मार्गदर्शन प्रदान करते भी, परन्तु कभी-कभी कठोरतापूर्वक लिख भी देते, "भैया ! मुझ पर कब तक आश्रित रहोगे ? यूज योर ब्रेन।"

"एक रात मैं उनके पास पहुंचा। सन् 1937-38 की बात होगी। गिजुभाई की कृषकाया दमे की बीमारी से ग्रस्त थी। कष्टसाध्य बीमारी से इधर मैं भी ग्रसित था। बहुत-सी बातें हुईं। अंत में बिस्तर से उठकर मुझे बाहर तक पहुंचाने आए तो सीढ़ियों से उतरते-उतरते बोले 'तू अपनी बीमारी से एकदम मुक्त हो जाएगा।"

'अपनी हालत को देखते हुए मुझे उन दिनों बिल्कुल स्वस्थ हो जाने की उम्मीद बहुत कम थी, इसलिए मैं हँसा। उन्होंने आगे बढ़ कर मोगरे का एक फूल तोड़ा और मेरे हाथ में देते हुए बोले मैं जो कह रहा हूं बिल्कुल सही कह रहा हूं। अपने इस कथन के साक्षी स्वरूप तुझे यह फूल देता हूँ।'[1]

इस बात को आज अनेक वर्ष बीत गये हैं। डॉक्टरों के ताज्जुब के बीच वही चन्दुभाई बीमारी से मुक्त हुए और नया जीवन पाकर आज भी काम कर रहे हैं।

बालमन्दिर बाल-अध्यापन मन्दिर अथवा प्राथमिक शिक्षा के अध्यापन मन्दिरों में आज भी वे हृदय तथा विचारों के सूक्ष्मप्रवाहों को समझते हुए अपना काम करते रहते हैं। सिद्धांतों की बातें तो बहुत बार करते रहते हैं लेकिन जब सही अवसर आता है तब बालकों के साथ व्यवहार में वे तमाम सिद्धांत भूल जाते हैं। चाहे कैसी ही उलझनभरी परिस्थिति क्यों न हो, सामने वाले पक्ष की बात को महत्ता देते तथा बालकों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण भावना को विस्मृत करते चन्दुभाई को कभी नहीं देखा। बल्कि इसके ठीक विपरीत परिस्थिति ज्यों-ज्यों विकट बनी है इनकी भावना त्यों-त्यों अधिकाधिक प्रबल बनी है। ऐसे अवसरों पर गिजुभाई के बाल-प्रेम का अंश ही वस्तुतः उन्हें यह शक्ति प्रदान करता है ना ! [सन् 1969 में चन्दुभाई का देहान्त हुआ था।]

श्री नरेन्द्रभाई—श्रीमती विभूबेन :

गिजुभाई के पुत्र, तथा पुत्रवधु होने के बावजूद इन दोनों के कार्यों को स्मरण किये बिना कैसे रहें ? गहन स्वाध्याय तथा बाल-शिक्षण के प्रश्नों की सूक्ष्म दृष्टि से सम्पन्न श्री नरेन्द्रभाई आज भी बाल-शिक्षकों को तैयार करने के लिए बहुत अच्छी तरह से अध्यापन मन्दिर का संचालन कर रहे हैं। बाल-मन्दिर

1. स्मरणांजलि—चन्द्रलाल ब० भट्ट।

के छोटे-बड़े कार्यों की श्रीमती विभुबेन को जबर्दस्त सूझ-समझ है। बाल-मन्दिर के नन्हे-मुन्ने बालकों के साथ उन्हें काम करते देखना अपने आप में आनन्द की चीज है। गिजुभाई तथा मोंघीबेन दोनों के सान्निध्य का लाभ इन्हें मिला है और आज गिजुभाई के बालमन्दिर को आप बहुत ही व्यवस्थित रीति से संचालित कर रही है। इस प्रकार नरेन्द्रभाई और विभुबेन दोनों बाल-शिक्षण के क्षेत्र में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इससे निश्चय ही गिजुभाई की स्वर्गस्थ आत्मा को प्रसन्नता हो रही होगी। [सन् 1967 में नरेन्द्रभाई का देहावसान हुआ था।]

अन्य व्यक्तित्व

दादर में नामलेभाई 'शिशु विहार' संचालित कर रहे हैं तथा गुजरात महाराष्ट्र के नूतन बाल शिक्षण-संघ की प्रवृत्तियों को गति प्रदान कर रहे हैं।

नडियाद में मूलजीभाई भक्त बालकों की ही संस्था में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। [सन् 1974 में इनका देहान्त हो गया।]

वजीभाई दवे अहमदाबाद के शारदा मन्दिर में बाल-शिक्षण का काम कर रहे हैं। (सन् 1974 में इनका भी देहांत हुआ था।)

वढ़वाण शिक्षा मंडल में मोगीभाई पारेख धूनी जमाकर बैठे हैं। उधर चौरवाड़-मांगरोल में विरसुतभाई मेहता बाल-कल्याणकारी कार्यों में लगे हैं।

सोमाभाई कीशाभाई भी गिजुभाई के शिष्य हैं। शिक्षकों का कार्य उत्तम बने तथा बालकों को उमंगपूर्वक सरस शिक्षण सुलभ होता रहे इसके लिए इन्होंने कितने-कितने प्रयत्न किये हैं।

और सोमाभाई भावसार? गिजुभाई के साथ-साथ इनमें बाल-भक्ति प्रकट हुई तो मात्र बाल-शिक्षक ही नहीं बने, बाल कवि भी बने। इनकी बाल-कवितायें अनेक बाल मन्दिरों के बालक उल्लासपूर्वक गाते सुने जाते हैं।

श्रीमती सरलादेवी साराभाई तथा यशस्वतीबेन भट्ट अपनी सम्पति तथा शक्ति सब कुछ बाल-कल्याण कार्यों में लगाकर आजीवन संन्यासी बन गए हैं। (सन् 1975 में इनका देहावसान हुआ।)

गुजरात से बाहर भी कुछ व्यक्ति इसी काम में लगे हुए हैं। जोधपुर के बाल निकेतन में श्रीवंशीधर दृढ़तापूर्वक बाल-कल्याण कार्यों में लगे हुए हैं। उन्हीं के साथ उमाशंकर बंधुजी भी काम कर रहे हैं। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में बाल-कल्याण की बहुविधि प्रवृत्तियाँ गतिशील हैं।

उधर मध्यप्रदेश में श्रीयुत काशिनाथजी! देश की स्वाधीनता के उपरांत मध्य भारत के वे पहले शिक्षामन्त्री बने थे तब बाल-शिक्षण को व्यापक से व्यापकतर बनाने की दिशा में कितना प्रयास किया; कितनी ही बाल-शिक्षण की पुस्तकें लिखी हैं, निबन्ध प्रकाशित किये हैं, गुजराती से शताधिक पुस्तकों

का हिन्दी में रूपांतरण किया है, और आज भी वे बाल-शिक्षा के कार्यों से सम्बद्ध रहते हुए देश के कोने-कोने में चर्चा-परिचर्चाओं में भाग लेते हैं।

इतने विशाल परिमाण में चैतन्य दीप प्रज्वलित करके उन पर आजीवन बाल शिक्षण एवं बाल-कल्याण कार्यों से जुटे रहने का रंग लगाना किसी एक व्यक्ति के बूते की बात नहीं हैं। गिजुभाई ने यह महान कार्य किया तथा देश को बालकों के निमित्त कार्य करने वाले अनेकानेक कार्यकर्त्ताओं की भेंट अर्पित की।

चैतन्यपुंज गिजुभाई

गांधीजी की महत्ता हिन्दुस्तान को मात्र स्वतंत्रता दिलाने तक ही सीमित नहीं थी। स्वराज्य को संभालने योग्य कार्यकर्त्ताओं का उन्होंने एक विराट कारवां तैयार किया तथा देश की समस्त प्रजा को भी न्यूनाधिक रूप से स्वतंत्रता को संभाले रखने हेतु जाग्रत किया था। इसी रूपक को गिजुभाई पर लागू करके देखें तो कितनी आश्चर्यजनक समानता प्रतीत होती है कि वे मात्र बाल-शिक्षक ही नहीं बने रहते थे, अपितु समग्र समाज को बालकों के प्रति शिक्षा को नई दृष्टि से चेतावंत किया था, साथ ही साथ अपने पीछे-पीछे अनगिनत कार्यकर्त्ताओं का कारवां उन्होंने तैयार किया था। यह थी उनकी महत्ता।

गिजुभाई ने सबों से कहा "शिक्षकों तथा माता-पिता द्वारा की गई, बालकों के अधिकारों की लड़ाई चाहे इतिहास में न हुई हो, पर हम तो करेंगे।"

"यह युद्ध हम अपनी संकीर्णता, मताग्रहों, अज्ञान, अपनी गुलामी, अपने भेदभाव तथा नास्तिकता के विरुद्ध छेड़ेंगे।"

इस प्रकार कहते हुए वे आगे-आगे चले और सबों को अपने पीछे-पीछे आने का आदेश दिया। बाल-शिक्षकों तथा बाल हितचिंतकों का कारवां उनके चरण-चिन्हों पर कदम मिलाते चल निकला। ऐसे हैं चैतन्यपुंज गिजुभाई! आपको प्रणाम!

10

गिजुभाई के योगदान का मूल्यांकन

गुजरात की जिन विभूतियों ने अमरता प्राप्ति जैसा काम किया था, उनमें गिजुभाई की गिनती होगी।

—जुगतराम दवे

अब तक के प्रकरणों में हमने गिजुभाई के विविध कार्यों पर दृष्टिपात किया। अब इस अध्याय में देखेंगे कि उनके कार्यों का महत्त्व कितना है।

किसी भी महापुरुष के कार्य का मूल्यांकन करने का दावा हम छोटे लोग कैसे कर सकते हैं! उसके लिए तो आर्ष दृष्टि सम्पन्न कोई महापुरुष ही सक्षम है।

परन्तु आज की दुनिया के वातावरण तथा इसके प्रवाह पर दृष्टिपात करते हैं तो गिजुभाई के कार्यों का मूल्य तथा महत्त्व अपने आप आंखों के सामने उभर आता है। हम इस महत्त्व को यहां देखेंगे।

महान शोध : विश्व-शांति की कुंजी

गुजराती के यशस्वी साहित्यकार मनुभाई पंचोली "दर्शक" से एक विद्यार्थी ने प्रश्न किया—'नये युग में आपकी दृष्टि से सबसे बड़ी शोध कौन सी हुई है?'

दर्शक ने अपनी-अपनी लाक्षणिक शैली में उत्तर दिया—"अणु या परमाणु शक्ति के आविष्कार को मैं बड़ी शोध नहीं मानता। पिछले पचास वर्षों की शोधों में बड़ी से बड़ी शोध मेरी दृष्टि से बाल शिक्षण शास्त्र की है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि मानव जाति को मुक्ति का अनुभव प्राप्त करना है तो उसे बाल-शिक्षण की इस शोध के निकट आना पड़ेगा तभी शान्ति का व्यापक विस्तार होगा। तभी मुक्ति का सच्चा प्रभात होगा। यही है विश्व-शान्ति की महान कुन्जी।"[1]

1. "शांतिना पाया"—मनुभाई पंचोली "दर्शक"

उन्होंने ऐसा क्यों कहा?

हम देखते हैं कि "युद्ध की दुदुंभि बजने के साथ ही असंख्य सैनिक आक्रामक पर टूट पड़ते हैं। वह क्यों? सैनिकों को मार गिराने की स्पर्धा शुरू हो जाती है। जो लोग बच रहते हैं वे कई बार रो पड़ते हैं। वे किस लिए? ग्रीष्म-काल में धरती पर तिनका भी नहीं होता और वर्षा होने के साथ ही वहां हरी-हरी घास उग आती है। वह क्यों! घास के सूक्ष्म बीज वहां की धरती में मौजूद थे। वर्षा होने के साथ ही बीज फूट निकले। आक्रामक वृत्ति के बीज भी ऐसे ही चित्त की धरती में बिखरे हुए थे। अनुकूल अवसर पाते ही वे फूट निकले। संस्कृति, विवेक, मेल-जोल के भाव ऐसे में कुछ काम नहीं आते।"

"बाल शिक्षण तथा बालमानसशास्त्र के अनुसार आक्रामक वृत्ति बालक में पहले से विद्यमान नहीं होती—जिंजीविषा तथा सुरक्षा की वृत्ति अवश्य होती है। पर आक्रामक-वृत्ति तो कुशिक्षा का ही परिणाम है, और सही शिक्षा द्वारा उसे रोका जा सकता है। सही शिक्षा याने सही वक्त पर शिक्षा देना तथा विधिपूर्वक देना।"

गिजुभाई यह बात अच्छी तरह से समझते थे। तभी वे वकालत को त्याग कर शिक्षा में उतरे और शिक्षण में भी विनयमंदिर (हाईस्कूल) का काम त्यागकर बाल शिक्षण का काम संभाला। यही नहीं अपितु अत्यन्त कष्ट उठाकर उन्होंने दीन, हीन, दरिद्र भारत को बाल-शिक्षण की सुव्यवस्थित तथा सांगोपांग पद्धति अर्पित की। कदाचित् इसीलिए श्री किशोरलाल मश्रुवाला ने कहा था: अहिंसक संस्कृति की बुनियाद रखने में इस तरह से गिजुभाई ने बहुत बड़ा योगदान दिया है।"

बाल-शिक्षा का काम वस्तुत: शान्ति-स्थापना का ही कार्य है। "शान्ति स्थापना का कार्य मात्र आईजनहावर, ऋश्चेव अथवा विनोबाजी ही नहीं करते परन्तु रानीपरज (एक आदिम जाति) की झोंपड़ियों के बीच बालवाड़ी चलाने वाली एक ग्रामसेविका भी करती है। वह अपने बालकों के दिलों में आक्रामक वृत्ति को पैदा न होने देने के लिए युक्तिपूर्वक काम करती है। उनका फोटो या नाम समाचार-पत्रों में नहीं छपता, फिर भी उसका काम कम महत्त्व का नहीं। वृक्ष की जड़ें हमेशा अँधेरे में ही छिपी रहती हैं, लेकिन वृक्ष को वे ही पोषण देती हैं और वे ही वृक्ष का आधार होती हैं।"

असमाजिकता का समाधान

बाल शिक्षा-शास्त्र एक और बात बताता है कि "मनुष्य असामाजिक बनेगा या कि सामाजिक, स्नेही बनेगा या क्रोधी, वह अहंकारी बनेगा या विनम्र इसका बहुत बड़ा आधार इस बात पर है कि बचपन में उसे कितना आदर मिला था, उसकी सृजनशीलता को विकास का अवसर मिला था या उसमें रुकावट आई, उसे कितना अपमान और निराशा मिली, तथा उस काल की उसकी आवश्यकता

किस हद तक पूरी हुई थी । इस आयु के अनुभव मात्र इसी आयु तक सीमित नहीं रहते बल्कि आने वाले सभी आयु वर्षों के लिए ही संचित भंडार होता है। आगे चलकर उनमें कोई विशेष वृद्धि नहीं होती । भावनाओं का जो पिंड उस काल में गढ़ा गया था, वृत्ति के जो भाव उस काल में निर्मित हुए थे वे जीवन-पर्यंत रहते हैं । जिस व्यक्ति के ये बुनियादी वर्ष दुख, अपमान, निराशा, विफलता, निष्क्रियता में व्यतीत होते हैं उसका चरित्र आगे चलकर विकसित होना बहुत कठिन हो जाता है । उसके हाथों से सृष्टि में सहकार तथा प्रेम का दान लगभग असम्भव होता है ।'

"बालक को हमारे घर, गलियों अथवा शालाओं में जो अपमान अथवा हताशा का अनुभव होता है उन्हें वे भूल नहीं जाते । हाथ-पांव छोटे होने की वजह से वे चुप रह जाते हैं, लेकिन अपने चित्त की बही में वे समाज के नाम उधार अंकित कर लेते हैं । बड़े होने पर उस खाते को वे खोलते हैं और समाज से जो उन्हें लेना होता है, किसी न किसी विधि से वसूल कर ही लेते हैं । बड़े होने पर वे किसी न किसी को पीड़ा पहुँचाये बगैर रह नहीं सकते ।"

"कर्ण का चित्रण करके वेदव्यास जी ने हमें यही बात बताई है । कर्ण को छुटपन में सबों ने अज्ञातकुलशील कहकर तिरस्कृत किया था, पर कर्ण बलवान था इसलिए सहन करके बैठा नहीं रह गया । उसने दुर्योधन के साथ मिलकर पाण्डवों को सिंहासन पर बैठने नहीं दिया । द्रौपदी के चीरहरण में, छल-छद्मपूर्ण जुए में, सभी जगहों पर उसने साथ दिया । कर्ण बड़ा ही दानवीर था । अपने कवच-कुंडलों को दान में भेंट करते हुए वह ठिठका नहीं । शास्त्रों का भी वह ज्ञाता था, फिर भी उसने यह सब क्यों किया ? बाल्यकाल में मिले अपमान और निराशा का बदला लेने के लिए ही उसने यह कार्य किया था । वह पढ़ना चाहता था अतः छद्म वेश बनाकर परशुराम के पास पढ़ने गया और जब पोल खुल गई तो शापित होना पड़ा । द्रौपदी का वरण करना चाहता था वह, पर भरी सभा में दौपदी ने "सूतपुत्र को नहीं वरूंगी" कहकर उसे अपमानित किया । कृपाचार्य ने राजकुमारों की परीक्षा लेते समय 'तू राजवंश का नहीं । कौन हैं तेरे माता-पिता ?' कहकर उपहास किया था । भीष्म तो उसे कौवा कहते थे । इस प्रकार चारों तरफ से अपमान और निराशा मिलने की वजह से वह अधर्म के पक्ष में गया । आक्रमणकर्त्ताओं का मोहरा बना । वेदव्यासजी ने हजारों वर्षों पहले कवि की दृष्टि से जो-जो बातें कही थीं, उन्हीं बातों को आज के बाल-शिक्षाविद् वैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्त कर रहे हैं ।'[1]

हिटलर के बारे में कहा जाता है कि उसे बचपन में यहूदी बालकों ने बहुत सताया था और परिणामस्वरूप, हम जानते हैं कि यहूदियों का उसने कैसा भयंकर कत्लेआम मचाया था ।

1. "शांतिना पाया"—मनुभाई पंचोली "दर्शक" एवं स्मरणांजलि—नाना भाई भट्ट ।

गिजुभाई ये सब बातें बहुत अच्छी तरह से जानते थे । तभी तो वे बालकों के व्यक्तित्त्व की हत्याओं को देखकर व्याकुल हो उठे थे —"मैं अपने लाखों बालकों के बारे में सोचता हूं । हमारी आंखों के सामने लाखों बच्चों की हत्या होती हो और हम खड़े-खड़े देखते रहें ? इस वक्त तो एक ही काम है । इन बालकों की हत्याएँ रुकें, इसके लिए शंख फूंको और जिन लोगों के कान बहरे हो गए हों उनके लिए ऐसी आवाज उठाओ कि उनके कान फट जाएँ ।"

संहार तथा आक्रामकता का समाधान

"बाल शिक्षा मनोविज्ञान का तीसरा नियम यह है कि संहार वृत्ति का विकल्प सृजनशक्ति है । आक्रामकता का समाधान अंतःकरण की तृप्ति है । जो समाज अपने बालकों के लिए उनकी वय तथा भावनाओं को ध्यान में रखते हुए अपनी शिक्षा-व्यवस्था में सृजनात्मक प्रवृत्तियों का आयोजन करता है, उसे कचहरी, जेल तथा सेना पर कम खर्च करना पड़ता है । इसीलिए प्लेटो ने कहा था कि जो समाज सही शिक्षा के लिए व्यय करता है, उसे सेना पर कम व्यय करने की जरूरत पड़ती है । यह आत्मसंयम जितना निग्रह द्वारा आता है, उससे कहीं ज्यादा आत्मतृप्ति से आता है । जिसे अपने कामों में रस आने लगा है उसे औरों के कामों में दखल देने की अथवा दूसरों की आलोचना करने की फुर्सत ही नहीं मिलती । वह तो फूल पर बैठी मधुमक्खी की तरह रस चूसने में तल्लीन हो जाता है । हममें से अधिकांश लोग भीतर से तृप्त नहीं हैं इसलिए बाहर दौड़-धूप करते रहते हैं । मानो हम हम नहीं, वस्तुएँ हैं—और वस्तुओं का ढेर एक पर एक लादकर बड़ा बनाने का हम झूठा प्रयत्न करते हैं, कारण यह कि भीतर से हमारा मन नितान्त खाली होता है ।"

"बालकों को इस आयु में यदि हम स्वयं-स्फुरित काम करने देंगे तो उनका अंतःतृप्ति का मार्ग खुलेगा, दूसरों को दखल देने अथवा उनसे ईर्ष्या करने, उन्हें नीचे गिरा कर खुद बड़ा बनने का दुर्गुण उनके स्वभाव में नहीं आ पायेगा ! यह जहर क्या हमारे समाज में कम है ? अगर कोई आगे बढ़ता है तो प्रसन्न होने वाले कितने हैं ? ईर्ष्या करने वाले कितने हैं ? क्या ऐसा ईर्षालु समाज समाज कहा जा सकेगा ? अपमान करने वाले तथा ईर्षालु लोग युद्ध की आग फैलाने वालों के लिए सूखी घास की ढेरी बन जाते हैं ।"

यह बात गिजुभाई की नजर से बाहर नहीं थी । इसीलिए तो अपने बाल मन्दिर में उन्होंने अपार धीरज तथा अपूर्व सजगता से स्व-स्फुरित प्रवृत्तियां आयोजित की थीं । गिजुभाई की सहकर्मी श्रीमती नर्मदाबेन रावल द्वारा उल्लखित एक प्रसंग दृष्टांत स्वरूप देखें :

एक बच्चा था । वह बाल मंदिर की तरफ देखे बिना ही उसकी सीढ़ियों पर बैठा रहता था । गिजुभाई उसका अवलोकन करते थे । मुझको यह देखकर बड़ी ही उकताहट होती थी कि यह बालक कुछ भी करता धरता नहीं, तो

इसे काम देना चाहिए। मैंने गिजुभाई से चर्चा की कि उस बच्चे का क्या करें! वे बोले इस मोंटेसरी पद्धति में तो तुम्हें और मुझे धीरज रखना ही पड़ेगा। बस अवलोकन करते रहो।"

"आखिरकार एक दिन वह बच्चा कमरे के भीतर आया। आते ही एकदम चाक और बोर्ड लेकर लिखने लगा। एक ही अक्षर 'भ' 'भ' लिखता रहा।"

उस रोज गिजुभाई की खुशी का ठिकाना नहीं था। उन्होंने बोर्ड फोटोग्राफर के पास भेजकर उसकी फोटो खिंचवाई और मुझसे कहने लगे: आज मोंटेसरी पद्धति की चाबी हाथ लगी है। उस रोज उन्हें इतनी प्रसन्नता हुई कि मानो आत्मदर्शन हुआ हो।"[1]

भव्य अहिंसक क्रांति

"अहमदाबाद की स्थापना हुई थी तब की बात है। बादशाह अहमदशाह नगर के चारों ओर किला बनवाने लगे। चिनाई का काम दिन भर चलता। रात होती और सुबह देखते तो चिनाई टूटी हुई मिलती। कई दिनों तक यह चलता रहा। बादशाह को यह रहस्य समझ में नहीं आया। किसी ने बताया कि माणकनाथ बाबा का स्थान इस किले में आ जाता है। वे ही कोई जादू करते होंगे। वर्तमान माणक चौक के आगे माणकनाथ बाबा का स्थान था। बादशाह उनके पास पहुंचा। चरण-स्पर्श करके किला टूटने का कारण पूछा। माणकनाथ बाबा ने उसे अपना करघा दिखाया जिस पर वे दिन भर चटाई बुनते थे। बादशाह से बोले; 'दिन भर तो मैं इस चटाई को बुनता हूं और रात को वापिस उधेड़ डालता हूं। इसीलिए तेरा किला ढह जाता है।' बादशाह ने उन्हें समझाया। माणक चौक नाम दिया। उसके बाद किला ढहना रुक गया।'

"गिजुभाई ने माता-पिताओं को समझाया कि हम सब माता-पिता माणकनाथ बाबा जैसे हैं। माता-पिता अगर नहीं समझेंगे तो बाल मंदिर का अथवा विद्यालय का काम चलेगा नहीं। हम यह आप लोगों का ही काम कर रहे हैं। रात में यह चटाई उधेड़ने का काम बन्द करो। बालकों के जीवन-चरित्र का यह जो मजबूत और विशाल किला बनाने का काम हमने शुरू किया है उसमें अपना सहयोग प्रदान करो। बालकों को जो व्यवहार बाल मंदिर में मिल रहा है, जो शिक्षण, संस्कार सुविधाएं वहां मिल रही हैं उनसे भिन्न घरों में नहीं मिलनी चाहिए। यह ध्यान रहे। कारण यह है कि बालक अंततः आप लोगों के ही हैं। वे आप लोगों के साथ ज्यादा समय तक रहते हैं।"

यह विचार माता-पिताओं के गले उतारने के लिए उन्होंने कितना प्रयत्न किया था! अभिभावकों की सभायें आमन्त्रित कीं। उनके निमित्त पुस्तकें

1. स्मरणांजलि—नर्मदाबेन रावल।

लिखीं। पत्रिकायें और सामयिक प्रकाशित किये। गोष्ठी-बैठकें करके नूतन बाल-शिक्षण संघ की स्थापना की—विशेषतया गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, राजस्थान, सिंध सभी स्थानों पर जबरदस्त वातावरण निर्मित किया।

गिजुभाई के इस विचार की खास विशेषता यह थी कि उन्होंने माता-पिताओं के स्वाभाविक वात्सल्य को जाग्रत करके यह कार्य किया। एक भी व्यक्ति का खून बहाये बगैर की गई यह एक भव्य क्रांति है। पूरे समाज में अहिंसा की रीति से उन्होंने मूल्य एवं दृष्टि का परिवर्तन पैदा कर दिया।

रिश्वत और घूस का उन्मूलन

बाल मनोविज्ञान ने एक और महत्वपूर्ण बात की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। वह यह कि हमारे समाज में रिश्वत-घूस का जो दुर्गुण चलन में है उसका मूल बाल-शिक्षण के कुसंस्कारों में ही मौजूद है। बालक को एक पीपरमेंट की गोली देकर हम अपने यहां आए मेहमान को नमस्कार करवाते हैं। पैसे देकर उसे कुछ काम करने को भेजते हैं। बेचारा बालक पीपरमेंट की गोली या पैसों के लिए काम करता है और परिणामस्वरूप उसके स्वभाव अथवा मनोभावों का ऐसा निर्माण हो जाता है कि हम उसे पैसा या कुछ और देकर ही काम करवा सकेंगे।

शुरू-शुरू में इस तरफ हमारा ध्यान भी नहीं जाता, लेकिन जब विदेशी दूतावास 500 या 1000 रुपये देकर हमारे कर्मचारियों से विदेश-विभाग की महत्वपूर्ण फाइलें उठा ले जाते हैं, तब जाकर हमारी आंखें खुलती हैं। मुद्रा प्रकरण या अहमदाबाद के लौह कंट्रोल-आफिस जैसे प्रकरण क्या कम होते हैं? और तब हम चिल्लाते हैं कि देशभक्ति का ही आजकल बिल्कुल सत्यानाश हो गया है। स्वाधीन देश की प्रजा के रूप में हम अयोग्य हैं। पर भले आदमी, क्या आज खबर पड़ी है? बोया पेड़ बबूल का तो आम कहां से खाएगा?

बाल मनोविज्ञान ने हमारे समाज के इस भयंकर भ्रष्टाचार के मूल की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। समाज से इस दुर्गुण को उखाड़ फेंकने का एक वैज्ञानिक-मार्ग बताया है।

इसी वजह से गिजुभाई ने अपने बालमन्दिर से तथा अपनी शिक्षण-पद्धति से इनाम और स्पर्धा को निष्कासित कर दिया था। अनेक प्रकार के अनिष्टों से भरी हुई परीक्षा-प्रणाली को रुख्सत कर दिया था, साथ ही पूरे समाज का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था।

स्वाधीनता तथा आत्मरक्षा के संस्कार

एक बार किसी ने गिजुभाई से प्रश्न किया था: 'आपके बालमन्दिर में नवीन पद्धति से पढ़े हुए बालक दुनिया में क्या करेंगे?'

'उन्होंने जवाब दिया: 'वे पराधीन जगत में रहने से इन्कार करेंगे, और

स्वाधीन वातावरण में ही जीयेंगे, अन्यथा मर मिटेंगे।

गिजुभाई के इस कथन की महत्ता को रंचमात्र भी कम नहीं किया जा सका। गाँधीजी ने भी असहयोग तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन के द्वारा जनता को यही बात बताई थी। पराधीन हालतों में जीने से पूरा देश साफ इन्कार कर दे। यह विचार जनता के चरित्र में पैदा करने के लिए ही गिजुभाई ने इसे बाल-शिक्षण में समाहित किया था। मात्र समाहित ही नहीं किया अपितु शिक्षण की एक व्यवस्थित पद्धति तैयार करके देश भर के बाल-मन्दिरों को तदनुसार चलाने का मार्ग-निर्देश दिया। इसका नतीजा कितना भव्य निकलेगा यह तो विश्व-इतिहास का एक प्रसंग पढ़कर ही हम जान सकेंगे।

जापान में कामाचारू नामक एक शिक्षक हुए थे। अपनी लम्बी सेवाओं के दरमियान उन्होंने जापान के बालकों को इतिहास की पढ़ाई कराते-कराते स्वतन्त्रता तथा आत्मरक्षा का पाठ पढ़ाया था।

1905 में रूस ने जापान पर हमला किया। आजादी और आत्मरक्षा की शिक्षा देने वाले कामाचारू गांव-गांव, झोंपड़ी-झोंपड़ी तक गए। अपने सौ पुराने विद्यार्थियों को एकत्रित करके उनके माध्यम से हजारों की सेना खड़ी कर दी। अपने विद्यार्थियों के साथ वे रूसी सेना के विरुद्ध लड़ने गये और विशाल रूसी सेना को अपनी धरती से खदेड़ डाला। कामाचारू की नई शिक्षा का यह प्रभाव एवं परिणाम था। गिजुभाई भी अपने नूतन बाल-शिक्षण के द्वारा देश के युवकों में आजादी और आत्मरक्षा का ऐसा ही रंग चढ़ाने के लिए जीवन-पर्यंत संघर्ष कर रहे थे। अगर उनके काम को हम लोग अंगीकार कर लेंगे तो फिर हमें किसी भी आक्रांता से भयत्रस्त होने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

कदाचित इसी खयाल से गिजुभाई ने बाल क्रीडांगण की योजना बनाई थी। याने देश के करोड़ों बालकों को स्वच्छ बनाओ। मजबूत बनाओ। उन्हें आजादी से खेलने-कूदने दो। उनके बाल्यकाल को सरस और आह्लादपूर्ण रहने दो। स्वतन्त्र और स्व-स्फुरित कार्यक्रमों के द्वारा उन्हें अन्तः तृप्त होने दो। उनकी, सामाजिकता को विकसित होने दो। फिर देखो कि कैसी बनती है भारत की भावी जनता! तब हमारे सामने यह उलझन नहीं रहेगी कि "किसके बाद कौन?"

प्रेम परिप्लावित समाज की क्षमता

हमारे गुजरात के कतिपय वैष्णव भक्त कवियों ने पदों में गाया है कि 'व्रज प्यारा रे वैकुंठ नहीं आऊँ।' परन्तु सामान्य जन-समाज तो इस धरती पर अपने जीवन में इतने सारे कष्ट और परेशानियां भोगते हैं तो त्रस्त हो जाते हैं। वे स्वीकार लेते हैं कि 'मानव जीवन का दैनंदिन चक्र ऐसा ही है, दुख की

प्रधानता है तथा सुख की न्यूनता है। कदाचित् इसीलिए स्वर्ग, वैकुन्ठ, अक्षर-धाम, हेवन आदि की कल्पना संसार के लगभग प्रत्येक धर्म में विद्यमान है। स्वर्ग में हर कोई जाना चाहता है। ऐसी क्या विशेषता है स्वर्ग की? वहां पर आंसू नहीं है।

नूतन बाल-शिक्षण के प्रचलन द्वारा सर्जनात्मक प्रेम से परिपूर्ण एक ऐसा ही समाज धरती पर निर्मित किया जा सकता है। हम पृथ्वी पर ऐसा ही स्वर्ग खड़ा करके जनसाधारण को वैष्णव भक्त कवियों का उत्तम गीत गाने का अवसर प्रदान कर सकते हैं कि 'व्रज प्यारा रे वैकुंठ नहीं आऊं।' गिजुभाई ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति इसी दिशा में खर्च की थी और इस प्रकार जनसाधारण को नई राह दिखाई थी!

शिक्षा की तेजस्विता की कुंजी

गिजुभाई के कार्यों में गहन सूझ (इन्साइट) तथा दूर दृष्टि (फारसाइट) दोनों के दर्शन होते हैं। इन्हीं के कारण इनका कार्य इतना महान बन सका था। इन्हीं के द्वारा वे आने वाले युग को पहचान सके थे।

गहन सूझ तथा दूरदृष्टि का मूल कहां विद्यमान था?

हमेशा कोई भी कार्य अच्छी तरह से तभी सफल होता है कि जब उस कार्य में ज्ञान, भक्ति एवं कार्य का समन्वय हुआ हो। किसी रोगी को हम सेवा-सुश्रुषा द्वारा स्वस्थ करने की कामना करें तो इसमें हमें पूरी तरह से कैसे सफलता मिलेगी? प्रथम तो उस रोगी के प्रति हमारे भीतर भक्ति भाव होना जरूरी है। प्रेम जरूरी है। दूसरा यह ज्ञान होना चाहिए कि रोगी बीमार कैसे पड़ा और कैसे वह भला-चंगा हो सकेगा! और अन्तिम बात यह कि उस ज्ञान के अनुरूप हमारा कर्म हो। इस प्रकार भक्ति, ज्ञान तथा कर्म के संयोग से कार्य परिपूर्ण बनता है।

गिजुभाई के कार्यों में भक्ति, ज्ञान एवं कर्म का सुन्दर त्रिवेणी संगम देखने में आता है। उन्हें अपने कार्यों में जो सफलता तथा पूर्णता मिली थी उसके मूल में यही मुख्य बात विद्यमान थी। बाल-भक्ति के कारण ही उनका जीवन परि-वर्तित हुआ था। वकालत छोड़कर वे बाल-शिक्षण में उतरे थे। व्यापक अध्ययन गहन चिंतन, सूक्ष्म अवलोकन तथा अनेकानिक प्रयोगों के द्वारा उन्होंने अपने कर्मक्षेत्र का व्यवस्थित ज्ञान अर्जित किया था। तदुपरांत वे कर्म में प्रविष्ट हुए थे। बाल-कल्याण के लिए दिन-रात जूझे। Burnt the candle at both the ends. बाल-साहित्य तथा अन्य ग्रंथ रात में ही लिखे थे ना! बिस्तरों वाला उनका अध्यापन मन्दिर सवेरे तक चलता था। भक्ति, ज्ञान और कर्म के उनके सम्मिलन में गहन सूझ तथा दूरदृष्टि दोनों रहते। तभी तो वे बाल-कल्याण का युगांतरकारी कार्य कर सके।

हमारे वर्तमान शिक्षण को तेजोमय बनाने के लिए क्या हम गिजुभाई की

इस जीवनकुंजी का उपयोग करेंगे ?

प्रशंसा

सन् 1964 में भारत सरकार ने दिल्ली में एक बालशिक्षण कार्यशाला आयोजित की थी। देश के सभी प्रदेशों से बाल-शिक्षण-कार्यकर्त्ता वहाँ एकत्रित हुए थे। जर्मनी की एक बाल शिक्षाविद् महिला ने कार्यशाला का संचालन किया था। उन्होंने बाल-कहानियाँ तथा बाल-क्रीड़ाओं के सम्बन्ध में सभी संभागियों से बातचीत की थी। गिजुभाई द्वारा रचित "वार्तानुं शास्त्र" पुस्तक से वहाँ एक भी बिन्दु नया नहीं उभरा था। बल्कि उल्टे उन्होंने भावनगर के प्रतिनिधि से कहा कि 'You are the pioneers in this matter. We have nothing to teach you (आप लोग तो इस दिशा में अग्रणी हैं। हम आपको कुछ भी नहीं सिखा सकेंगे।) और तब उन्होंने भावनगर आकर गिजुभाई के विचारों तथा उनकी शिक्षण-पद्धति के अनुसार संचालित बालमन्दिर की गतिविधियों को जानने-समझने की इच्छा व्यक्त की। आज 40-50 वर्ष पहले उभरे गिजुभाई के विचारों से यूरोप के शिक्षाविद इधर विमोहित होने लगे हैं। उन लोगों की रुचि बढ़ने लगी है। निश्चय ही देशवासियों का भी ध्यान हमारे इस एकमात्र बालशिक्षाविद् के कर्तृत्व की ओर जाएगा। पर अभी वह क्षण आया नहीं है।

गुजरात और भारत के निर्माता

दक्षिण अफ्रीका के दारेसलाम में आयोजित एक बाल शिक्षा सम्मेलन में हमारे प्रख्यात साहित्यकार श्री मनुभाई पंचोली 'दर्शक' ने गिजुभाई को जो श्रद्धांजली अर्पित की थी उसके कतिपय शब्दों द्वारा इस अध्याय को समाप्त करें :

'''''आज मुझको सबसे ज्यादा स्मरण आ रहे हैं गिजुभाई। हम सबसे पहले उनको प्रणाम करें। गुजरात संतों-सेवकों की जन्म-भूमि है। लेकिन वर्तमान गुजरात के निर्माण में मेरे विनम्र मत से चार महापुरुषों का योगदान रहा है : महात्मा गांधी, सरदार बल्लभभाई पटेल, गिजुभाई तथा मेघाणीभाई। अगर गुजरात के लोगों से पूछा जाय तो वे भी यही कहेंगे कि विगत पच्चीस वर्षों में उन लोगों पर इन्हीं व्यक्तियों का प्रभाव पड़ा है।'

"गिजुभाई को उनके जीवन में बहुत सफलताएँ और सम्मान मिला था। विद्यार्थियों का प्रेम जितना उन्हें मिला, शायद ही किसी और के भाग्य में रहा होगा। लेकिन उनके कार्य की सफलता का प्रतिशत ज्ञात करें तो ज्ञात होगा कि उनके देहावसान के पश्चात् वह बहुत बढ़ा है।"

'गुजरात की किसी भी शाला में आज सजा नहीं दी जा सकती। वहाँ शिक्षा के क्षेत्र में बाल-शिक्षा—बालवाड़ी ने अपना स्थान निश्चित कर लिया है। बाल-साहित्य के सृजन हेतु सरकार प्रतिवर्ष अनेक प्रयत्न करती है।

बाल-क्रीड़ांगण स्थापना करना पंचायत समितियों के दायित्व क्षेत्र में गिना जाता है। सौराष्ट्र के छोटे-छोटे गांवों में अब बाल-क्रीड़ांगण खुलने लगे हैं। हमारे यहां एक कहावत है कि "जिंदा हाथी लाख का मरे पीछे सवा लाख का" यह कथन गिजुभाई के कार्यों और विचारों पर इस रूप में घटित होता है कि कोई भी विचार उसके प्रवर्तक के साथ ही मरता नहीं, बल्कि प्रवर्तक के देहावसान के पश्चात् वह प्रवर्तक देहरहित होते हुए भी सदेह की अपेक्षा कहीं अधिक कार्य करता है। देह की तुलना में आत्मा के बल का इससे बड़ा और क्या प्रमाण हो सकेगा ?"

"हम सब मिलकर उनका स्मरण करें, उन्हें प्रणाम करें, उनके अधूरे कामों को पूरा करने हेतु कटिबद्ध बनें।"

श्रद्धांजलियाँ

गिजुभाई के बारे में लिखने वाला मैं कौन? उनके उत्साह और उनके विश्वास ने मुझे हमेशा ही विमोहित किया था। उनका काम आगे बढ़ेगा।

—बापू

I never knew him. I wish I had, for he was a great lover of the child. No obstacle stopped him in his endeavour to bring them freedom and happiness. I admire all those who strive for the child along my lives : and if one has done so to the detriment of his interest, to the sacrifice of his life, the one is worthy of being remembered. May he live long in the hearts of the "Soldiars of child."

—Maria Montessori

मेरी उनसे जान-पहचान नहीं थी। हुई होती तो बहुत अच्छा होता। क्योंकि वे बाल-प्रेमी थे। बालकों को स्वतन्त्रता और सुख मिले इसके लिए कोई भी बाधा उन्हें रोक नहीं सकी। अपनी ओर से बालकों के लिए प्रयत्न करने वाले सभी लोगों की मैं प्रशंसक हूं। उन्होंने अपने निजी स्वार्थ को त्याग कर, अपने प्राणों को निछावर करने का जो प्रयत्न किया है, वह तो सदैव चिरस्मरणीय रहेगा। बालकों के हित की भावना जिन लोगों के भी हृदय में है, उन सभी हृदयों में उनका चिरजीवी स्थान रहे।

—मेरिया मोंटेसरी

गांधीजी ने जिस बात पर अपने आश्रम में अहिंसा की दृष्टि से सर्वाधिक बल दिया था, उसे गिजुभाई ने माता-पिता तथा शिक्षक के स्वाभाविक वात्सल्य भाव से जाग्रत किया, शिक्षा-शास्त्र के सिद्धान्तों से प्रमाणित किया, तथा बालमन्दिर की कला से सज्जित करके लोकप्रिय बनाया। अहिंसक संस्कृति की आधारशिला रखने में गिजुभाई ने इस रूप में बहुत बड़ा योगदान दिया है।

—किशोरलाल मशरूवाला

जिस युग में गिजुभाई और ताराबेन ने जो काम किया था वह किसी भी समाज के लिए गर्व की चीज है। बालकों के उद्धारकर्त्ता गिजुभाई ने अनगिनत माता-पिताओं को बाल-स्वातंत्र्य, बाल-भक्ति तथा बाल-उपासना की दीक्षा दी थी। गुजरात को बाल-भक्ति का पागलपन लगाने वाले इन दोनों मिशनरियों ने मध्यमवर्ग का सारा स्वरूप ही बदल डाला और पूरे गुजरात में असंख्य बालमन्दिर अंकुरित-पल्लवित कर डाले।

—काका साहब कालेलकर

उन्होंने बाल-शिक्षण को हाथ में लिया था तब तक थोड़े से शिक्षाविदों को छोड़कर इस मुद्दे पर कोई भी विचार नहीं कर रहा था, और इस विषय में उनके प्रवेश करने के बाद तो गुजरात का लगभग प्रत्येक विचारशील व्यक्ति विचार करने लग गया, इस सफलता के पीछे गिजुभाई का अथाह और अगाध परिश्रम विद्यमान है।

—रामनारायण वि० पाठक

मेरा हिस्सा तो इस संस्था के बाहरी शरीर की रचना तक रहा है। इस संस्था की सूक्ष्म देह के निर्माण में सबसे बड़ा योगदान गिजुभाई का रहा है, यह बात स्मरण रखिए।

—नानाभाई भट्ट

उन्होंने मुझे जीवन हेतु प्रदान किया, मुझे ऐसा जीवन-कर्म दिया कि जो निरन्तर मेरे साथ रहा है।

—ताराबेन मोडक

राजनीति के क्षेत्र में पूज्य महात्मा के जितना ही भारत की बाल-शिक्षा के क्षेत्र में स्व० गिजुभाई ने एक ऐसा अनोखा और सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया है, ऐसा कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

—सूरजीभाई वल्लभदास

उनका पत्र-व्यवहार, उनका साहित्य-सृजन, उनका अध्यापन-कर्म और उनकी अन्य सभी प्रवृत्तियां तमाम उनके लिए एक प्रकार की साधना थी। अपनी आत्मा की उन्नति तथा आत्म ज्ञान इसी साधना द्वारा वे सिद्ध कर सकेंगे, ऐसा अखंड विश्वास था उन्हें। इसी विश्वास ने उनकी साधना को सफल बनाया था। सम्पूर्ण गुजरात को एक सच्चे साधक का अनुकरणीय जीवन उन्होंने भेंट किया।

—हरभाई त्रिवेदी

गुजरात में अपने कार्यों के द्वारा अमरता प्राप्त करने वाले महापुरुषों में गिजुभाई का नाम गिना जायेगा।

—जुगतराम दवे

Stick to your guns—यह उनका आदेश था। सौंपे गए और स्वीकारे गए काम में दृढ़तापूर्वक जुटे रहना, यह उनका सूत्र था। इस प्रकार की भावना जो-जो भाई-बहन उनके सम्पर्क साहचर्य में आये थे, उन सबों को उन्होंने प्रदान करके प्राणवान बनाया था।

उनके जैसा कर्त्तव्यपरायण बनना ही उनके लिए श्रेष्ठ अंजलि होगी।

—गोपाल राव विद्वांस

अपने तपःपूत जीवन के अंतिम क्षण तक वे देश के नौनिहालों की ही चिंता करते रहे। उनका लिखा हुआ ढेरों बाल-साहित्य, उनकी लिखी हुई बाल-शिक्षा

सम्बन्धी दसों पुस्तकें और उनके द्वारा सम्पादित गुजराती, मराठी, हिन्दी-शिक्षण पत्रिका इस क्षेत्र की साहित्यनिधि के अनमोल रत्न सिद्ध हुए हैं, और होते रहेंगे।

—काशिनाथ त्रिवेदी

गिजुभाई के द्वारा लिखी हुई बाल-साहित्य की पुस्तकें बेजोड़ हैं। बालक उन्हें पढ़ते-पढ़ते थकते ही नहीं। जो कुछ पढ़ते हैं उससे शिक्षाप्रद बातें ग्रहण करते हैं। साथ ही साथ हँसते भी जाते हैं और मनोविनोद करते हैं।

ऐसे दूसरे गिजुभाई गुजरात और काठियावाड़ को मिलेंगे तब तक दशाब्दियों की दशाब्दियाँ बीत जायेंगी।

—कृष्णलाल मोहनलाल झवेरी

मेरे लिए तो गिजुभाई का जीवन एक आदर्श जीवन था। उनके परिचय क्षेत्र में जैसे-जैसे मैं आता गया वैसे-वैसे उनके प्रति मेरी भक्ति बढ़ती गई। जब-जब भी मुझे उनके साथ रहने का सौभाग्य मिला था तभी-तभी मैंने अपनी आत्मा में परम शान्ति का अनुभव किया था।

—बेरिस्टर पोपटलाल चूड़गर

बाल-शिक्षण उनका खास कार्यक्षेत्र था। इसके बावजूद उनकी दृष्टि सर्वग्राही थी उनका प्रेमपूर्ण तथा विनोदी स्वभाव हर किसी को बोलने को विवश कर देता था। बालमन्दिर में उनके साथ घूमना, नये-नये प्रयोगों और अनुभवों की बातें सुनना क्षण भर के लिए सब तरह से सांसारिक झंझटों और मायाजाल से विस्मृत होना था।

—परमानन्द कापड़िया

(बम्बई राज्य के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री माननीय बाला साहब खेर द्वारा गिजुभाई के देहावसान पश्चात् बम्बई से प्रसारित भाषण)

किसी भी स्थान के नागरिकों का भविष्य उनके बालकों पर टिका होता है। हर कोई आज नई दुनिया की बातें करता है, नयी दुनिया के निर्माण की बातें करता है, बावजूद इसके दुनिया में झगड़े होते हैं। सारी की सारी दुनिया युद्ध में ग्रस्त हो गयी है। किसी को पता नहीं कि दुनिया के लिए अभी क्या-क्या संकट-वेदनाएं शेष हैं। व्यक्तिगत अथवा सामुदायिक द्वेष से ही विश्व के तमाम झगड़े जन्म लेते हैं। लोगों को विश्वप्रेम का पाठ पढ़ाने की आवश्यकता है, पर जड़ों को दर-किनार करके पत्तों को पानी पिलाने का मतलब तो मूर्खता ही है ना! वस्तुत: दुनिया के विकास की तथा सुख की कुञ्जी बालक के हृदय में संगोपित रहती है।

बालक का विकास करो, उसकी आत्मा को उन्नत बनाओ तभी सुखी दुनिया का निर्माण होगा। बालक के सच्चे विकास को छोड़कर शिक्षा का मर्म अन्य कुछ भी नहीं। इस मर्म की साधना के निमित्त बालक की शिक्षा तथा

उसके मनोविनोद की बुनियाद इस प्रकार से स्थापित की जानी चाहिए कि जिससे बालकों की नैसर्गिक बुद्धि का भली प्रकार से पोषण हो सके।

बाल-शिक्षा के सही सिद्धान्त बनाये जाने चाहिए, साथ ही बालकों के माता-पिता को भी उनकी जानकारी बहुत ही अच्छी तरह से दी जानी चाहिए।

बालकों को सच्ची शिक्षा प्रदान करने का प्रथम चरण माता-पिता की सच्ची शिक्षा द्वारा उठाया जाना चाहिए, साथ ही ऐसे शिक्षकों को तैयार किया जाना चाहिए जो खेल ही खेल में बालकों को ज्ञान प्रदान करते हों। सच्चे शिक्षकों के अभाव में किसी भी शिक्षण-संस्था का वास्तविक विकास सम्भव नहीं।

बालकों के कोमल तथा विकासमान हृदय में जो बहुविध भावनाएं उछलती रहती हैं, उन्हें यथोचित वेग प्रदान करने का सद्गुण जिन लोगों में नहीं होता, वे लोग सच्चे शिक्षक नहीं होते।

गिजुभाई बालकों के परम चाहक थे। वे कहते थे: "प्रतिक्षण छोटे बालकों में विराजमान विशाल आत्मा के मैं दर्शन करता हूँ। यह दर्शन मुझमें यह प्रेरणा जगा रहा है कि बालकों के अधिकारों की स्थापना के लिए ही मैं जीता रहूँ तथा यही काम करते-करते मर मिटूं।"

इसी प्रेरणा के परिणामस्वरूप गिजुभाई ने बाल-शिक्षा की फकीरी धारण की थी। बालकों के जीवन का उन्होंने अध्ययन किया था। भावनगर के बाल मन्दिर में उन्होंने अनेक प्रयोग किये थे। बालकों को उत्साहित करने वाली कहानियां उन्होंने तैयार कीं, नाटक लिखे, कहावतें लिखीं और गीत भी लिखे।

"शिक्षण पत्रिका" नामक अपने मासिक के द्वारा गिजुभाई ने शिक्षा संबंधी वास्तविक ज्ञान फैलाने की व्यवस्था की।

शिक्षकों के प्रशिक्षण विद्यालय चलाकर गिजुभाई ने लगभग पाँच सौ अध्यापक तैयार किए थे। इन अध्यापकों को उन्होंने नूतन शिक्षा-दृष्टि का दान दिया था यही। नहीं, उन्होंने शिक्षक-समाज को नयी प्रतिष्ठा दिलाने का प्रबन्ध किया था। शिक्षक के कार्य को बेगार की स्थिति से निकाल कर उन्होंने इस व्यवस्था को उन्नत किया। पूरे देश पर, विशेषतया कच्छ, काठियावाड़, तथा गुजरात पर गिजुभाई ने बहुत-बहुत उपकार किया है।

ऐसे व्यक्ति की स्मृति को स्थायी बनाने के लिए स्वाभाविक रीति से ही इच्छा जाग्रत हुई है। स्मारक के रूप में बाल-शिक्षण का एक सुन्दर केन्द्र स्थापित करने के लिए एक प्रबन्ध समिति का गठन हुआ है।

गिजुभाई महान शिक्षाविद् थे। काश, गुजरात उनके आदर्श को मूर्तिमान करे और इस तरह बाल-शिक्षण सम्बन्धी गिजुभाई के सपनों को साकार कर दिखाए।

परिशिष्ट

जीवन रेखा

1885	15 नवम्बर, जन्म स्थान—चित्तल, सौराष्ट्र
1897	प्रथम विवाह स्व० हरीबेन के साथ
1906	द्वितीय विवाह श्रीमती जड़ीबेन के साथ
1907	पूर्वी अफ्रीका प्रस्थान
1909	स्वदेश आगमन
1910	बम्बई में कानून की पढ़ाई
1913	हाईकोर्ट प्लीडर : वढ़वाण केम्प
1913	श्री नरेन्द्रभाई का जन्म
1915	श्री दक्षिणामूर्ति भवन के कानूनी सलाहकार
1916	श्री दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन से जुड़े
1920	बाल-मन्दिर की स्थापना
1922	टेकड़ी ऊपर के बाल मन्दिर का उद्‌घाटन पूज्य कस्तूरबा के कर कमलों से
1925	प्रथम मोंटेसरी सम्मेलन, भावनगर
1925	प्रथम अध्यापन मन्दिर
1928	द्वितीय मोंटेसरी सम्मेलन, अहमदाबाद : अध्यक्ष गिजुभाई
1930	सत्याग्रह संग्राम में : शरणार्थी शिविरों में निवास; वानर-परिषद् सूरत; अक्षरज्ञान योजना
1936	श्री दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी भवन से मुक्त हुए
1936	कराची बाल मेले के अध्यक्ष : कच्छ का प्रवास
1937	सम्मान थैली भेंट की गई
1938	गुजरात का प्रवास, राजकोट में अन्तिम अध्यापन मन्दिर शुरू किया
1939	अवसान : बम्बई, 23 जून

गिजुभाई द्वारा सृजित साहित्य

शिक्षा शास्त्र

1. मोंटेसरी पद्धति
2. वार्तानु शास्त्र भाग 1-2
3. बालशिक्षण मने समझायुं तेम
4. प्राथमिक शाळामां भाषाशिक्षण
5. प्राथमिक शाळामां शिक्षण पद्धतिओ
6. प्राथमिक शाळामां चित्रो वाचन
7. प्राथमिक शाळामां शिक्षक
8. प्राथमिक शाळामां कलाकारीगरीनुं शिक्षण भाग 1-2
9. दिवास्वप्न
10. हालतां चालतां
11. मा-बापोने
12. आ ते शी माथाफोड़ी ?
13. मा-बाप थवुं आकरूं छे
14. शिक्षक हो तो
15. मा-बापोना प्रश्नो

शिक्षण

1. स्वतन्त्र बालशिक्षण
2. नवा आचारो
3. वार्ता कहेनारने
4. बाल क्रीडांगणो
5. बाल वार्ताओनो विनोद
6. बाळकोनी अपूर्णताओ अने तेना उपायो
7. शहेरमां मोंटेसरी पद्धति
8. वाचनमाळानां केटलाअेक सिद्धांतो
9. शास्त्रीय दृष्टि
10. घरमां बाळके शुं करवुं ?
11. मोंटेसरी प्रचारमाळा
12. वसंत बालशिक्षण प्रचारमाळा भाग 1-2

चिंतन

1. प्रासंगिक मनन
2. शांत पळोमां

अक्षरज्ञान योजना

1. केम शीखववुं
2. चालो वांचीअे
3. आगळ वांचो पहेली चोपड़ी
4. आगळ वांचो बीजी चोपड़ी
5. आगळ वांचो त्रीजी चोपड़ी

किशोर साहित्य

1. किशोर कथाओ भाग 1-2
2. धर्मात्माओनां चरित्रो
3. भगवान बुद्ध
4. रखडुं टोळी
5. कैलास मानसरोवर दर्शन

बाल साहित्य माला

[वर्तमान में ये 80 पुस्तकें नये रूप रंग में निम्नानुसार 10 ग्रंथमाला में मैसर्स आर. आर. शेठनी कंपनी, गांधी मार्ग, अहमदाबाद की तरफ से

प्रकाशित हुई है। गिजुभाई का समग्र साहित्य इसी प्रकाशक द्वारा प्रकाशित एवं उपलब्ध है]

बालो प्रवासे ग्रंथ माळा

1. बाल प्रवासो
2. गुजरात-महाराष्ट्र
3. दादा दर्शने
4. गिरि शिखरो
5. अफ्रिका सांभयु
6. फरवा जइये
7. रोजनीशी
8. खळावाड़ अने—

जीवन परिचय ग्रंथमाळा

1. शेरीमां
2. बाल शाळामां
3. कुदरत मां
4. कबाट
5. आंगणामां
6. भों भों भों
7. टपालनी पेटी
8. घरमां

हास्य विनोद ग्रंथमाळा

1. विनोद टूचका
2. गपगोळा
3. जरा हसो
4. रामजीभाई पड़ी गया
5. बाळकोनो बीरबल—1
6. बाळकोनो बीरबल—2
7. गधेड़ु ने घोड़ु
8. पेट भरीने हसो

पशु पक्षी ग्रंथमाळा

1. गधेडु
2. चीड़ियाखानु
3. महासभाओ
4. मंगेशनो पोपट
5. मारी गाय
6. मोतियो
7. मारा गोठिया
8. क्यांथी आव्यां ?

पाठ पोथी ग्रंथमाळा

1. नाना पाठो
2. मोटा पाठो
3. जुगतरामना पाठो
4. कमळाबेन ना पाठो
5. शब्द पोथी
6. वाक्य पोथी
7. चिट्ठी पोथी
8. व्याकरण पोथी

ज्ञानवर्धक ग्रंथमाळा

1. पूछूं ?
2. सवारथी माँडीने
3. बाळकोना लेखो
4. कहेवतोनां मूळ
5. आपणे पोते
6. अमे केम ?
7. साजा रहीओ
8. नानी वातो

गातो ग्रंथमाळा

1. जोड़कणां
2. काव्य संग्रह
3. काळा हाथ काळी दाढ़
4. दूहा ने सोरठा
5. वरत संग्रह
6. कहेवत संग्रह
7. रमत जोड़कणां
8. ऊभु हतु ऊभु हतु

कथा नाट्य ग्रंथमाळा

1. बाळ नाटको—1
2. बाळ नाटको—2
3. बुद्ध चरित्र
4. गोपीचन्द
5. छेल्लो पाठ
6. संपादकोनु कथन
7. हरिश्चन्द्र
8. छेटां रेजो, माँ-बाप

रम्य कथा ग्रंथमाळा

1. गणपति बापा
2. भीरू अने
3. शिवाजी महाराज
4. चेलैयो
5. रूपसिंह अने रामसिंह
6. तीरंदाज
7. मकनो ने राक्षस
8. हंस अने हंसा

अवलोकन ग्रंथमाळा

1. छाणाँ थापी आव्यां
2. ओतराती दीवालो—1
3. ओतराती दीवालो—2
4. गाम मां
5. मामाजी जाळ्य
6. वाड़ा मां
7. घोबीड़ो धूजे छे
8. गामडामां मळजो

बाल कहानी भाग 1 से 10

[वर्तमान में ये बाल कथाएं अधिकाधिक चित्रों से सज्जित तथा आकर्षक आवरण में उचित क्रम से संजोकर दस भागों में प्रकाशित हुई हैं, प्रकाशक हैं—मैसर्स आर० आर० शेठनी कंपनी, गांधी रोड, अहमदाबाद 380 001]

बाल साहित्य गुच्छ

1. लाल अने हीरा
2. भेंशना शींगडामां
3. गामडामां गयो हतो
4. आंबो रोप्यो
5. विलायती वातो
6. टूचकाओ
7. बे बाळ नाटको
8. दादाजीनी तलवार
9. तक् तक् तक् तर्र्र्
10. वेठनो वारो
11. नवां वरतो
12. वसंत आवी
13. तिळ दया गुण दया
14. हेमुभाईना पाठो
15. जीवजंतु
16. ठेकंठेका
17. टेक
18. मेंडियो
19. ताराबेनना पाठो
20. माजीओ कहेली
21. बोबु ने आंख ठरी
22. सटर पटर वातो

23. त्रेवीशमुं पुष्प
24. चतुर करोळियो
25. पंचामृत

बाल सहित्य वाटिका मंडल पहला

1. आश्रम वृक्षो
2. जाणवुं जोइअे
3. टपाळमां
4. प्रवास वार्ता
5. शब्द चित्रो
6. महमद सेल अने
7. वन वृक्षो
8. फूदां ने पतंगियां
9. बुधाकाका
10. भूतेर गल्प
11. गधेडानां पराक्रमो
12. आपणी लोक कथाओ
13. टेकरोनी वनस्पति
14. छ मूर्खाओ
15. तारा अने ग्रहो
16. ऋतुना रंगो
17. गिरीश भाईनी वार्ताओ—1
18. विज्ञानना दृष्टाओ—1
19. बाळ जोड़कणां
20. विज्ञाननी रमतो
21. परीनी वींटी
22. बंगालनी लोक कथाओ
23 विज्ञानना दृष्टाओ—2
24. उदयपुर-मेवाड़
25. गिरीश भाईनी वार्ताओ—2
26. सोमाभाईना काव्यो
27. सुशीलाने पत्रो
28. कुदरत कथाओ

बाल साहित्य वाटिका मंडल दूसरा

1. मूछाळी मां
2. भां वाल भां—1
3. शैरलौक होम्सनी वातो
4. भां वाल भां—2
5. सारोद्धार
6. लौक कथाओ
7. अमन गुलाब
8. सुमल पदमणी
9. लाल मंडळ
10. ड्हापणनी वातो
11. मंगळनी सफरे
12. तुरंगाने पेले पार
13. मून फलीट
14. विविध माहिती संग्रह

अन्य बाल साहित्य

1. चालणगाड़ी नानी
2. चालणगाड़ी मोटी
3. मोटी बेन
4. नवी ईसपनीति
5. ईसपनां पात्रो—गधेड़ां
6. कलमनी पींछी थी
7. भेरू
8. सुंदर भेट
9. आंवावाडियुं
10. सुंदर वातो
11. खारेक टोपरां
12. हजीय मने सांभरे छे
13. फूलोनी सुगन्ध
14. आफ्रिकानी सफर
15. गिजुभाई ना पाठो 1-2
16. आपणे पापे

17. बाळ लोकगीत संग्रह भाग 1-2

इनके अलावा

जंगल सम्राट टारजननी अद्भुत कथाओ भाग 1 थी 10

संदर्भ ग्रंथ

1. स्मरणांजलि — संपादक : नानभाई भट्ट तथा ताराबेन मोडक
2. बाल शिक्षण प्रणेता गिजुभाई — रा॰ ना॰ पाठक
3. केळवणीना पाया — किशोरलाल मशरूवाला
4. केळवणीनी पगदंडी — नाना भाई भट्ट
5. घड़तर अने चणतर — नाना भाई भट्ट
6. घर मां बालमंदिर — मूळशंकर भाई भट्ट
7. बापूनी झांखी — काका साहेब कालेलकर
8. बालवाड़ी — जुगतराम दवे
9. मूछाळी मां — गिरीश भाई भट्ट
10. मूंझवत् बालक — अनु॰ हरभाई त्रिवेदी
11. मोंटेसरी प्रवेशिका — अनु॰ ताराबेन मोडक
12. मशाली — घरशाळा प्रकाशन
13. शांतिना पाया — मनुभाई पंचोली "दर्शक"
14. महात्मा गांधी नी केळवणीनी फिलसूफी — म॰शि॰ पटेल
15. गिजुभाई अने तेना साथीदारो नुं बाल साहित्य तथा किशोर साहित्य
16. गिजुभाई नुं शिक्षण साहित्य तथा मा-बापो माटेनुं साहित्य
17. "शिक्षण पत्रिका" ना जूना अंको
18. "श्री दक्षिणामूर्ति" त्रिमासिकना जूना अंको
19. श्री दक्षिणामूर्ति अहेवाल 1933-34
20. सौराष्ट्रना बालमंदिरोनी ऐतिहासिक अने शैक्षणिक तपास—दमुबेन ज. मोदी (एम. एड. शोध निबन्ध, गुजरात विश्वविद्यालय 1962)
21. Montessori Method — Maria Montessori
22. Advanced Montessori Method Part I — ,, ,,
23. ,, ,, ,, Part II — ,, ,,
24. Absorbant Mind — ,, ,,
25. Secret of Childhood — ,, ,,
26. Problem Child — ,, ,,
27. Problem Teacher — A. S. Neill
28. Problem Family — ,, ,,

29. Free Child ,, ,,
30. That Dreadful School ,, ,,
31. Summerhill ,, ,,
32. A History of Education in India Nurullah & Naik

बालमन्दिरों की सूची, जिनसे सम्पर्क-साक्षात्कार लिया गया

1.	श्री दक्षिणामूर्ति बाल मन्दिर, भावनगर	8 दिन
2.	श्री घरशाळा बाल मन्दिर, भावनगर	7 दिन
3.	श्री फळिया बालवाड़ी मढ़ी, जिला सूरत	2 दिन
4.	श्री वड़वा विद्याभवन बाल मन्दिर, भावनगर	1 दिन
5.	श्री श्रेयस बालमन्दिर, अहमदाबाद	1 दिन
6.	श्री खाड़िया बालमन्दिर, रायपुर-अहमदाबाद	1 दिन

विशिष्ट व्यक्तियों की सूची जिनसे सम्पर्क किया गया

क्रम	नाम	कितने दिन सम्पर्क किया	गिजुभाई के साथ उनका संबंध	परिचय
1.	श्री हरभाई त्रिवेदी	5 दिन	आजीवन मित्र तथा सहकर्मी	जाने-माने शिक्षाविद
2.	श्री जुगतराम दवे	5 दिन	मित्र	सुविख्यात गांधीवादी शिक्षाविद्
3.	श्री गोपालराव विद्वांस	1 दिन	मित्र, सहकर्मी	सुविज्ञ साहित्यकार
4.	श्री गिरीशभाई भट्ट	4 दिन	मित्र, सहकर्मी	सुविज्ञ साहित्यकार
5.	श्री माधवजीभाई पटेल	1 दिन	मित्र, सहकर्मी	साहित्यकार
6.	श्री मनुभाई मो० भट्ट	4 दिन	सहकर्मी (बालमंदिर)	सरकारी शिक्षक
7.	श्रीमती नर्मदाबेन रावल	2 दिन	सहकर्मी (बालमंदिर)	संचालिका बालगृह
8.	श्री चंदुभाई व. भट्ट	3 दिन	शिष्य(अध्यापन मंदिर)	प्रसिद्ध शिक्षाविद
9.	श्री मूलशंकर मो० भट्ट	1 दिन	शिष्य-अभ्यासी	प्रसिद्ध गांधीवादी शिक्षाविद्
10.	श्री वजुभाई दवे	1 दिन	शिष्य (गोदडां अध्यापन मंदिर)	संचालक शारदा मंदिर अहमदाबाद
11.	श्री परमानंदभाई कापड़िया	1 दिन	मित्र	जाने-माने राजकीय सामाजिक कार्यकर्त्ता
12.	श्री पुरुषोत्तमभाई पटेल	जब तब	प्रशंसक	आचार्य, हिन्दी शिक्षक महाविद्यालय अहमदाबाद
13.	श्री दिनकरराय बा. त्रिवेदी	जब तब	शिष्य (बालमंदिर)	रिसर्च आफीसर बगीचा मिल, अहमदाबाद
14.	श्री नरेन्द्रभाई बधेका	9 दिन	पुत्र, बाल शिक्षाविद्	संचालक दक्षिणामूर्ति अध्यापन-मंदिर, भावनगर
15.	श्रीमती विमुबेन बधेका	9 दिन	पुत्रवधु, बाल शिक्षिका	संचालक दक्षिणामूर्ति बालमंदिर भावनगर
16.	श्री प्रेमशंकर पु० पाठक	जब तब	प्रशंसक	सरकारी प्रा. शिक्षक
17.	श्री शेषराव नामले	पत्र-व्यवहार	शिष्य (अध्यापन मंदिर)	संचालक शिशुविहार, दादर
18.	श्री मती ताराबेन मोडक	पत्राचार	सहकर्मी	विख्यात बाल-शिक्षाविद्
19.	श्रीमती इन्दुबेन ह० त्रिवेदी	1 दिन	शिष्या	अध्यापिका घरशाळा बाल अध्यापन मंदिर भावनगर
20.	श्री ए. एस. नील	पत्र-व्यवहार	पुरोगामी	विश्व विख्यात शिक्षाविद्
21.	श्रीमती दमयंती बेन मोदी	जब तब	प्रशंसक, अभ्यासी	अध्यापिका घरशाला अध्यापन मंदिर भावनगर
22.	श्रीमती मणिबेन पटेल	1 दिन	शिष्या	संचालिका, केलिको मिल बालमंदिर, अहमदाबाद

गिजुभाई द्वारा पठित पुस्तकों की सूची

यह परिशिष्ट कुछ भिन्न प्रकार का लगेगा, लेकिन इसके द्वारा गिजुभाई के व्यक्तित्व का एक पक्ष उजागर होता है, इसलिए मैंने यह परिश्रम करना जरूरी समझा है।

गिजुभाई के विचार क्रान्तिकारी बने और यह क्रांतिकारिता उनमें जीवन-पर्यंत बनी रही थी। दिनोंदिन उनके विचार अधिकाधिक परिपक्व तथा आर्ष-दृष्टि सम्पन्न बनाते गए थे। इस विशेषता के मूल में उनकी अद्भुत आत्म-सूझ, अपनी निजी विचार-पद्धति, सूक्ष्म अवलोकन युक्त प्रत्यक्ष प्रयोग तो थे ही, विशद अध्ययन और खुला दिल-दिमाग भी थे।

उनका अध्ययन बहुत व्यापक था। जिस किसी भी विषय में वे प्रवृत्त होते थे, उसकी यथासम्भव सांगोपांग जानकारी एकत्रित करते थे, और तब उस पर अपना मौलिक चिंतन करते, प्रयोग करते, और उन्हें अपना रास्ता मिल जाता।

जितना विशाल उनका अध्ययन था, उतनी ही उसमें विविधता भी थी। शिक्षाशास्त्र, मनोविज्ञान, कहानी धर्म—ये उनके स्वाध्याय के मुख्य विषय थे। अध्यापक श्री रविशंकर म. जोशी, प्राध्यापक श्री जे. बी. दवे, तथा प्रख्यात शिक्षाविद् श्री हरभाई त्रिवेदी से मैंने बातचीत करते समय गिजुभाई के अध्ययन की विशद जानकारी प्राप्त की थी।

सभी पुस्तकों की सूची तो यहां सम्भव नहीं, मात्र एक संक्षिप्त झांकी दिखाने के लिए यहाँ उनके द्वारा पठित कतिपय पुस्तकों की सूची दी जा रही है। कृपया इस संक्षिप्त सूची से गिजुभाई के सम्पूर्ण स्वाध्याय का कोई गलत अर्थ न लें।

No.	Title	Author
1.	The Montessori Method	Maria Montessori
2.	The Advanced Montessori Method I	,, ,,
3.	,, ,, ,, ,, II	,, ,,
4.	Dr. Montessori's own handbook	,, ,,
5.	Pedagological Anthropology	,, ,,
6.	The Child in the Church	,, ,,
7.	The New Children—Talks with Dr. Montessori	,, ,, Shells Radioo
8.	A Montessori Mother	Mrs D. C. Fisher
9,	English Education and Dr. Montessori	Cacil Craut
10.	The Psychology and Teaching of number by Margaret Deummond (Investigations based on Dr. Montessori)	
11.	A Note on Montessori Training	C. A. Claremont
12.	A Review of Montessori Literature	,, ,,
13.	Has Dr. Montessori made a true Contribution to Science ?	,, ,,
14.	Montessory and the New Era	,, ,,
15.	From Locke to Montessori	W. Boyd
16.	The Montessori Principles and Practice	E. P. Calverwell
17.	A Montessori Experiments	Dr. C. W. Kimins
18.	Montessori Experiments	Mary Black Burn
19.	Montessori School as Seen in the early Summer of the 1933	J. C. White
20.	Montessory Method and the American School	F. E. Ward
21.	Montessory Children	Carolina Sheruin
22.	A Guid to the Montessori Method	E, Y. Stéren
23.	Montessori Examined	W. A. Kilpatric
24.	The Montessori System	T. L. Smith
25.	Auto Education and the Motessory Method	Henriet E. Hunt
26.	The Montessori Manual	Mrs. D. C. Fisher
27.	The Montetsori Materials for Children upto 11 Years	
28.	Montessori Method and Her Inspirers	
29,	Moral Tales	Gooled
30.	Daccan Nursery Tales	Kinkade
31.	Education by Story Telling	
32.	Problem Child	A. S. Neill
33.	Dominic's Five	,,
34.	Hunted House	Lord. Litten
35.	Story of a Donkey	
36.	A Diary of a Communist Under Graduate	
37.	Red Corner Book	
38.	Towards New Education	
39.	ट्रोटस्की	

40. नीति शिक्षण — आनन्दशंकर ध्रुव
41. काठियावाड़ी साहित्य — श्री कहानजी धर्मसिंह
42. कौतुकमाळा — गणेशजी जेठाभाई
43. धीरसिंह गोहिल
44. गोडार्ड
45. पढियार
46. पॉल रिशार
47. बाय मिलर
48. भोगीन्द्र राव
49. झवेरचन्द मेघाणी
50. विष्णु शर्मा
51. शोवोना देवी
52. सोक्रेटीज

(पुस्तकों की उक्त सूची बनाने में गिजुभाई द्वारा लिखित "वार्तानुंशास्त्र", "हालतां चालतां", तथा "श्री दक्षिणामूर्ति संस्थानो अहेवाल 1933-34" पुस्तकों की मदद रही है।)